

---

**पाठ्यक्रम समिति****प्रो० गिरिजा पाण्डे**

निदेशक,समाज विज्ञान  
विद्याशाखा उत्तराखण्ड  
मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

**प्रो० अजय रावत**

उत्तराखण्ड मुक्त  
विश्वविद्यालय  
हल्द्वानी

**डॉ० मदन मोहनजोशी,**

सहायक प्राध्यापक  
उत्तराखण्ड मुक्त  
विश्वविद्यालय,हल्द्वानी,हल्द्वानी

**प्रो० सी० एम० अग्रवाल,**

विभागाध्यक्ष इतिहास,  
कुमाऊँ विश्वविद्यालय  
एस०एस०जे०परिसर,अल्मोडा

**प्रो०अनिल कुमार जोशी**

इतिहास विभाग,कुमाऊँ  
विश्वविद्यालय डी०एस०बी०  
परिसर नैनीताल

---

**पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन****डॉ० मदन मोहन जोशी**

इतिहास विभाग  
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय  
हल्द्वानी, नैनीताल

---

**इकाई लेखन /संकलन****डॉ. प्रशांत श्रीवास्तव**

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग  
लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

ब्लॉक पांच- इकाई 1 एवं 2

---

**डॉ. विजय बहादुर सिंह यादव**

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग  
एम.जे.पी.रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

ब्लॉक पांच- इकाई 4

---

**डॉ. श्याम बिहारी लाल**

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग  
एम.जे.पी.रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

ब्लॉक छह- इकाई 1 एवं 2

---

**डॉ. सुनील कुमार यादव**

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग  
एम.जे.पी.रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

ब्लॉक चार- इकाई 1 एवं 2

---

**डॉ. धर्मेन्द्र कुमार**

इतिहास विभाग  
एस.वी.डी. कॉलेज  
पुवांया,बरेली

ब्लॉक चार- इकाई 3 एवं 4 तथा ब्लॉक  
छह- इकाई 3 एवं 4

---

**डॉ. आनन्द कुमार शर्मा**

ग्वालियर

ब्लॉक तीन- इकाई 1,2,3 एवं 4

---

**डॉ.मदन मोहन जोशी**

असिस्टेंट प्रोफेसर(इतिहास)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई संकलन ब्लॉक एक- इकाई1,2,3,4  
इकाई संकलन ब्लॉक दो- इकाई1,2,3,4  
इकाई संकलन ब्लॉक पांच- इकाई 3

---

कापीराइट @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: जून 2012

प्रकाशक: निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन (पूर्व प्रकाशन प्रति)

**mail : studies@uou.ac.in**

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

---

## प्राचीन भारत का इतिहास

## पृष्ठ संख्या

<b>ब्लाक एक : सिन्धु संस्कृति</b>		<b>1-44</b>
इकाई एक	सिन्धु सभ्यता, विस्तार, क्षेत्र तथा कालक्रम	1-10
इकाई दो	सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति, विकास, निरन्तरता तथा विशेषताएं	11-21
इकाई तीन	सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन, बिदेशी व्यापार एवं सम्पर्क	22-34
इकाई चार	सिन्धु सभ्यता की भाषा, लिपि, एवं पतन	35-44
<b>ब्लाक दो : वैदिकयुगीन भारत</b>		<b>45-87</b>
इकाई एक	आर्य जाति एवं आर्यों का मूलनिवास स्थान	45-53
इकाई दो	भारत में आर्यों का आगमन, आर्यों का विस्तार एवं वैदिक साहित्य	54-63
इकाई तीन	वैदिक युग में धार्मिक विचार एवं धार्मिक अनुष्ठान	64-73
इकाई चार	वैदिकयुगीन सामाजिक तथा आर्थिक जीवन	74-87
<b>ब्लाक तीन : इतिहास क्षेत्र तथा महत्व</b>		<b>88-153</b>
इकाई एक	इतिहास की परिभाषा क्षेत्र तथा महत्व	88-99
इकाई दो	प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत	100-120
इकाई तीन	प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ तथा जाति व्यवस्था	121-136
इकाई चार	संस्कार तथा उनके प्रकार एवं महत्व, विवाह तथा उनके प्रकार एवं महत्व	137-153
<b>ब्लाक चार : छठी शताब्दी ई० पूर्व सत्रितीय शदी ई० पूर्व तक भारत</b>		<b>154-217</b>
इकाई एक	महावीर स्वामी: दार्शनिक विचारधारा, त्रिरत्न, जैन साहित्य एवं स्थापत्य कला	154-164
इकाई दो	महात्मा बुद्ध: बौद्धधर्म, बौद्धधर्मकाविस्तार, बौद्धधर्मदर्शन-महायान, हीनयान, भारतीयसंस्कृति को बौद्ध धर्म की देन, पतन के कारण	165-179
इकाई तीन	मौर्य साम्राज्य: चन्द्रगुप्त मौर्य बिन्दुसार तथा अशोक	180-196
इकाई चार	मौर्यकालीन भारत का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन, मौर्यकालीन कला, मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण	197-217
<b>ब्लाक पाँच : प्राचीन भारत: गुप्त साम्राज्य</b>		<b>218-262</b>
इकाई एक	गुप्त साम्राज्य: चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा उनकी सफलताएं	218-229
इकाई दो	गुप्तकाल में व्यापार तथा वाणिज्य	230-240
इकाई तीन	गुप्तकालीन एवं हर्षकालीन सांस्कृतिक जीवन	241-250
इकाई चार	प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति तथा उनके अधिकार	251-262
<b>ब्लाक छह :</b>	<b>संकल्पनाएं, विचार तथा शब्दावली</b>	<b>263-321</b>
इकाई एक	सप्तसैन्धव, दशराजयुद्ध, भारतवर्ष, पंचजन, हरयूपिया, दिलबनतथामकन, बोगजकोई, मातृदेवी, सभा- समिति, यज्ञ, श्रुति, स्मृति	263-276
इकाई दो	कर्मकासिद्धान्त, वेदांग, वेदांत, सप्तांग, दण्डनीति, नियोग, तपस्या, सन्देहवाद, भौतिकवाद, आजीविक, आस्तिकवाद, प्रमाणवाद	277-290
इकाई तीन	धर्मविजय, स्तूप, चैत्य, नीतिशास्त्र, धर्मसूत्र, तमिलसंगम, पाली, प्राकृत, लौकिकसंस्कृत, यवन, बोधिसत्व, तीर्थकरतमिलाहम, हलदण्ड	291-306
इकाई चार	विष्टि, प्रणय, सीता, स्त्री-धन, प्रतिलोमविवाह, अनुलोमविवाह, वर्णशंकर, गोत्रतथाप्रवर, राजतन्त्रगणराज्य, मत्स्य-न्याय, अग्रहार, ब्रह्मादेय, दशमाशं	307-321

---

## इकाई एक- सिन्धु सभ्यता,विस्तार,क्षेत्र तथा कालक्रम

---

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 सिन्धु सभ्यता का परिचय
- 1.4 सिन्धु सभ्यता की जानकारी के स्रोत
- 1.5 सिन्धु सभ्यता का विस्तार तथा क्षेत्र
- 1.6 सिन्धु सभ्यता का कालक्रम
  - 1.6.1 जान मार्शल का सुझाया कालक्रम
  - 1.6.2 मार्टिंजर व्हीलर का सुझाया कालक्रम
  - 1.6.3 सी.एल. फैब्री का सुझाया कालक्रम
  - 1.6.4 फादर हेरास का सुझाया कालक्रम
  - 1.6.5 डी.पी. अग्रवाल का सुझाया कालक्रम
- 1.7 सारांश
- 1.8 तकनीकी शब्दावली
- 1.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

सिन्धु सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। इस सभ्यता की सर्वप्रथम जानकारी 20वीं सदी के तीसरे दसक में तब हुई जब श्री दयाराम साहनी ने हड़प्पा नामक स्थान पर खुदाई की और श्री राखालदास बनर्जी ने मोहनजोदड़ो नामक स्थान का उत्खनन किया। शीघ्र ही जो साक्ष्य प्रकाश में आये, उनके आधार पर पुराविदों ने भारत में एक अत्यंत प्राचीन सभ्यता होने की पुष्टि की। इस इकाई में हम इस सब पर चर्चा करेंगे।

सिन्धु सभ्यता को उद्धृतित हुए आज प्रायः नौ दसक बीत चुके हैं, और अब भी सिन्धु सभ्यता के नये-नये स्थल प्रकाश में आ रहे हैं तथा सिन्धु सभ्यता का विस्तार निरंतर फैल रहा है। इस सभ्यता के अधिकतर लगभग 250 स्थल सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों के मैदानों में स्थित हैं और यही क्षेत्र सिन्धु सभ्यता का केन्द्र स्थल है। हमें उत्खनन में अनेक सूदूरवर्ती क्षेत्रों में भी इस सभ्यता के स्थल मिले हैं, यह संभवतः सिन्धु नागरिकों की बढ़ती हुई आर्थिक आवश्यकताओं एवं जनसंख्या वृद्धि का परिणाम रहा होगा। इस इकाई में इन सभी स्थलों से आपका परिचय कराया जायेगा।

सिन्धु सभ्यता एक अत्यंत प्राचीन सभ्यता है, हमें इस सभ्यता के लोगों द्वारा प्रयुक्त लिपि के साक्ष्य उपलब्ध हैं लेकिन इसे पढ़ने में अभी तक कोई भी पुरालिपिशास्त्री सफल नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में इस सभ्यता के सही कालक्रम को जानने के लिए हमारे पास विभिन्न पुराविदों द्वारा प्रस्तुत अध्ययनों का ही सहारा है। इन अध्ययनों में से कुछ समकालीन सभ्यताओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित हैं तो कुछ सिन्धुघाटी से प्राप्त अवशेषों का वैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा विश्लेषण पर। इन सब पर भी इस इकाई पर विचार किया जायेगा।

## 1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य सिन्धु सभ्यता के प्रारंभिक ज्ञान का परिचय देना है, साथ ही सिन्धु सभ्यता के विस्तार, क्षेत्र तथा कालक्रम की जानकारी उपलब्ध कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- 1- सिन्धु सभ्यता का सामान्य परिचय
- 2- सिन्धु सभ्यता का विस्तार-क्षेत्र
- 3- सिन्धु सभ्यता का कालक्रम

### 1.3 सिन्धु सभ्यता का परिचय

सिन्धु सभ्यता की जानकारी से पूर्व विद्वानों का यह मानना था कि भारत में मानव सभ्यता आर्यों के साथ ही प्रारंभ हुई थी, लेकिन सिन्धु घाटी के उत्खनन के उपरांत यह भ्रम दूर हो गया और भारत में मानव सभ्यता का प्रारंभ आर्यों के आगमन से भी अनेक शताब्दियों पूर्व स्वीकार्य हो गया। सन् 1875 में अलैक्जैण्डर कनिंघम को हड़प्पा सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए जिनमें लिपियुक्त मुहर और भवन के अवशेष सम्मिलित थे। सन् 1921 में दयाराम साहनी ने हड़प्पा की खुदाई की और इस सभ्यता के अवशेषों को पुराविदों के समक्ष रखा, लगभग इसी समय सन् 1922 में राखालदास बनजी ने मोहनजोदड़ो की खुदाई की और हड़प्पा से मिलते जुलते साक्ष्य प्रकाशित किये। यद्यपि दोनों स्थलों की दूरी लगभग 485 किलोमीटर है तथापि दोनों स्थलों से प्राप्त सामग्री में अद्भुत समानता है। सन् 1928 एवं 1933 में माधोस्वरूप वत्स ने हड़प्पा में, 1946 में व्हीलरने मोहनजोदड़ो में उत्खनन किया और इस सभ्यता से संबंधित अनेक जानकारियां उद्घाटित कीं। आगे चलकर एन. जी. मजूमदार, मैके, एस. आर. राव, डेल्स, फेयरर्सर्विस इत्यादि पुराविदों ने सिन्धु सभ्यता के विभिन्न स्थलों में उत्खनन कार्य करवाये और हड़प्पा सभ्यता की अनेक जानकारियां प्रस्तुत कीं। क्योंकि यह सभ्यता सर्वप्रथम हड़प्पा में खोजी गयी थी, अतः कुछ विद्वान इसे हड़प्पा सभ्यता के नाम से पुकारना पसंद करते हैं जबकि कुछ विद्वान सभ्यता के अधिकांश लगभग 250 स्थलों का सिन्धु घाटी में सकेन्द्रण के कारण इसे सिन्धु सभ्यता पुकारना अधिक सही मानते हैं। दोनों ही नाम प्रचलित हैं और एक ही सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं। सिन्धु सभ्यता को प्राचीनता के आधार पर मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताओं के समकक्ष रखा जा सकता है।

## 1.4 सिन्धु सभ्यता की जानकारी के स्रोत

इस अत्यधिक विस्तृत संस्कृति के विषय में जानकारी के स्रोत, पुराविदों द्वारा किये गये उत्खनन एवं उनसे प्राप्त तत्संबंधित अवशेष तथा साक्ष्य हैं, जिनका विश्लेषण कर पुराविदों एवं अन्य विद्वानों ने इस सभ्यता के संबंध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध करायी है। सिन्धु सभ्यता से भारी मात्रा में, मृण्मूर्तियां, धातु की मूर्तियां, मुद्राएँ, विभिन्न उपकरण, आभूषण, दैनिक जीवन की वस्तुएँ इत्यादि प्रकाश में आये हैं, और इनके आधार पर सिन्धु संस्कृति के विषय में अध्ययन किया जा सकता है।

हम यह जानते हैं कि सिन्धु सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी और हमें उत्खनन से ऐसे विभिन्न नगर प्रकाश में आये हैं। इन नगरों में मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगन, सूरकोटडा, बनावली, लोथल, रंगपुर, धौलावीरा इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है। इन नगरों का नगर-विन्यास हमें तत्कालीन जीवन के विषय में अनेकानेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत करता है, जैसे, उस काल के नागरिकों द्वारा उपयोग की जाने वाली भौतिक सुविधाएँ, उनका रहन-सहन, नगरों में निर्मित सार्वजनिक महत्व के स्थल, उनका प्रयोजन इत्यादि। नगरों में निर्मित भवन भी इस दिशा में यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। हमें जानकारी होती है कि सिन्धु निवासियों के भवनों में प्रयुक्त निर्माण सामग्री क्या

थी , उनके भवनों में कक्ष योजना किस प्रकार निर्धारित की गयी थी , भवनों में स्थान की योजना किस प्रकार बनायी गयी थी, विभिन्न भवनों में प्राप्त अंतर उनके सामाजिक ढांचे में भी प्रकाश डालते हैं, सफाई-व्यवस्था के संदर्भ में सिन्धु नागरिक कितने जागरूक थे , उन्होंने नगर में सफाई व्यवस्था के लिए सुनियोजित नालियों एवं कूड़ा करकट डालने के लिए मिट्टी के बड़े बरतनों का उपयोग किया था , नगर में जल वितरण का भी उत्कृष्ट प्रबन्ध दिखता है, मोहनजोदड़ो के प्रायः प्रत्येक भवन में कूओं का प्रावधान मिलता है, इसी प्रकार चौड़ी-चौड़ी सड़कें तथा सुनियोजित गलियां भी यहां के नागरिक जीवन का अच्छा परिचय देती हैं। उत्खनन में नगर तथा भवनों से प्राप्त साक्ष्यों का अध्ययन कर पुराविदों ने इस सभ्यता के विषय में व्यापक जानकारी उपलब्ध करायी है।

उत्खनन से जो साक्ष्य मिले हैं उनके आधार पर हम सिन्धु नागरिकों के भोजन के विषय में भी निश्चित रूप से कह सकते हैं। सिन्धु नागरिक सामिष और निरामिष दोनों ही प्रकार का भोजन करते थे, उनके भोजन में दुग्ध पदार्थों के अलावा खाद्यान्न के रूप में मुख्यतः गेहूं और जौ सम्मिलित था यद्यपि रंगपुर से धान की प्राप्ति भी हुई है , अवशेषों, मुद्राओं तथा मृण्मूर्तियों में अंकित चित्रों के आधार पर सिन्धु सभ्यता में गाय , भैंस , हाथी, ऊँट, भेड़ , बकरी, सूअर , कुत्ता, हिरण, चूहा , नेवला, सांड, खरगोश, बन्दर, शेर , रीछ, गैंडा, कछुआ, मछली इत्यादि के साक्ष्य मिले हैं, इनमें से अनेक जानवरों का मांस भोजन हेतु भी प्रयुक्त किया जाता रहा होगा।

सिन्धु सभ्यता कांस्ययुगीन सभ्यता है और कांस्य युग की अनेक कलाकृतियां यहां से प्राप्त हुई हैं। उत्खनन से जो धातुएं प्रकाश में आयी हैं उनमें सोना , चांदी , सीसा , तांबा , कांसा प्रमुख हैं, यहां लोहे के प्रयोग की कोई जानकारी नहीं मिलती है। अन्य सामग्री में हमें सीपियों, हाथी दांत तथा विभिन्न जानवरों की हड्डियों का प्रयोग मिलता है। वस्त्र के लिए सिन्धु नागरिक कपास और ऊन का प्रयोग करते थे। मुद्राओं एवं मृण्मूर्तियों में अंकित चित्र उनके वस्त्र विन्यास, केश विन्यास आदि पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। सिन्धु घाटी के उत्खनन से पर्याप्त मात्रा में आभूषण भी मिले हैं, हम कह सकते हैं कि सिन्धु सभ्यता में स्त्रियां एवं पुरुष दोनों ही आभूषणों के शौकीन थे और दोनों ही हार , कंगन , अंगूठी का प्रयोग करते थे जबकि कमरबन्द , नाक के कांटे , बुंदे ओर नूपुर का प्रयोग केवल स्त्रियां करती थीं। अमीर वर्ग के आभूषण सोने , चांदी , मोतियों और हाथी दांत के होते थे जबकि निर्धन और गरीब लोगों के आभूषण सीपियों , हड्डियों , तांबे और कम कीमत के पत्थरों से निर्मित होते थे। सौन्दर्य प्रसाधन के भी अनेक उपकरण प्रकाश में आये हैं। सिन्धु नगरों से प्राप्त संरचनाओं, मुहरों एवं मृण्मूर्तियों के अध्ययन से सिन्धुकालीन सामाजिक जीवन , धार्मिक जीवन एवं आर्थिक जीवन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है, इनके विषय में अन्य इकाइयों में विस्तार से चर्चा की जायेगी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. सिन्धु सभ्यता एक ग्रामीण सभ्यता थी।
2. सिन्धु सभ्यता में लोगों की प्रमुख वेषभूषा जानवरों की खाल से बने कपड़े थे।
3. सिन्धु नागरिक सफाई व्यवस्था के प्रति अत्यधिक जागरूक थे।

### 1.5 सिन्धु सभ्यता का विस्तार तथा क्षेत्र

जैसे-जैसे पुराविद नवीन स्थलों का उत्खनन कर रहे हैं, वैसे-वैसे सिन्धु सभ्यता का विस्तार एवं प्रसार क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में यह सभ्यता आधुनिक पाकिस्तान से भी आगे तक विस्तृत हो चुकी है। सिन्धु सभ्यता पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा तक लगभग 1500 किलोमीटर तथा उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा तक लगभग 1200 किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तृत है। बीसवीं सदी के सातवें दसक के प्रारंभ तक लगभग 250 स्थलों की गिनती की गयी थी किन्तु हाल के एक अनुमान के अनुसार सिन्धु सभ्यता के उत्खनित स्थलों की संख्या अब 1000 को पार कर गयी है और उल्लेखनीय है कि इनमें से अधिकांश लगभग दो-तिहाई स्थल वर्तमान भारतीय क्षेत्र में स्थित हैं। सिन्धु सभ्यता के स्थलों का संकेन्द्रण सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों के मैदानों में है और इस क्षेत्र में हमें लगभग 250 स्थल विद्यमान मिलते हैं।

पिछले दसकों में हुए उत्खनन से अनेक महत्वपूर्ण स्थलों की जानकारी प्रकाश में आयी है। इनमें से एक स्थल उत्तरी-पूर्व अफगानिस्तान में ओक्सस के दक्षिणी मैदानों में स्थित शौर्टूघई है, इस स्थल में शायद बदर्खाँ की खानों से प्राप्त लेपिस लजुली का व्यापार और अन्य चीजों जैसे तांबे आदि का व्यापार भी होता था। इसी प्रकार सौराष्ट्र में रोजदी तथा कच्छ क्षेत्र में देसालपुर को उत्खनित किया गया है। दक्षिणी सिन्ध तथा बलूचिस्तान में अल्लाहदीनों एवं लासबेला के निकट बालाकोट की खोज भी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। इनमें से अनेक स्थलों की प्राप्ति इन्हें परिपक्व हड़प्पा सभ्यता के अंतर्गत रखती हैं। रोपड़ और आलमगीरपुर के अवशेष इस सभ्यता का पूर्व दिशा में दोआब क्षेत्र की ओर विस्तार को बतलाते हैं।

सिन्धु सभ्यता के दो प्रमुख नगरों मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के अलावा वर्तमान में अनेक छोटे-छोटे स्थलों का उत्खनन भी हुआ है। ऐसे स्थलों को शासन के प्रांतीय केन्द्रों के रूप में माना जा सकता है। ऐसा ही एक स्थल कालीबंगन है, जिसका नगर-विन्यास बिल्कुल हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसा ही है। लोथल नामक स्थल भी महत्वपूर्ण है, यह गुजरात में खंबात की खाड़ी पर

स्थित है। मोहनजोदड़ो से लगभग 130 किलोमीटर दक्षिण में विद्यमान चन्हुदाड़ो भी महत्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा। इसी प्रकार बनवाली का उल्लेख भी किया जा सकता है। हाल ही के वर्षों की एक महत्वपूर्ण खोज धौलावीरा नामक स्थल है, जो सिन्धु संस्कृति के तीसरे बड़े केन्द्र के रूप में प्रकाश में आया है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण स्थलों के अंतर्गत कोटदीजी, रोजदी, देसालपुर, रंगपुर, डाबरकोट, बालाकोट इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है।

सिन्धु सभ्यता के कुछ स्थल पश्चिम दिशा में बलूचिस्तान में मकरान समुद्र तट के पास प्राप्त होते हैं, इनमें सबसे दूर स्थित स्थल आधुनिक पाकिस्तान-ईरान सीमाप्रांत में स्थित सुत्कजैंडोर है, यह स्थल एक व्यापारिक चौकी या बंदरगाह रहा होगा। सिन्धु के पूर्व में कच्छ के समीप समुद्रतट के आसपास भी स्थल मिलते हैं, इनमें सबसे महत्वपूर्ण केम्बे की खाड़ी में विद्यमान लोथल नामक स्थल है।

पूर्व दिशा में भी सिन्धु सभ्यता का व्यापक प्रसार दिखता है। यहां हमें मेरठ जिले के आलमगीरपुर नामक स्थान में सिन्धु सभ्यता के अवशेष मिले हैं। इस संदर्भ में शाहजहाँपुर जनपद का हुलास नामक स्थल भी महत्वपूर्ण है, यहां हुआ उत्खनन भी सिन्धु सभ्यता के यहां तक के प्रसार को दर्शाता है। उत्तर दिशा में भी सिन्धु संस्कृति पर्याप्त विस्तृत थी, उत्तर दिशा में पहले इस सभ्यता की सीमा पंजाब में स्थित रोपड़ नामक स्थल तक मानी थी परंतु अब जम्मू-काश्मीर राज्य में स्थित मांड तक इस सभ्यता के स्थल मिल चुके हैं। दक्षिण दिशा में भी सिन्धु सभ्यता का व्यापक प्रसार हुआ था। पूर्व की खोजों के अनुसार पहले इस सभ्यता की दक्षिणी सीमा गुजरात प्रांत में स्थित एक छोटी सी नदी किम के समीप स्थित भगत्रव नामक स्थल तक मानी जाती थी लेकिन बाद के उत्खनन ने सभ्यता की सीमा महाराष्ट्र राज्य के अहमदनगर जिले में स्थित दैमाबाद तक विस्तृत कर दी है।

इस प्रकार सिन्धु सभ्यता का सम्पूर्ण क्षेत्र एक विशाल त्रिभुज की भांति है और लगभग 13 लाख वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र समेटे हुए है। यह क्षेत्रफल आधुनिक पाकिस्तान से तो बड़ा है ही प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया के संयुक्त क्षेत्रफल से भी बड़ा है।

सिन्धु सभ्यता के इस विस्तृत विस्तार को देखने के बाद भी लिपि की अनभिज्ञता हमें सिन्धु-संस्कृति के प्रारम्भिक ज्ञान तक ही सीमित कर देती है। यह जानना अत्यंत कठिन है कि सिन्धु सभ्यता की कौन-कौन सी बस्तियां एक निश्चित समय में समकालीन थीं। रेडियो कार्बन परीक्षण से पता चलता है कि कच्छ, सौराष्ट्र और दोआब क्षेत्र की बस्तियां सिन्धु घाटी से लोगों के बाद के आवागमन को बतलाती हैं। शायद सिन्धु नागरिकों का पूर्व दिशा और दक्षिण दिशा की ओर प्रथम प्रसरण का कारण उनकी बढ़ती जनता की आर्थिक आवश्यकताएं थीं जबकि द्वितीय प्रसरण के पीछे

सिन्धु क्षेत्र में आर्थिक समस्याएँ और सांस्कृतिक अधःपतन, मिट्टी की उर्वरता में कमी तथा सिन्धु क्षेत्र में नये लोगों का आगमन था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. सिन्धु सभ्यता का क्षेत्रफल लगभग कितना है?
2. सिन्धु सभ्यता के सुदूरतम पश्चिम में स्थित स्थल का नाम बताइये।

## 1.6 सिन्धु सभ्यता का कालक्रम

सिन्धु सभ्यता की तिथि के संबंध में व्यापक विवाद रहा था, लेकिन वैज्ञानिक प्रविधियों के प्रयोग के उपरांत पुराविद् सिन्धु सभ्यता का सही कालक्रम निर्धारित करने में सफल हुए हैं। सिन्धु सभ्यता की तिथि के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विचारों का संक्षिप्त परिचय जानना ठीक होगा।

### 1.6.1 जान मार्शल का सुझाया कालक्रम

जान मार्शल जैसे विद्वानों के अनुसार सिन्धु सभ्यता तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व की सभ्यता है। इन विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता का प्राचीन मेसोपोटामिया के नगरों के साथ संबंधों और इन संबंधों के फलस्वरूप आदान-प्रदान की गयी वस्तुओं के आधार पर तिथि निर्धारण का प्रयास किया है।

### 1.6.2 मार्टिंजर व्हीलर का सुझाया कालक्रम

मार्टिंजर व्हीलर ने भी सिन्धु नगरों से पाये गये पुरावशेषों का पश्चिम के पुरावशेषों के साथ तुलनात्मक अध्ययन द्वारा काल निर्धारण का प्रयास किया और 2500 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व सिन्धु सभ्यता का काल निर्धारित किया।

### 1.6.3 सी.एल. फैब्री का सुझाया कालक्रम

सी.एल. फैब्री नामक पुरातत्ववेत्ता ने मोहनजोदड़ो में पाये गये एक बरतन पर अंकित सुमेरो-बेबिलोनियन लेख के आधार पर सिन्धु सभ्यता का काल 2800 ईसा पूर्व से 2500 ईसा पूर्व में निर्धारित किया है।

### 1.6.4 फादर हेरास का सुझाया कालक्रम

फादर हेरास नामक विद्वान ने नक्षत्रीय गणना के आधार पर सिन्धु घाटी की सभ्यता का काल 5600 ईसा पूर्व तक बतलाया है।

### 1.6.5 डी.पी. अग्रवाल का सुझाया कालक्रम

वर्तमान में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रविधियों का प्रयोग करते हुए डी.पी. अग्रवाल ने कार्बन-14 तिथि निर्धारण के आधार पर सिन्धु सभ्यता का कालक्रम 2300 ईसा पूर्व से 1750 ईसा पूर्व निर्धारित किया है, वर्तमान में डॉ. अग्रवाल द्वारा निर्दिष्ट तिथिक्रम को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है।

यह सत्य है कि 1750 ईसा पूर्व तक सिन्धु सभ्यता के प्रमुख नगरों में सभ्यता का अवसान हो गया था, लेकिन अन्य स्थलों में सभ्यता विद्यमान थी यद्यपि वह हासोन्मुख हो चुकी थी। गुजरात में स्थित सिन्धु सभ्यता का एक प्रमुख नगर रंगपुर अभी भी विकास कर रहा था और इस स्थल में हमें निरंतर लगभग 800 ईसा पूर्व तक सभ्यता के साक्ष्य मिलते हैं। यदि समग्र रूप में सिन्धु सभ्यता के कालक्रम को देखा जाय और विभिन्न उत्खननों, विद्वानों, पुराविदों एवं आधुनिक अनुसंधानों का अनुशीलन किया जाय तो सिन्धु संस्कृति के सम्पूर्ण काल को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

क- सिन्धु सभ्यता का आरंभिक काल -2500 ईसा पूर्व से 2250 ईसा पूर्व

ख- सिन्धु सभ्यता का विकसित काल -2250 ईसा पूर्व से 1950 ईसा पूर्व

ग- सिन्धु सभ्यता का हासोन्मुख काल -1950 ईसा पूर्व से 1750 ईसा पूर्व

### 1.7 सारांश

सिन्धु सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी और हमें उत्खनन से ऐसे विभिन्न नगर प्रकाश में आये हैं। इन नगरों में मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगन, सूरकोटडा, बनावली, लोथल, रंगपुर, धौलावीरा इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है। इन नगरों का नगर-विन्यास हमें तत्कालीन जीवन के विषय में अनेकानेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत करता है, हम सिन्धु नागरिकों के भोजन के विषय में भी निश्चित रूप से कह सकते हैं। सिन्धु नागरिक सामिष और निरामिष दोनों ही प्रकार का भोजन करते थे। मुद्राओं एवं मृण्मूर्तियों में अंकित चित्र उनके वस्त्र विन्यास, केश विन्यास आदि पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। सिन्धु घाटी के उत्खनन से पर्याप्त मात्रा में आभूषण भी मिले हैं। हम कह सकते हैं कि सिन्धु सभ्यता में स्त्रियां एवं पुरुष दोनों ही आभूषणों के शौकीन थे। सौन्दर्य प्रसाधन के भी अनेक उपकरण प्रकाश में आये हैं। सिन्धु नगरों से प्राप्त संरचनाओं, मुहरों एवं मृण्मूर्तियों के अध्ययन से सिन्धुकालीन सामाजिक जीवन, धार्मिक जीवन एवं आर्थिक जीवन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

वर्तमान में यह सभ्यता आधुनिक पाकिस्तान से भी आगे तक विस्तृत हो चुकी है। सिन्धु सभ्यता पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा तक लगभग 1500 किलोमीटर तथा उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा

तक लगभग 1200 किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तृत है। सिन्धु सभ्यता का सम्पूर्ण क्षेत्र एक विशाल त्रिभुज की भांति है और लगभग 13 लाख वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र समेटे हुए है। यह क्षेत्रफल आधुनिक पाकिस्तान से तो बड़ा है ही प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया के संयुक्त क्षेत्रफल से भी बड़ा है। सिन्धु सभ्यता की तिथि के संबंध में व्यापक विवाद रहा था, लेकिन वैज्ञानिक प्रविधियों के प्रयोग के उपरांत पुराविद् सिन्धु सभ्यता का सही कालक्रम निर्धारित करने में सफल हुए हैं।

---

## 1.8 तकनीकी शब्दावली

---

सहस्राब्दी - एक सहस्र वर्ष अथवा हजार वर्ष

उत्खनन - योजनानुसार की गयी खुदाई

नगर-विन्यास - नगर की बनावट

सामिष - मांसयुक्त भोजन

बंदरगाह - पानी के जहाजों के ठहरने का स्थान

मृणमूर्तियां - मिट्टी की मूर्तियां

बस्तियां - मानव समूह का निवास स्थान

---

## 1.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

---

इकाई 1.4 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - असत्य

इकाई 1.4 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - असत्य

इकाई 1.4 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - सत्य

इकाई 1.5 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - लगभग 13 लाख वर्ग किलोमीटर

इकाई 1.5 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - सुत्कजैण्डोर

---

## 1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,  
इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

[www.mohenjodaro.net/](http://www.mohenjodaro.net/)

---

## 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books  
India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva  
no. 20, 1989-90,pp. 71-82

Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram  
Manoharlal,New Delhi,1990

Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New  
Delhi,1973

Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali  
Publishers,Jodhpur,1995

Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New  
Delhi,1999

Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3<sup>rd</sup> edn.Cambridge University  
Press,Bentley House,London,1968

---

## 1.12 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. सिन्धु सभ्यता के विस्तार को उद्घाटित कीजिए।
2. सिन्धु सभ्यता के कालक्रम के संबंध में विभिन्न पुराविदों द्वारा सुझायी गये तिथिक्रम का वर्णन कीजिए।

---

## इकाई दो-सिन्धु संस्कृति की उत्पत्ति, विकास, निरंतरता तथा विशेषताएँ

---

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति तथा विकास
  - 2.3.1 प्रथम विचारधारा
  - 2.3.2 द्वितीय विचारधारा
  - 2.3.3 तृतीय विचारधारा
  - 2.3.4 चतुर्थ विचारधारा
  - 2.3.5 पंचम विचारधारा
- 2.4 सिन्धु सभ्यता की निरंतरता
  - 2.4.1 धार्मिक जीवन में निरंतरता
  - 2.4.2 सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवन में निरंतरता
  - 2.4.3 आर्थिक जीवन में निरंतरता
- 2.5 सिन्धु सभ्यता की विशेषताएँ
- 2.6 सारांश
- 2.7 तकनीकी शब्दावली
- 2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने सिन्धु सभ्यता के विषय में सामान्य जानकारी प्राप्त की और सिन्धु सभ्यता के विस्तार-क्षेत्र तथा कालक्रम का परिचय प्राप्त किया। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक तथा इतने विस्तृत क्षेत्र में फैली इस सभ्यता की उत्पत्ति, विकास तथा निरंतरता के प्रति एक सहज जिज्ञासा उत्पन्न होती है। पुराविदों ने इस संदर्भ में व्यापक अध्ययन-विश्लेषण किया है और विश्व की विभिन्न समकालीन सभ्यताओं के साथ साम्य बैठाने की कोशिश की है।

सिन्धु सभ्यता एक अत्यधिक विकसित सभ्यता थी और जैसी कि आपको जानकारी है, यह विशाल क्षेत्र में फैली ली हुई थी। यह सभ्यता दीर्घकाल तक विकासमान रही और इसके अंतर्गत सिन्धु नागरिकों ने आश्चर्यजनक उन्नति की। खुदाई से पता चलता है कि वे जिन भौतिक सुविधाओं का प्रयोग करते थे, उनमें से अनेक समकालीन विश्व की अन्य सभ्यताओं के नागरिकों को सुलभ नहीं थीं। विकास के इस उच्च स्तर को पाने में सिन्धु नागरिकों को अवश्य दीर्घकाल का समय लगा होगा।

लिपि की अनभिज्ञता के कारण सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति की गुत्थी अभी भी सुलझ नहीं पायी है, क्योंकि हमारे पास साक्ष्य के रूप में एक नगरीय सभ्यता के अवशेष हैं और यह जानना अत्यधिक कठिन है कि सभ्यता का यह स्तर स्थानीय रूप से विकसित हुआ था या फिर सिन्धु सभ्यता के निर्माता पूर्व से ही विकसित थे और किसी बाहरी स्थान से आकर उन्होंने यहां नगरीय सभ्यता का श्रीगणेश किया। इस इकाई में हम इन्हीं तथ्यों पर चर्चा करेंगे और साथ ही सिन्धु सभ्यता की निरंतरता एवं विशेषताओं पर भी बातें करेंगे।

## 2.2 उद्देश्य

सिन्धु सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए प्रथम ब्लाक की पहली इकाई में आपको सिन्धु सभ्यता के विषय में सामान्य जानकारी के अलावा सभ्यता का विस्तार-क्षेत्र तथा कालक्रम के विषय में जानकारी प्रदान की गयी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। इस इकाई का उद्देश्य आपको सभ्यता से संबंधित अन्य तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न विचारधाराएं
2. आगामी कालखण्डों में सिन्धु सभ्यता की निरंतरता
3. सिन्धु सभ्यता की प्रमुख विशेषताएं

## 2.3 सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति तथा विकास

सिन्धु सभ्यता के उद्गम के विषय में पुरावशेषों की अपूर्णता और लिपि सम्बन्धित अज्ञानता के कारण किसी निश्चित विचार को ग्रहण करना अभी संभव नहीं है, फिर भी सभ्यता के उद्गम के विषय में कुछ विचारधाराएँ महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं।

### 2.3.1 प्रथम विचारधारा

एक विचारधारा के अनुसार, सिन्धु संस्कृति और कुल्ली-नाल तथा झोब संस्कृतियों के मध्य निश्चित सम्बन्ध हैं। दक्षिण-मध्य बलूचिस्तान तथा लासबेला में नाल तथा प्रारंभिक कुल्ली संस्कृति के अवशेष प्राप्त होते हैं। झोब संस्कृति, सुलेमान पहाड़ियों के पश्चिम में फली-फूली थीं। ये संस्कृतियाँ चतुर्थ या तृतीय सहस्राब्दी ईसा पूर्व में अस्तित्व में थीं। इन संस्कृतियों के मध्य सम्बन्ध बैठाने के लिए कुछ निश्चित प्रमाण दिये जाते हैं, जैसे- सिन्धु में बाद के काल में कृषि का होना यह दर्शाता है कि बलूचिस्तान और दक्षिणी अफगानिस्तान की कुछ खेतिहर जनजातियाँ सिन्धु तक प्रवेश कर गयीं थीं। इसके अलावा उत्तर-पूर्वी सिन्धु से प्राप्त कुछ प्रमाण यह दर्शाते हैं कि प्रारंभिक हड़प्पा सभ्यता की स्थानीय शैली, उत्तरी तथा मध्य बलूचिस्तान से प्राप्त की गयी थी। ये सभी सभ्यताएँ नदियों के किनारे पल्लवित हुयीं थी और सभी कृषि पर आधारित थीं, इसके अलावा इस बात के भी प्रमाण हैं कि प्रारंभिक हड़प्पा बस्तियों ने बलूचिस्तान तथा झोब की संस्कृति के साथ एक लम्बे काल तक स्थिर संबंध रखे थे। दक्षिण-पश्चिम ईरान तथा कुल्ली सभ्यता के मृणभाण्डों तथा अन्य तथ्यों में समानताएँ हैं, इसके अलावा ईरानी तथा कुल्ली दोनों ही प्रकार के साक्ष्य सूकोटडा से प्राप्त हुए हैं, धातुकार्मिक दक्षता भी कुल्ली-नाल तथा हड़प्पा सभ्यता में समानता रखती हैं। झोब संस्कृति में मातृदेवी तथा लिंग के अवशेष भी प्राप्त होते हैं तथा साथ ही सांड आकृति जोकि सिन्धु सभ्यता में दिखाई देती है, झोब संस्कृति में एक प्रिय विषय या चिह्न के रूप में प्राप्त होती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निश्चित नहीं किया जा सकता है कि हड़प्पा सभ्यता का उद्गम बलूचिस्तान की सभ्यता से है। कोटदीजी से प्राप्त प्रारंभिक मृणभाण्ड, बलूचिस्तान के कृषक समुदाय के मृणभाण्ड तथा हड़प्पा से प्राप्त मृणभाण्डों से साम्यता रखते हैं जबकि कोटदीजी से ही प्राप्त बाद के मृणभाण्ड हड़प्पा के मृणभाण्डों से साम्यता रखते हैं इसी प्रकार कालीबंगन की खुदाई दर्शाती है कि वहाँ हड़प्पा काल से भी पूर्व बस्तियाँ थीं और उनके मृणभाण्ड आमरी और कोटदीजी से प्राप्त मृणभाण्डों से साम्यता रखते हैं जबकि कालीबंगन के बाद के भवन निश्चिततः हड़प्पा सभ्यता के ही अंग थे। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह मानना कठिन हो जाता है कि कि हड़प्पा सभ्यता, कुल्ली-नाल या झोब संस्कृतियों से विकसित हुई थी।

### 2.3.2 द्वितीय विचारधारा

उद्गम के संबंध में एक दूसरे विचार के अनुसार हड़प्पा सभ्यता को आमरी सभ्यता की प्रच्छाया बताया गया है। इस विचार के अनुसार आमरी में पहले शहरी सभ्यता उत्पन्न हुई और फिर मानव धीरे-धीरे अन्य बस्तियों की खोज करते आगे बढ़ा। इस संदर्भ में पुराविद् कासल ने पूर्व हड़प्पा काल से बाद के हड़प्पा काल तक भौगोलिक स्तरीकरण निश्चित किया है। आमरी बस्तियों में मृणभाण्ड बिना चाक की सहायता के हाथ से बने हुए तथा धातु चिह्न अत्यल्प हैं, किंतु बाद के स्तर में अलंकृत भाण्ड तथा बिना पकी हुयी मिट्टी की ईंटों से बने भवन मिलते हैं, इसके अलावा खुदाई से पता चलता है कि आमरी सभ्यता की कुछ विशिष्ट परंपराएँ, हड़प्पा सभ्यता की परंपराओं से मेल खाती हैं। उपरोक्त ज्ञान के बावजूद भी हड़प्पा सभ्यता और प्रारंभिक आमरी सभ्यता के बीच संबंध नहीं बैठाया जा सकता है, हांलाकि आमरी के मृणभाण्ड हड़प्पा के नगर प्राचीर के चारों तरफ पाये गये हैं। मोहनजोदड़ो के निचले स्तर में अवश्य बलूचिस्तान की सभ्यता का प्रभाव मिलता है ना कि आमरी सभ्यता का, अतः ताथ्यिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि आमरी सभ्यता से हड़प्पा सभ्यता का विकास नहीं हुआ था।

### 2.3.3 तृतीय विचारधारा

उद्गम से संबंधित एक अन्य विचार के अनुसार, हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त संरचनाओं का संबंध ईसा पूर्व सातवीं सहस्राब्दी में अनातोलिया के कैटल हुयुक तथा बलूचिस्तान के जैरिको और साथ ही सुमेरिया के उदाहरणों के साथ संबंधित किया जा सकता है। अनातोलिया नगर में घुसपैठियों से रक्षा के लिए नगर के चारों ओर सीड़ियों की श्रृंखला सी उठा दी गयी है। इस नगर के लोग मृणभाण्डों का प्रयोग जानते थे तथा प्रस्तर प्रतिमाओं की पूजा करते थे। जैरिको में एक अति विशिष्ट प्रस्तर प्राचीर से घिरा नगर मिला है। हांलाकि कैटल हुयुक और जैरिको के लोग प्रारंभिक कृषक समुदाय से संबंधित थे फिर भी उन्होंने नागरिक जीवन के कुछ निश्चित अंग विकसित कर लिए थे। सुमेरियाइयों ने मंदिर तथा मिट्टी की ईंटों से बने जिगुरात बनाये जो कि कृत्रिम पर्वतों की भांति दिखते थे। इसी प्रकार सिन्धु सभ्यता के स्थलों के भी दो भाग हैं, एक शहर का उठा हुआ भाग तथा दूसरा निचले स्तर में स्थित नगर। लेकिन इन समानताओं के बावजूद भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि हड़प्पा सभ्यता किसी निश्चित नगरीय सभ्यता से प्रभावित रही हो।

### 2.3.4 चतुर्थ विचारधारा

उद्गम से संबंधित एक अन्य विचार के अनुसार, सिन्धु सभ्यता सुमेर सभ्यता की ऋणी है। सुमेर सभ्यता और सिन्धु सभ्यता के मध्य निश्चित संबंधों की जानकारी है। गिलगामेश आकृति, एनकिडु, सांड-मानव, मुद्राओं और मृणमूर्तियों में गोदीबाड़े के चिह्न, भारतीय तट को मेसोपोटामिया में मैलुहह की संज्ञा का मिलना आदि मेल हमें प्राप्त होते हैं। लेकिन हमें मालूम है कि इन संबंधों के

बावजूद भी सिन्धु नागरिकों ने सुमेरियाइयों से अपने विकास तथा उत्तरजीविता के संबंध में कुछ विशिष्टता नहीं प्राप्त की या कुछ खास नहीं सीखा। उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि सुमेरियाइयों की उत्कृष्ट सिंचाई व्यवस्था तथा उच्चकोटि की कलाकृतियों को जानने या अपनाने के प्रमाण हमें नहीं मिलते हैं। इन सबसे प्रमुख यह बात है कि सिन्धु लिपि की, पश्चिम एशिया की किसी भी लिपि से संबंधता नहीं मिलती है अर्थात् यह सुमेर की लिपि से बिल्कुल भिन्न है। हम केवल यह मान सकते हैं कि पश्चिम एशियाइयों और सिन्धु सभ्यता के मध्य संबंध थे, लेकिन यह संबंध सैन्धव सभ्यता के मूल में नहीं थे, इसके अतिरिक्त सिन्धु सभ्यता एक स्टैटाइट सभ्यता थी जबकि सुमेर की सभ्यता में स्टैटाइट के कुछ ही दाने मिले हैं।

### 2.3.5 पंचम विचारधारा

उद्गम से संबंधित एक अन्य महत्वपूर्ण विचार के अनुसार, हड़प्पा सभ्यता, सिन्धु घाटी के अंदर चलने वाली एक दीर्घकालीन विकास प्रक्रिया का परिणाम है। सिन्धु सभ्यता के अनेक लक्षणों का मूल हमें वहीं प्राप्त आरंभिक स्तर की ग्रामीण संस्कृतियों में मिलता है। सिन्धु सभ्यता का निचला स्तर निश्चित रूप से हड़प्पा सभ्यता की प्रस्तावना के रूप में एक लम्बे काल से चलने वाली स्थानीय कृषि और तकनीकी का प्रमाण प्रस्तुत करता है। इस विचार के पीछे अन्य तथ्य भी हैं। उस काल में नगर की समकोणीय संरचना की योजना पश्चिम एशिया की किसी भी स्थान में नहीं मिलती है। पश्चिम एशिया के साथ व्यापार भी यह इंगित करता है कि हड़प्पा सभ्यता में अत्यंत उच्चकोटि का विकसित माल बनता होगा और अवश्य ही विकास के इस स्तर को प्राप्त करने में दीर्घकालीन समय लगा होगा। इसके अलावा हाल की पुरातात्विक खुदाइयां भी बहुत सी पुरा-हड़प्पीय और विकसित -हड़प्पीय बस्तियों के मध्य निरंतरता को बतलाती हैं। इस संदर्भ में चन्हूदाड़ो का उदाहरण दिया जा सकता है, जो मनके बनाने वालों का केन्द्र रहा था, यहां हमें संस्कृति की निरंतरता प्राप्त होती है। यद्यपि बलूचिस्तान में अनेक स्थलों और कालीबंगन में हड़प्पा-पूर्व बस्तियों के अवशेष मिले हैं तथापि उनमें और हड़प्पा संस्कृतियों के स्थलों में कोई बहुत स्पष्ट संबंध दिखाई नहीं देता, यद्यपि संभव है कि हड़प्पा सभ्यता का विकास इन्हीं देशज बस्तियों से हुआ हो।

सिन्धु सभ्यता के निर्माता किस समुदाय से संबंधित थे, इसे निश्चित करना वर्तमान में टेढ़ी खीर है, फिर भी प्राचीन नर कंकालों का अध्ययन कर पुराविदों ने इस सभ्यता में प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड, भूमध्य सागरीय, मगोल तथा अल्पाइन प्रजातियों के मानव जन के निवास करने को प्रमाणित किया है।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. आमरी के मृणभाण्ड मोहनजोदड़ो के नगर प्राचीर के चारों तरफ पाये गये हैं।
2. कालीबंगन की खुदाई दर्शाती है कि वहां हड़प्पा काल से भी पूर्व बस्तियां थीं।
3. मेसोपोटामिया में भारतीय तट(हड़प्पा सभ्यता) को मैलुह की संज्ञा दी गयी थी।
4. सिन्धु सभ्यता एक स्टैटाइट सभ्यता थी।
5. सिन्धु सभ्यता में प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड , भूमध्य सागरीय, मंगोल तथा अल्पाइन प्रजातियों के साक्ष्य मिले हैं।

## 2.4 सिन्धु सभ्यता की निरंतरता

सिन्धु संस्कृति की निरंतरता भारतीय सभ्यता के धार्मिक ,सामाजिक या सार्वजनिक तथा आर्थिक जीवन में दिखाई देती है। तथ्यों और तार्किक विश्लेषण द्वारा इस निरंतरता को स्पष्ट किया जा सकता है।

### 2.4.1 धार्मिक जीवन में निरंतरता

- 1- सिन्धु घाटी से प्राप्त अनेक मुद्राओं में सिन्धु देवताओं को अर्द्ध मानव ,अर्द्ध-पशु की आकृति में अंकित किया गया है, इसी प्रकार की कल्पना हमें पौराणिक नृसिंह अवतार में भी मिलती है।
- 2- हड़प्पा सभ्यता की योगी की मूर्ति को शिव-पशुपति का रूप माना गया है। मूर्ति के चारों ओर जानवर हैं (पशुपति), आकृति ध्यान मग्न है(योगीश्वर ), तीन मुखों का संबंध बाद की तीन आँखों की कल्पना से मालूम पड़ता है और लबीं शिरोभूषा के साथ दोनों सींगों ने आगे चलकर त्रिशूल का रूप धारण कर लिया होगा।लिंगों की प्राप्ति से यह मिलान और भी सबल हो जाता है क्योंकि शिव, वर्तमान में सर्वत्र लिंग रूप में ही पूजित हैं।
- 3- सिन्धु घाटी से मातृदेवी की मूर्तियां भी पर्याप्त मात्रा में मिली हैं, मातृ देवी को बाद के देवताओं की अर्द्धांगिनियों या मातृकाओं के रूप में संभवतः पूजने की परंपरा चल निकली।योनि-पूजा सिन्धु सभ्यता की विशिष्टता है जो आगे चलकर हिन्दू तंत्रवाद और बौद्ध-तंत्रवादियों की पूजा की विशिष्ट अंग रही है।शक्ति पूजा के रूप में यह लोकप्रिय है।
- 4- सिन्धु सभ्यता का पवित्र कूबड़युक्त बैल वर्तमान में भी शिव के वाहन नंदी के रूप में पवित्र और सर्वत्र पूज्य माना जाता है।

5- प्रकृति की पूजा सिन्धु घाटी के धर्म की निरंतरता है। आज भी सिन्धु मुहरों में दर्शाये गये वृक्ष, पीपल, बबूल, जीवन-वृक्ष आदि की पूजा होती है। सर्प या नाग देवता भी सिन्धु मुहरों में मिलता है जिसने ऐतिहासिक काल में विभिन्न वंशों के चिह्न के रूप में कार्य किया और जो नाग आदि वंशों के नाम से प्रसिद्ध हुए। आज भी गांवों में सर्प देवता के मंदिर दिख जाते हैं।

6- सिन्धु घाटी से प्राप्त ताबीज और मन्त्र-तन्त्र पर विश्वास आज भारतीय सामाजिक व्यवस्था में बना हुआ है। पवित्र स्वास्तिक चिह्न का प्रयोग भी सिन्धु घाटी में मिलता है।

7- जल-पूजा और सामूहिक स्नान का महत्व सिन्धु सभ्यता से अब तक बना हुआ है। बहुत संभव है कि भारतीय धर्म-ग्रंथों की प्रलय की कहानी हड़प्पा सभ्यता की बाढ़ से ही ली गयी हो?

8- एक दाढ़ीयुक्त तथा जटायुक्त पुरुष की नग्न मृण्मूर्ति, जिसमें पुरुष सीधे खड़ा है, पैर सटे हुए नहीं वरन् दूर-दूर हैं तथा हाथ बगलों के समानान्तर परन्तु उन्हें छूते नहीं हैं, बाद के जैन साधुओं की कायोत्सर्ग मुद्रा से मिलता है।

#### 2.4.2 सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवन में निरंतरता

1- कुछ विद्वान सिन्धु लिपि को ब्राह्मी लिपि का प्रतिरूप मानते हैं , किन्तु इस विषय में निश्चित प्रमाण नहीं हैं, यदि ऐसा हो तो लिपि के क्षेत्र में भी निरंतरता माननी होगी।

2- नियोजित नगर विन्यास की कल्पना सिन्धु सभ्यता से ही मानी जानी चाहिए।

3- सिन्धु नागरिकों द्वारा वस्त्र पहनने का तरीका भी महत्वपूर्ण है, मुद्राओं की आकृतियों से स्पष्ट होता है कि वहां पुरुषों द्वारा अंगरखे का प्रयोग इस प्रकार किया जाता कि वह बायें कन्धे को ढकता हुआ दायें कन्धे के ठीक नीचे से निकलता था, इसी प्रकार से अंगरखे का प्रयोग आज भी रूढ़िवादी हिन्दू के घर देखा जा सकता है।

4- द्यूत क्रीड़ा या पांसे का खेल सिन्धु घाटी की ही देन कही जा सकती है।

5- वी.जी. चाइल्ड के अनुसार ,सिन्धु सभ्यता , भवन-निर्माण और उद्योग के साथ-साथ वेशभूषा तथा धर्म में आधुनिक भारतीय संस्कृति का आधार है।

6- सौन्दर्य प्रसाधन, यथा- चूड़ियां , हाथी दांत की कंधियां , पाउडर, होंटों को रंगना आदि सिन्धु सभ्यता की निरंतरता मानी जा सकती है।

7- सिन्धु सभ्यता से वृहत् परिमाण में मिट्टी के खिलौने मिले हैं, ऐसे ही खिलौनों का प्रयोग बच्चों द्वारा आधुनिक भारतीय गांवों में किया जाते देखा जा सकता है।

### 2.4.3 आर्थिक जीवन में निरंतरता

- 1- कपास का प्रयोग सिन्धु सभ्यता से निरंतर मिलता है।
- 2- आधुनिक मुर्गी का पूर्व रूप हड़प्पा सभ्यता में देखा जा सकता है।
- 3- सिन्धु सभ्यता का प्रमुख खाद्यान्न गेहूँ, आज भी उत्तर भारत का प्रमुख खाद्यान्न है।
- 4- सिन्धु सभ्यता के बांट-बटरखरे, 16 अथवा उसके गुणज भार के हैं, आज भी नाप-तौल के लिए 16 अथवा इसके गुणज की इकाइयां प्रयुक्त होती हैं।
- 5- कुम्हार का चाक, छकड़ा, इक्का और नार्वे आज तक देखी जा सकती हैं।

यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि सिन्धु सभ्यता की कौन-कौन सी विशेषताएँ बाद में भी अपनायीं गयीं पर इतना ज्ञात है कि आर्यों की पाचन शक्ति अत्यधिक थी, उन्होंने आगे चलकर अनेक विदेशी समूहों को आत्मसात कर लिया था, स्वयं अनार्यों को भी उन्होंने अपनी जाति व्यवस्था में स्थान दे दिया था, अतः यह असंभव नहीं कि आर्यों ने सिन्धु सभ्यता से पर्याप्त मात्रा में विचार ग्रहण किये हों।

### 2.5 सिन्धु सभ्यता की विशेषताएँ

सिन्धु सभ्यता एक विशिष्ट वातावरण में मानव जीवन के एक सर्वांगपूर्ण समायोजन का प्रतिनिधित्व करती है। यह सभ्यता काल की कसौटी में खरी उतरी है और आधुनिक भारतीय संस्कृति के लिए आधार प्रस्तुत करती है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- 1- सिन्धु सभ्यता तृतीय कांस्यकाल की सभ्यता है, हालांकि अधिक वस्तुएँ नहीं मिली हैं, फिर भी जो वस्तुएँ मिलती हैं उनसे इस सभ्यता में कांस्यकाल की सर्वोत्कृष्ट विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं, इस संदर्भ में मोहनजोदड़ो की कांस्य नृत्यकी का उदाहरण दिया जा सकता है।
- 2- यह सभ्यता नगरीय और व्यापार प्रधान है। इसके अंतर्गत सिन्धु नागरिकों ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी। उन्हें नगरीय जीवन की अगणित सुविधाएँ प्राप्त थीं। विशाल नगरों, पक्के भवनों, सुव्यवस्थित सड़कों, नालियों और स्नानागारों के निर्माता, सुदृढ़ शासन पद्धति और धार्मिक व्यवस्था के व्यवस्थापक तथा आंतरिक उद्योग धंधों और विदेशी व्यापार के संगठनकर्ता, सिन्धु निवासियों की इस चतुर्दिक अभ्युन्नति के पीछे साधना और अनुभव की एक सुदीर्घ परंपरा थी। इसीलिए सिन्धु प्रदेश की सुख-शांति और विलासिता को देखते हुए कहा गया है कि यहां का साधारण नागरिक सुविधा और विलास का जिस मात्रा में उपभोग करता था उसकी तुलना समकालीन सभ्य संसार के अन्य भागों से नहीं की जा सकती है।

3- सिन्धु सभ्यता में खाद्य अतिरेक की उपलब्धता थी, व्यापार-वाणिज्य का उच्च स्तर था, उन्हें लिपि की जानकारी थी, वे अपनी आवश्यकता के पदार्थों के लिए सक्रिय वाणिज्यिक क्रियाकलाप करते थे, सिन्धु नागरिकों में बहुत अधिक मिश्रित सामाजिक स्तरीकरण, श्रम विभाजन मिलता है। उद्योग-धंधों और शिल्पों की अधिकता इस सभ्यता में दिखाई देती है।

4-सिन्धु सभ्यता शान्तिमूलक थी , उसके संस्थापकों को युद्ध से अनुराग नहीं था , यही कारण है कि सिन्धु प्रदेश के उत्खनन में कवच , शिरस्त्राण और ढाल नहीं मिले हैं। जो अस्त्र-शस्त्र मिले हैं उनका प्रयोग बहुधा आत्म-रक्षा अथवा आखेट के लिए किया जाता था।

5- सिन्धु सभ्यता के अंतर्गत धर्म द्विदेवतामूलक था। सिन्धु निवासियों की श्रद्धा-भक्ति के प्रमुख केन्द्र थे , दो देवता- एक पुरुष के रूप में और दूसरा नारी के रूप में। पुरुष और नारी के चिरंतन द्वन्द का यह मधुर दैवीकरण सिन्धु निवासियों की निशित कल्पना का परिचायक है।

6- सिन्धु सभ्यता में लेख , गणना और माप की प्रतिष्ठा हो चुकी थी , इन्होंने उसकी प्रगति को सत्वरता प्रदान की होगी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. सिन्धु सभ्यता के गांवों का विन्यास योजनानुसार था।
2. सिन्धु सभ्यता तृतीय कांस्यकाल की सभ्यता है
3. सिन्धु सभ्यता के बांट-बटखरे , 16 अथवा उसके गुणज भार के हैं।
4. सिन्धु सभ्यता के अंतर्गत धर्म द्विदेवतामूलक था।
5. स्वास्तिक चिह्न का प्रयोग सिन्धु घाटी में मिलता है।

## 2.6 सारांश

सिन्धु सभ्यता के उद्गम के विषय में पुरावशेषों की अपूर्णता और लिपि सम्बन्धित अज्ञानता के कारण किसी निश्चित विचार को ग्रहण करना अभी संभव नहीं है , फिर भी सभ्यता के उद्गम के विषय में उपरोक्त कुछ विचारधारारें महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं। इनमें से सर्वाधिक रोचक विचार तो यही प्रतीत होता है कि सिन्धु सभ्यता के विकास का आधार स्थानीय स्तर की ग्रामीण थीं। सिन्धु संस्कृति की निरंतरता भारतीय सभ्यता के धार्मिक , सामाजिक या सार्वजनिक तथा आर्थिक

जीवन में दिखाई देती है। आर्यों की पाचन शक्ति अत्यधिक थी, उन्होंने आगे चलकर अनेक विदेशी समूहों को आत्मसात कर लिया था, स्वयं अनार्यों को भी उन्होंने अपनी जाति व्यवस्था में स्थान दे दिया था, सिन्धु सभ्यता का परम पुरुष जो शिव का पूर्व रूप प्रतीत होता है, आर्यों द्वारा महादेव के रूप में स्वीकार किया गया। अतः यह असंभव नहीं कि आर्यों ने सिन्धु सभ्यता से पर्याप्त मात्रा में विचार ग्रहण किये हों। सिन्धु सभ्यता नगरीय और व्यापार प्रधान है। इसके अंतर्गत सिन्धु नागरिकों ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी। उन्हें नागरीय जीवन की अगणित सुविधाएँ प्राप्त थीं।

## 2.7 तकनीकी शब्दावली

खेतिहर - कृषि पर आधारित

गिल्गामेश - सुमेरियाई आख्यानों में वर्णित चरित्र

प्राचीर - दीवार

मैलुहह - मेसोपोटामियाई अभिलेखों में हड़प्पा सभ्यता का प्राचीन नाम

धातुकार्मिक दक्षता - विभिन्न धातुओं के निर्माण एवं धातुओं पर कार्य करने की दक्षता

## 2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 2.3 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - असत्य

इकाई 2.3 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - सत्य

इकाई 2.3 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - सत्य

इकाई 2.3 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर - सत्य

इकाई 2.3 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर - सत्य

इकाई 2.5 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - असत्य

इकाई 2.5 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - सत्य

इकाई 2.5 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - सत्य

इकाई 2.5 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर - सत्य

इकाई 2.5 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर - सत्य

## 2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005

---

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

---

## 2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90,pp. 71-82

Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram Manoharlal,New Delhi,1990

Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995

Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3<sup>rd</sup> edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968

---

## 2.11 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. सिन्धु सभ्यता के उद्गम से संबंधित विभिन्न विचारधाराओं पर चर्चा कीजिए।
2. सिन्धु सभ्यता की कौन-कौन सी बातों को आप बाद की भारतीय सभ्यता में पाते हैं।
3. सिन्धु सभ्यता की विशेषताओं पर एक सारगर्भित निबंध लिखिए।

## इकाई तीन-सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे, धार्मिक,आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन,विदेशी व्यापार एवं सम्पर्क

- 
- 3.1 प्रस्तावना
  - 3.2 उद्देश्य
  - 3.3 सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे
    - 3.3.1 मोहनजोदड़ो
    - 3.3.2 हड़प्पा
    - 3.3.3 चन्हूदाड़ो
    - 3.3.4 कालीबंगन
    - 3.3.5 लोथल
    - 3.3.6 सूरकोटडा
    - 3.3.7 बनवाली
    - 3.3.8 धौलावीरा
  - 3.4 सिन्धु सभ्यता में राजनीतिक जीवन
  - 3.5 सिन्धु सभ्यता में धार्मिक जीवन
    - 3.5.1 परमपुरुष की उपासना
    - 3.5.2 मातृदेवी की पूजा
    - 3.5.3 वृक्ष पूजा
    - 3.5.4 जल पूजा
    - 3.5.5 पशु-पक्षी एवं नाग पूजा
    - 3.5.6 अग्नि तथा बलि पूजा
    - 3.5.7 मृतक संस्कार
    - 3.5.8 अन्य तथ्य
  - 3.6 सिन्धु सभ्यता में आर्थिक जीवन
    - 3.6.1 कृषि
    - 3.6.2 व्यापार तथा वाणिज्य
    - 3.6.3 वस्त्र निर्माण
    - 3.6.4 अन्य उद्योग
    - 3.6.5 विनिमय माध्यम
    - 3.6.6 धातुकर्म
  - 3.7 सिन्धु सभ्यता में व्यापार एवं सम्पर्क
  - 3.8 सारांश
  - 3.9 तकनीकी शब्दावली
  - 3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
  - 3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
  - 3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
  - 3.13 निबंधात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपको सिन्धु सभ्यता से संबंधित विभिन्न तथ्यों के विषय में जानकारी दी गयी। इस इकाई में सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन, विदेशी व्यापार एवं सम्पर्क पर विस्तार से चर्चा की गयी है। सिन्धु सभ्यता के विषय में हमारी जानकारी पुरातात्विक अवशेषों पर आधारित है। यद्यपि हमें इस सभ्यता की लिखित सामग्री मिली है तथापि उसे पढ़ने में हम अभी तक सक्षम नहीं हो पाये हैं।

इस सभ्यता में मिलने वाले स्थलों की संख्या 1000 को पार कर गयी है फिर भी अनेक स्थल अपनी भव्यता के कारण बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। इस सभ्यता का आम नागरिक जिस स्तर की भौतिक सुविधाओं का उपभोग करता था उसकी तत्कालीन विश्व की अन्य सभ्यताओं में जानकारी नहीं थी। जैसा कि पिछली इकाइयों में बतलाया गया है, कि यह सभ्यता नगरीय सभ्यता थी अतः इस इकाई में हम आपको इसके प्रमुख नगरों की जानकारी देंगे।

पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर पुराविदों ने सिन्धु सभ्यता के नागरिकों के धार्मिक जीवन, आर्थिक जीवन तथा राजनीतिक जीवन को जानने का प्रयास भी किया है और इनके आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार एवं सम्पर्क का भी पर्याप्त परिचय देने का प्रयास किया है। इस इकाई में हम इन्हीं सब तथ्यों पर चर्चा करेंगे।

### 3.2 उद्देश्य

सिन्धु सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए प्रथम ब्लाक की पिछली इकाइयों में आपको सिन्धु सभ्यता के विषय में सामान्य जानकारी के अलावा सभ्यता का विस्तार-क्षेत्र तथा कालक्रम सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न विचारधाराएँ, आगामी कालखण्डों में सिन्धु सभ्यता की निरंतरता सिन्धु सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ के विषय में जानकारी प्रदान की गयी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। इस इकाई का उद्देश्य आपको सभ्यता से संबंधित अन्य तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे
2. सिन्धु सभ्यता में राजनीतिक जीवन
3. सिन्धु सभ्यता में धार्मिक जीवन
4. सिन्धु सभ्यता में आर्थिक जीवन

## 5. सिन्धु सभ्यता में व्यापार एवं सम्पर्क

**3.3 सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे**

इस अत्यधिक विस्तृत संस्कृति में अत्यल्प परिवर्तन मिलता है। इस सभ्यता की प्रमुख विशेषता इसका नगर विन्यास है, जो समकोणीय संरचना पर आधारित है। भवन पकी मिट्टी की ईंटों से बनाये गये हैं, सड़कें तथा गलियां सुनियोजित हैं। अधिकतर भवनों में उत्कृष्ट भूमिगत जल-निकास व्यवस्था मिलती है। सिन्धु सभ्यता के लगभग एक हजार से अधिक स्थलों में से आठ नगरों को प्रमुख माना गया है। इन नगरों की प्रमुख विशेषताओं का परिचय आपको दिया जा रहा है-

**3.3.1 मोहनजोदड़ो**

यह नगर सिन्धु के लरकाना जिले अब पाकिस्तान में सिन्धु नदी के तट पर स्थित है। इसका नगर-विन्यास समकोणीय संरचना पर आधारित है। गढ़ी एक टीले पर स्थित है जिसके नीचे नगर विस्तृत है। नगर की मुख्य सड़कें 33 फीट तक चौड़ी हैं और एक-दूसरे को समकोण पर काटती हुई नगर को आयताकार खण्डों में विभाजित करती हैं। इस प्रकार की योजना प्रणाली समकालीन मिस्र या मेसोपोटामिया में अज्ञात थीं। नगर में सुनियोजित गलियों की व्यवस्था मिलती है। सड़कों तथा भवनों में पकी ईंटों से निर्मित उत्कृष्ट भूमिगत जल निकास व्यवस्था मिलती है। भवनों में कूड़ेदान या कूड़ापात्र तथा स्नानागार भी मिले हैं, स्नानागारों को नालियों की सहायता से सड़कों में बनी मुख्य जल निकास व्यवस्था से जोड़ा गया है। यहां भवन निर्माण में निश्चित माप की ईंटों का प्रयोग किया गया है लेकिन पत्थर के भवन का कोई चिह्न नहीं मिलता है। अधिकतर भवनों में दो या अधिक मंजिल मिलती हैं किन्तु सामान्यतः योजना एक सी ही है-एक वर्गाकार आंगन उसके चारों ओर कमरे, प्रवेश-द्वार पिछले हिस्से से, सड़क की ओर खिड़कियों का ना होना, भवन में स्नानागार तथा कूएँ का प्रावधान होना। मोहनजोदड़ो में दो कमरे के भवन भी मिले हैं ये संभवतः समाज के गरीब वर्ग से संबंधित थे। मोहनजोदड़ो का मुख्य आकर्षण यहां स्थित वृहत स्नानागार है, यह ईंटों से निर्मित है और इसमें जल भरने तथा निकासी का प्रावधान मिलता है। वृहत स्नानागार के समीप ही एक विशाल अन्नागार मिला है जो उस समय का प्रमुख भण्डारगृह रहा होगा। अन्नागार के पास ही एकल कक्षों की बैरक प्रकार कतारें मिलती हैं, ये संभवतः दासों के आवास रहे होंगे। खुदाई से पता चला है कि मोहनजोदड़ो कम से कम सात बार बाढ़ से क्षतिग्रस्त और पुनर्निर्मित हुआ था। यहां से कांस्य औजारों के विभिन्न प्रकार प्राप्त हुए हैं और छोटे आकार की ग्यारह प्रस्तर प्रतिमाएँ भी मिली हैं। संदिग्ध स्तर से घोड़े के प्रमाण भी मिले हैं। मोहनजोदड़ो से बुना हुआ सूत का टुकड़ा तथा कपड़े की छाप अनेक वस्तुओं में मिली है। मोहनजोदड़ो में असुरक्षा के कुछ चिह्न मिलते हैं जिनमें विभिन्न स्थानों में आभूषणों का दबाया जाना, एक स्थान में कटे हुए मुंडों का प्राप्त होना और नये प्रकार के हथियारों का मिलना शामिल हैं, यहां बाद के काल के आधे दर्जन से अधिक अस्थिपंजर इंगित

करते हैं कि मोहनजोदड़ो में संभवतः आक्रमण हुआ था। झुंड में पड़े अस्थिपंजर तथा कूएँ की सीढ़ियों में पड़ी एक स्त्री का अस्थिपंजर स्पष्ट करता है कि इन मौतों के पीछे आक्रमणकारी थे।

### 3.3.2 हड़प्पा

यह नगर पंजाब प्रांत अब पाकिस्तानके मोण्टगोमरी जिले में रावी नदी के किनारे स्थित है। मोहनजोदड़ो की भांति इसका नगर-विन्यास भी समकोणीय संरचना पर आधारित है। गढ़ी एक टीले पर स्थित है जिसके नीचे नगर विस्तृत है। नगर की मुख्य सड़कें 33 फीट तक चौड़ी हैं और एक-दूसरे को समकोण पर काटती हुई नगर को आयताकार खण्डों में विभाजित करती हैं। इस प्रकार की योजना प्रणाली समकालीन मिस्र या मेसोपोटामिया में अज्ञात थीं। नगर में सुनियोजित गलियों की व्यवस्था मिलती है। सड़कों तथा भवनों में पकी ईंटों से निर्मित उत्कृष्ट भूमिगत जल निकास व्यवस्था मिलती है। भवनों में कूड़ेदान या कूड़ापात्र तथा स्नानागार भी मिले हैं, स्नानागारों को नालियों की सहायता से सड़कों में बनी मुख्य जल निकास व्यवस्था से जोड़ा गया है। यहां भवन निर्माण में निश्चित माप की ईंटों का प्रयोग किया गया है लेकिन पत्थर के भवन का कोई चिह्न नहीं मिलता है। अधिकतर भवनों में दो या अधिक मंजिल मिलती हैं किन्तु सामान्यतः योजना एक सी ही है। हड़प्पा के अन्नागार की कतारें उल्लेखनीय हैं यहां छह-छह अन्नागारों की दो कतारें मिली हैं, और यहां भी मोहनजोदड़ो की भांति समीप ही छोटे कक्ष निर्मित मिलते हैं। गढ़ी के दक्षिण-पश्चिम में स्थित कब्रिस्तान इंगित करता है कि एक विदेशी समूह ने हड़प्पा को नष्ट किया था।

### 3.3.3 चन्हूदाड़ो

यह नगर मोहनजोदड़ो से 80 मील दक्षिण में स्थित है। यहां गढ़ी नहीं मिली है। चन्हूदाड़ो मनके बनानेवालों की कला का केन्द्र था यहां सोने, चांदी, तांबे, स्टेटाइट तथा शैल के मनके बनाये जाते थे जिनका उपयोग सिन्धु नागरिक तो करते ही थे संभवतः ये व्यापार की भी महत्वपूर्ण सामग्री थे। पुरातात्विक प्रमाणों से पता चलता है कि चन्हूदाड़ो में दो बार भीषण बाढ़ आयी थी जिसने नगर को काफी क्षति पहुंचायी थी। चन्हूदाड़ो के उत्खनन से एक छोटी दवात मिली है जिसे पुराविदों ने स्याहीदान से समीकृत किया है। मोर की आकृति वाले मृणभाण्ड भी चन्हूदाड़ो की विशेषता रही है।

### 3.3.4 कालीबंगन

यह नगर राजस्थान में वर्तमान में सूखी हुई घग्गर नदी के किनारे स्थित था। कालीबंगन में गढ़ी तथा निचला नगर दोनों ही प्राचीरयुक्त हैं। गढ़ी में स्थित एक प्लेटफॉर्म में मिट्टी के गढ़े या अग्निवेदी की कतारें हैं जिनमें राख तथा कोयला भरा है जबकि दूसरे प्लेटफॉर्म में पकी मिट्टी की ईंटों से निर्मित गढ़े में हड्डियां मिलती हैं। ये उदाहरण सिन्धु सभ्यता में अग्निपूजा तथा बलिप्रथा की ओर संकेत करते हैं। कालीबंगन सिन्धु सभ्यता का एक प्रमुख नगर था, नगरीय जीवन की सभी

सुविधाएँ यहां मिलती हैं अनेक भवनों में अपने कूएँ थे। कालीबंगन का पूर्व-हड़प्पीय चरण, हड़प्पाकाल के विपरीत राजस्थान में खेत की जुताई को दर्शाता है।

### 3.3.5 लोथल

लोथल नामक नगर गुजरात में कैम्बे की खाड़ी के समीप स्थित है। लोथल सिन्धु सभ्यता का एकमात्र नगर है जहां हमें बन्दरगाह या गोदीबाड़ा मिला है। इस बन्दरगाह की प्राप्ति से सिन्धु नागरिकों की सामुद्रिक गतिविधियों एवं विदेशी व्यापार की पुष्टि होती है। धान भी केवल रंगपुर और लोथल में ही मिला है अतः प्रमाणित होता है कि कम से कम 1800 ईसा पूर्व से चावल का प्रयोग करते थे। और रंगपुर के साथ एक अन्य समानता यह भी है कि लोथल भी मनके बनानेवालों का केन्द्र था, यहां सोने, चांदी, तांबे, स्टेटाइट, शैल आदि के बनाये जाते थे। लोथल के एक संदिग्ध स्तर से घोड़े की मृणमूर्ति के प्रमाण भी मिले हैं। लोथल से हमें कालीबंगन की भांति अग्निपूजा के संकेत भी मिले हैं।

### 3.3.6 सूरकोटडा

गुजरात में अहमदाबाद से लगभग 270 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित था। यहां की गढ़ी तथा निचला नगर दोनों ही कालीबंगन की भांति प्राचीर से घिरे हुए हैं। नगरीय जीवन की सुविधाएँ यहां भी दिखाई देती हैं। उत्खननकर्ताओं ने यहां से घोड़े के अस्थि-अवशेष प्राप्त किये हैं। हालांकि हम जानते हैं कि घोड़ा सिन्धु नागरिकों को अज्ञात था पुराविदों का मानना है कि यह एक अपवाद था और यह किस तरह यहां आया इस बात में अटकलें हैं।

### 3.3.7 बनवाली

बनवाली नामक नगर वर्तमान में सूखी हुई सरस्वती घाटी में स्थित है। बनवाली में भी कालीबंगन, कोटदीजी और हड़प्पा की भांति ही दो सांस्कृतिक चरण-पूर्व हड़प्पीय और हड़प्पीय मिलते हैं। बनवाली में सड़क तथा जल निकास प्रणाली के भी प्रमाण मिले हैं। यहां से पर्याप्त मात्रा में जौ की प्राप्ति हुई है तथा सरसों के प्रमाण भी मिले हैं।

### 3.3.8 धौलावीरा

धौलावीरा नामक स्थल की खोज आर.एस.बिष्ट द्वारा 1988-89 में की गयी थी। यह स्थल गुजरात में भुज से लगभग 250 किलोमीटर दूर स्थित है। इस नगर का नगर विन्यास सिन्धु सभ्यता के अन्य नगरों से थोड़ा अलग है। यहां मध्य में गढ़ी निर्मित मिलती है जिसके बाद मध्य का नगर और फिर निचला नगर मिलते हैं। ये सभी पृथक-पृथक रूप से प्राचीरयुक्त हैं। गढ़ी से बाहर की ओर योजनानुसार गलियां निकली हैं। धौलावीरा की प्रमुख विशेषता यह है कि यहां विश्व की प्राचीनतम

जल संरक्षण प्रणाली के दर्शन होते हैं। उपग्रह से प्राप्त तस्वीरों से पता चलता है कि यहां एक विशाल भूमिगत जलाशय था जिसमें वर्षा का पानी इकट्ठा होता था, हमें नगर की प्राचीरों में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि पानी यहां से इकट्ठा होकर इस जलाशय में चला जाता था। घौलावीरा की एक अन्य विशेषता यह है कि यहां से 10 विशाल प्रस्तर अभिलेख मिले हैं, संभवतः ये नगर की विभिन्न सड़कों को इंगित करने वाले साइनबोर्ड रहे हों।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. मोहनजोदड़ो पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. हड़प्पा सभ्यता के नगर विन्यास पर चर्चा कीजिए।

## 3.4 सिन्धु सभ्यता में राजनीतिक जीवन

सिन्धु सभ्यता के भवनों, सार्वजनिक इमारतों, स्नानागारों, विस्तृत सड़कों, गलियों आदि का नियोजन एवं निर्माण तथा व्यवस्था को देखकर कोई भी कल्पना कर सकता है कि यहां नागरिक प्रशासन जैसी कोई प्रणाली रही होगी और दीर्घकाल तक सिन्धु सभ्यता में कोई परिवर्तन न आना इस तथ्य को इंगित करता है कि यहां का प्रशासन विकसित, सुसंगठित तथा प्रभावकारी रहा होगा। हमें लिखित सामग्री मिली है लेकिन पुराविद अभी तक उसे पढ़ नहीं पाये हैं अतः हम सिन्धु घाटी के प्रशासनिक स्वरूप को जानने के लिए केवल मात्र भौतिक अवशेषों पर आश्रित हैं। इन अप्रत्यक्ष प्रमाणों के अनुशीलन के आधार पर हम कह सकते हैं कि यहां के नागरिकों का जीवन सुरक्षित, शांतिपूर्ण और व्यवस्थित था। इन्हीं अवशेषों के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता के राजनीतिक जीवन से संबंधित विविध विचार व्यक्त किये हैं-

पश्चिमी विद्वान हंटर तथा मैके के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि सिन्धु संस्कृति का प्रशासन जनतांत्रिक प्रणाली के अनुसार चलता था जबकि रूस के पुराविद स्टूवे का मानना है कि सिन्धु सभ्यता का प्रशासन गुलामों के आधार पर चलता था। स्टूअर्ट पिगट नामक पुराविद का मानना है कि हड़प्पा साम्राज्य पर दो राजधानियों द्वारा शासन चलाया जाता था, जो एक-दूसरे से 350 मील की दूरी पर स्थित थीं किन्तु ये दोनों नगर नदियों द्वारा जुड़े हुए थे।

व्हीलर नामक पुराविद के अनुसार, हड़प्पा के के स्वामी अपने नगरों का शासन लगभग उसी प्रकार करते थे जैसे सुमेर तथा अक्काद के पुरोहित राजा, सुमेर में नगर का अनुशासन तथा धन मुख्य देवता के हाथों में रहता था। यह देवता पुरोहित राजा कहलाता था तथा यहां मंदिर सार्वजनिक जीवन का केन्द्र था। इसका प्रबन्ध अलौकिक शक्तियों द्वारा होता था। इस प्रकार के राज्य को वास्तव में नौकरशाही राज्य कहा जा सकता है जिससे तत्कालीन संगठन, अतिरिक्त धन का वितरण तथा रक्षा आदि के कार्य संपन्न होते थे। इस प्रकार के राज्य में साधारण व्यक्ति को अधिकार प्राप्त नहीं थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न पुराविदों ने भिन्न-भिन्न शासन प्रणाली का होना सिन्धु सभ्यता में बताया है अतः जब तक सिन्धु लिपि को पढ़ने में सफलता नहीं मिलती तब तक हम किसी ठोस निष्कर्ष में नहीं पहुंच सकते हैं।

### 3.5 सिन्धु सभ्यता में धार्मिक जीवन

सिन्धु घाटी की खुदाई से जो साक्ष्य मिले हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इस सभ्यता में धार्मिक जीवन और विश्वास की एक दीर्घ परंपरा थी। इस धर्म में बाहरी विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी विशेषताएँ भी पायी जाती हैं जो आज भी हिन्दू धर्म में मौजूद हैं, इनके अंतर्गत शिव-शक्ति पूजा, नाग पूजा, वृक्ष पूजा, पाषाण पूजा, लिंग-योनि पूजा तथा योग को सम्मिलित किया जा सकता है। इन सबका शीर्षकवार अध्ययन किया जा सकता है-

#### 3.5.1 परमपुरुष की उपासना

सिन्धु घाटी की एक मुद्रा में शिव के पूर्व रूप अर्थात् परम पुरुष की आकृति अंकित मिलती है, इस आकृति के तीन मुख हैं तथा तीन आंखें हैं। चौकी पर विराजमान इस आकृति के दाहिनी ओर हाथी तथा बाघ और बांयी ओर गैंडा एवं भैंसा अंकित हैं, चौकी के नीचे हिरण के समान सींगों वाला पशु अंकित है। राधाकुमुद मुखर्जी ने इसे पशुपति माना है। एक अन्य मुद्रा में नागों से घिरे योगासीन पुरुष की आकृति अंकित मिलती है जबकि एक अन्य मुद्रा में धनुषधारी पुरुष का आखेटक रूप में अंकन किया गया है। सिन्धु घाटी से अनेक लिंगाकारों की प्राप्ति हुई है अतः कहा जा सकता है कि यहां शिव की लिंग रूप में भी पूजा होती थी। सिन्धु सभ्यता में कुछ इस प्रकार के छल्ले मिले हैं जिन्हें पुराविदों ने योनिपूजा से समीकृत किया है, लिंग पूजा तथा योनि पूजा का घनिष्ठ संबंध है ये दोनों सृष्टिकर्ता के सृजनात्मक रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सभी प्रतीक एवं संकेत हमें बताते हैं कि उस काल में परमपिता परमेश्वर के पुरुषरूप तथा प्रतीक चिह्नों के रूप में सिन्धु सभ्यता में शिवोपासना प्रचलित थी। मार्शल नामक पुराविद तो सिन्धुघाटी को शैव धर्म की उत्पत्ति का क्षेत्र मानते हुए उसे विश्व का प्राचीनतम धर्म मानता है।

#### 3.5.2 मातृदेवी की पूजा

मोहनजोदड़ो, चन्हूदाड़ो तथा हड़प्पा से प्राप्त मातृदेवी की प्रतिमाओं तथा इन प्रतिमाओं में अंकित विविध आभूषण इत्यादि मातृदेवी के विविध रूपों तथा प्रतीकों के परिचायक हैं। मातृदेवी के इन अंकों में उसके वनस्पति के रूप में उपास्य, जगत जननी के रूप में पूज्य तथा पशु जगत की अधीश्वरी का आभास मिलता है। विद्वानों की यह धारणा है कि मातृदेवी के ये विविध रूप उसकी विविध शक्तियों के परिचायक हैं। मार्शल नामक पुराविद के अनुसार सिन्धु प्रदेश में मातृदेवी को आद्य शक्ति के रूप में पूजा जाता था।

### 3.5.3 वृक्ष पूजा

सिन्धु घाटी की मुद्राओं तथा मृणभाण्डों में ऐसे अनेक वृक्षों का अंकन मिलता है जो विशिष्ट प्रतीत होते हैं और जिन्हें सिन्धु नागरिकों के धार्मिक विश्वास से जोड़ा जा सकता है। यहां से प्राप्त एक मुद्रा में मानव आकृति पीपल की पत्तियां पकड़े हुए प्रदर्शित है, जबकि दूसरी मुद्रा में जुड़वां पशु के सिर पर पीपल की पत्तियों का अंकन मिलता है, कुछ मुद्राओं में देवताओं को वृक्ष की रक्षा करते हुए प्रदर्शित किया गया है। चित्रों में जिन धार्मिक महत्व के वृक्षों को पहचाना गया है उनमें पीपल के अलावा नीम, बबूल, शीशम, खजूर के वृक्ष उल्लेखनीय हैं।

### 3.5.4 जल पूजा

मोहनजोदड़ो से प्राप्त विशाल स्नानागार तथा अनेक अन्य स्नानागारों की प्राप्ति सिन्धु सभ्यता में जल पूजा पर प्रकाश डालती हैं। कुछ विद्वानों ने तो मोहनजोदड़ो के विशाल स्नानागार को जल देवता का मंदिर भी बताया है। जल पूजा बाद के हिन्दू धर्म में महत्वपूर्ण रही है अतः संभव है कि सिन्धु सभ्यता में जल पूजा की जाती रही हो।

### 3.5.5 पशु-पक्षी एवं नाग पूजा

हमें मालूम है कि विश्व की सभी सभ्यताओं में पशु-पक्षी पूजा प्रचलित रही है। सिन्धु घाटी के कुछ पशु-पक्षी भी विशिष्ट प्रतीत होते हैं, इनमें बैल और विशेषकर कूबड़वाला बैल प्रमुख है जो बाद के काल में शिव के वाहन के रूप में आराध्य रहा है। इसके अतिरिक्त बत्तख भी सिन्धु नागरिकों की आस्था का केन्द्र प्रतीत होती है। एक मुद्रा में नाग की पूजा करते हुए व्यक्ति का अंकन मिला है। अतः इनत थ्यों के आधार पर सिन्धु घाटी में पशु-पक्षी एवं नाग पूजा की कल्पना भी की जा सकती है।

### 3.5.6 अग्नि तथा बलि पूजा

कालीबंगन, लोथल आदि स्थानों में कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जो सिन्धु सभ्यता में अग्नि तथा बलि पूजा की ओर इशारा करते हैं। मोहनजोदड़ो में एक धारदार हथियार के समीप एक पशु का अंकन, कालीबंगन की अग्निशालाएं एवं पशुओं की हड्डी से भरे गड्डे इत्यादि सिन्धु सभ्यता में अग्नि तथा बलि पूजा की ओर संकेत करते हैं यद्यपि इस संबंध में प्रामाणिकता के साथ कहना संभव नहीं है।

### 3.5.7 मृतक संस्कार

प्रमाणों से लगता है कि सिन्धु निवासी अपने मृतकों को भूमि पर दफनाकर, चिता में जलाकर तथा शव को जंगलों में खुला छोड़कर मृतक संस्कार करते थे। विभिन्न स्थलों से अनेक

घड़ों की प्राप्ति हुई है जिनमें मानव अस्थियां तथा भस्म मिली है। वे मृतकों की कब्रों में मरणोत्तर जीवन पर विश्वास रखते हुए शव के साथ अनेक जीवनोपयोगी सामग्री भी रख देते थे।

### 3.5.8 अन्य तथ्य

सिन्धु घाटी से भारी मात्रा में ताबीजों की प्राप्ति भी हुई है जो उनके जादू-टोने इत्यादि में अतिरेक विश्वास को दर्शाते हैं। सिन्धु नागरिक मूर्तिपूजक थे और ऐसा प्रतीत होता है कि वे चिन्तन की अपेक्षा साकार उपासना पर बल देते हुए मूर्ति पूजा करते थे। उन्होंने अपने देवी-देवताओं का मानवीयकरण किया था और उनकी मूर्तियां निर्मित की थीं। उत्खनन में दीपक भी मिले हैं और कुछ स्तंभों के शीर्ष भाग में दीपक तथा नीचे अग्नि जलाने के प्रमाण भी मिले हैं। अभी तक जो प्रमाण मिले हैं उनके आधार पर हम उनके धर्म दर्शन पर अधिक नहीं कह सकते पर इतना तो निश्चित है कि सिन्धु निवासी बहुदेववाद में आस्था रखने के साथ-साथ एकेश्वरवादी भी थे।

## 3.6 सिन्धु सभ्यता में आर्थिक जीवन

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त साक्ष्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वहां अर्थव्यवस्था पर्याप्त उन्नत थी, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के वैभवशाली और विलासमय जीवन के प्रमाण वहां किसी सुसंगठित आर्थिक व्यवस्था का होना बतलाती है। सिन्धु सभ्यता के आर्थिक जीवन का अध्ययन हम विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं-

### 3.6.1 कृषि

प्राप्त साक्ष्यों के अध्ययन से पता चलता है कि सिन्धु सभ्यता में कृषि का प्रमुख स्थान था। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाये गये विशाल अन्नागार इस तथ्य को उजागर करते हैं कि इस सभ्यता में खाद्य अतिरेक होता था और उसके भण्डारण की इन्होंने समुचित व्यवस्था की थी। वे कृषि कार्यों से भली-भांति परिचित थे और सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों की उर्वर भूमि में वे खेती करते थे। अवशेषों के अध्ययन से पता चलता है कि वे गेहूं, जौ, तिल, कपास, धान, सरसों आदि की खेती करते थे।

### 3.6.2 व्यापार तथा वाणिज्य

सिन्धु सभ्यता में व्यापार एवं वाणिज्य भी पर्याप्त विकसित अवस्था में था, इसका सविस्तार विवरण आगे दिया जायेगा।

### 3.6.3 वस्त्र निर्माण

सिन्धु निवासी कपास की खेती भी करते थे। खुदाई में बहुत से तकुए एवं सूत की नलियां प्राप्त हुई हैं, जो इस बात के परिचायक हैं कि कताई साधारण जनता में लोकप्रिय थी। कपास को कात

कर सूत बनाया जाता था तथा इसके द्वारा अनेक प्रकार के कपड़े बनाये जाते थे। वस्त्र बनाने के लिए सिन्धु निवासी ऊन का प्रयोग भी करते थे। रंगाई के अनेक हौजों की प्राप्ति से वस्त्रों की रंगाई पर भी प्रकाश पड़ता है। उत्खनन में हड्डियों तथा सीपों के बटन तथा धातु की सूइयां भी मिली हैं जिनसे पता चलता है कि उन्हें वस्त्रों की सिलाई-कड़ाई का भी ज्ञान था। सिन्धु सभ्यता में निर्मित वस्त्रों का निर्यात सुदूर देशों को किया जाता था।

### 3.6.4 अन्य उद्योग

सिन्धु सभ्यता के अध्ययन से यह तथ्य उजागर होता है कि इस सभ्यता में बहुत अधिक औद्योगिक विशिष्टीकरण एवं श्रम-विभाजन था। जीवन की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति विभिन्न उद्योगों द्वारा की जाती थी। सिन्धु घाटी से कैंची, कुल्हाड़ी, हंसिया, हथौड़ा, सुई, विभिन्न प्रकार के बर्तन, मूर्तियां मुद्राएँ, अनेक प्रकार के खिलौने, ताबीज, विविध आकार-प्रकार की ईंटें, आभूषण इत्यादि भारी मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त जीवनोपयोगी सामग्रियां, प्रसाधन सामग्रियां इत्यादि का भी यहां के नागरिकों में पर्याप्त प्रचलन था। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि सिन्धु सभ्यता में बढ़ई, सुनार, जौहरी, मूर्तिकार, कुंभकार, रंगरेज एवं धातुकारों के उद्योग खूब फलफूल रहे थे।

### 3.6.5 विनिमय माध्यम

इस अत्यधिक विकसित अर्थ व्यवस्था में हमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है जिसके आधार पर हम किसी सांकेतिक मुद्रा की कल्पना कर सकें। बहुत संभव है कि आंतरिक व्यापार-वाणिज्य में वे वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रयोग करते रहे हों और विदेशी व्यापार के अंतर्गत वे अपने माल की बिक्री के बदले बहुमूल्य धातुएँ, मणि-रत्नों-कीमती पत्थरों अथवा सिन्धु घाटी में अप्राप्य वस्तुओं का विनिमय करते हों।

### 3.6.6 धातुकर्म

खुदाई से प्राप्त वस्तुओं के निरीक्षण से पता चलता है कि सिन्धु निवासियों को अनेक धातुओं की जानकारी थी। अनेक ऐसी धातु भी मिली हैं जो सिन्धु घाटी क्षेत्र में नहीं पायी जाती हैं अवश्य ही ऐसी धातुएँ व्यापार के माध्यम से प्राप्त की गयी होंगी। जिन धातुओं की सिन्धु निवासियों को जानकारी थी उनमें तांबा, सोना, चांदी, टिन, कांसा, सीसा प्रमुख थे। धातुकर्म विकसित था और धातुकारों की भट्टियां इस बात के प्रमाण हैं कि विविध प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। हमें खुदाई में धातु के उपकरण, अस्त्र-शस्त्र, मूर्तियां, बरतन इत्यादि प्राप्त हुए हैं।

### 3.7 सिन्धु सभ्यता में व्यापार एवं सम्पर्क

सिन्धु सभ्यता में आंतरिक व्यापार समृद्ध था। नाप के लिए ये सीप की पटरियों का प्रयोग करते थे। मैके के अनुसार पटरियों का लम्बाई 13.2 इंच थी। उनके अनेक बांट-बटखरे मिले हैं, अधिकांश बांट 16 अथवा उसके गुणज भार के हैं। अपनी लिपि होने के कारण वे संभवतः व्यापार का लेखा-जोखा भी रखते हों। सिन्धु सभ्यता के नगरों में निर्मित होने वाली अनेक वस्तुओं के लिए जरूरा कच्चा माल वहां उपलब्ध नहीं था। वे धातु की मुद्रा का प्रयोग नहीं करते थे। बहुत संभव है कि व्यापार वस्तु-विनिमय के माध्यम से चलता हो। निर्मित वस्तुओं और संभवतः अनाज के बदले वे पड़ोसी प्रदेशों से धातुएं प्राप्त करते थे और उन्हें नौकाओं तथा बैलगाड़ियों में ढोकर लाते थे। अरब सागर में तट के पास उनकी नौकाएँ चलती थीं, वे पहिये का उपयोग जानते थे और लगता है कि वे आधुनिक इक्के जैसे किसी वाहन का प्रयोग भी करते थे।

ऐसा लगता है कि उस काल में व्यापार का क्षेत्र विस्तृत हो चला था। व्यापार के द्वारा नजदीक ही नहीं वरन् सुदूर देशों से भी सामग्री प्राप्त की जाती थी और उस सामग्री का प्रयोग नगर के स्थापत्य तथा वहां के नागरिकों की आवश्यकताओं के लिए किया जाता था। सिन्धु सभ्यता में मिला सोना ऐसी ही एक सामग्री है, एडविन पेस्को के अनुसार, सोना उस समय केवल मैसूर की कोलार खानों में मिलता था। इसी प्रकार मोहनजोदड़ो में प्रयुक्त हरा पत्थर नीलगिरि की पहाड़ियों में स्थित दोछाबेड़ा नामक स्थान से मिलता था। यह भारतीय हरा पत्थर शाम में ऊर नामक स्थान पर भी प्रयुक्त हुआ है। अन्य सुदूरवर्ती प्रदेशों से लाये गये पदार्थों में बदख्शां के लाजवर्द, खुरासान के फीरोजे, और पामीर पूर्वी तुर्कीस्तान और तिब्बत के भरगज या भसार प्रमुख हैं। जैसलमेर से पीला पत्थर और किरथर की पहाड़ियों से खड़िया प्राप्त की जाती थी।

लगभग 2350 ईसा पूर्व से आगे के मेसोपोटामियाई अभिलेखों में मैलुहह के साथ व्यापार करने के उल्लेख मिलते हैं। यह संभवतः सिन्धु प्रदेश का प्राचीन नाम था। मेसोपोटामियाई अभिलेखों में बीच के दो स्थलों - दिलबन तथा मकन का उल्लेख भी आया है। इनमें से दिलबन संभवतः फारस की खाड़ी में स्थित बाहरीन था।

विदेशी व्यापार के अंतर्गत सिन्धु नागरिकों के संबंध सुमेर और संभवतः अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, ईरान, बदख्शां, बाहरीन, ओमान, और मध्य एशिया से थे। बेबीलोन से प्ररप्त कीलाक्षर लेखों से पता चलता है कि व्यापार पश्चिम एशिया में 800 मील लम्बे समुद्र तट के किनारे-किनारे किया जाता था। उर मेसोपोटामिया में प्रवेश के लिए प्रमुख बन्दरगाह था। सोना संभवतः दक्षिण भारत तथा अफगानिस्तान से मिलता था। चांदी संभवतः अफगानिस्तान तथा ईरान से प्राप्त की जाती थी।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. सिन्धु सभ्यता के व्यापार पर टिप्पणी करिये।
2. सिन्धु सभ्यता के विदेशी सम्पर्क पर टिप्पणी करिये।

### 3.8 साराशं

सिन्धु सभ्यता के लगभग एक हजार से अधिक स्थलों में से आठ नगरों को प्रमुख माना गया है। इस सभ्यता की प्रमुख विशेषता इसका नगर विन्यास है, जो समकोणीय संरचना पर आधारित है। सिन्धु सभ्यता के भवनों, सार्वजनिक इमारतों, स्नानागारों, विस्तृत सड़कों, गलियों आदि का नियोजन एवं निर्माण तथा व्यवस्था को देखकर कोई भी कल्पना कर सकता है कि यहां नागरिक प्रशासन जैसी कोई प्रणाली रही होगी और दीर्घकाल तक सिन्धु सभ्यता में कोई परिवर्तन न आना इस तथ्य को इंगित करता है कि यहां का प्रशासन विकसित, सुसंगठित तथा प्रभावकारी रहा होगा। विभिन्न पुराविदों ने भिन्न-भिन्न शासन प्रणाली का होना सिन्धु सभ्यता में बताया है अतः जब तक सिन्धु लिपि को पढ़ने में सफलता नहीं मिलती तब तक हम किसी ठोस निष्कर्ष में नहीं पहुंच सकते हैं। सिन्धु घाटी की खुदाई से जो साक्ष्य मिले हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इस सभ्यता में धार्मिक जीवन और विश्वास की एक दीर्घ परंपरा थी। यहां अर्थव्यवस्था पर्याप्त उन्नत थी, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के वैभवशाली और विलासमय जीवन के प्रमाण वहां किसी सुसंगठित आर्थिक व्यवस्था का होना बतलाती है।

### 3.9 तकनीकी शब्दावली

1. प्राचीरयुक्त - दीवारयुक्त
2. अन्नागार- अन्न रखने का सुरक्षित स्थान
3. मरणोत्तर जीवन - मृत्यु के बाद का जीवन

### 3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

- इकाई 3.3 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर देखने के लिए पढ़ें इकाई 3.3
- इकाई 3.3 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देखने के लिए पढ़ें इकाई 3
- इकाई 3.7 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर देखने के लिए पढ़ें इकाई 3.7
- इकाई 3.7 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देखने के लिए पढ़ें इकाई 3.7

---

### 3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

1. रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010
2. वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
3. ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीनभारतीयसंस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984
4. ए.एलबाशम: अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972

---

### 3.12 सहायकउपयोगी पाठ्य सामग्री

---

1. Allchin, Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation, Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi, 1993
2. Bisht, R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90, pp. 71-82
3. Chakraborti, D.K, The External Trade of the Harappans, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1990
4. Rao, S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House, New Delhi, 1973
5. Gupta, S.P(ed), The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation, Kusumanjali Publishers, Jodhpur, 1995
6. Vats, M.S, Excavations at Harappa, vol.1, Archaeological Survey of India, New Delhi, 1999
7. Wheeler, R.E.M, The Indus Civilisation, 3<sup>rd</sup> edn. Cambridge University Press, Bentley House, London, 1968

---

### 3.13 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. सिन्धु सभ्यता के नगरों का परिचय दीजिए।
2. सिन्धु नागरिकों के व्यापार एवं विदेशी सम्पर्क पर टिप्पणी लिखिए।

---

## इकाई चार - सिन्धु सभ्यता की भाषा,लिपि,एवं पतन

---

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 सिन्धु सभ्यता की भाषा एवं लिपि
  - 4.3.1 लिपि का उत्पत्ति
  - 4.3.2 लिपि पढ़ने का प्रयास
- 4.4 सिन्धु सभ्यता का पतन
  - 4.4.1 सिन्धु नागरिकों की आत्मघाती कमजोरियां
  - 4.4.2 आर्यों का उत्तरदायित्व
  - 4.4.3 विदेशी तत्वों की भूमिका
    - 4.4.4 प्राकृतिक आपदाएँ
- 4.7 सारांश
- 4.8 तकनीकी शब्दावली
- 4.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

सिन्धु सभ्यता से संबंधित पहली तीन इकाइयों से आपको इकाई सिन्धु सभ्यता के विस्तार, क्षेत्र तथा कालक्रम, सभ्यता की उत्पत्ति, विकास, निरन्तरता तथा विशेषताएं एवं सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन, विदेशी ब्यापार एवं सम्पर्क से संबंधित विभिन्न पहलुओं के विषय में जानकारी हो गयी होगी। इस इकाई में आपको सिन्धु सभ्यता की भाषा-लिपि एवं सभ्यता के पतन के बारे में जानकारी दी जायेगी।

सिन्धु सभ्यता के लगभग 1000 से अधिक स्थलों का अबतक उत्खनन हो चुका है और उत्खनित स्थलों से 2000 से अधिक मुहरों की प्राप्ति हुई है। इन मुहरों कुछ मृद्भाण्डों और धौलावीरा से प्राप्त 10 बड़े अभिलेखों में हमें सिन्धु सभ्यता की लिपि के प्रमाण मिलते हैं। इन पुरावशेषों में सांकेतिक लिपि चिह्नों में कोई भाषा लिखी गयी है।

भाषा और लिपि की अनभिज्ञता के कारण हम अभी तक सिन्धु सभ्यता के प्रारंभिक ज्ञान तक ही सीमित हैं। हमें कोई रोसेट्टा स्टोन की भांति का द्वि-भाषी अभिलेख मिल जाये तो हम सिन्धु सभ्यता के विषय में, उनके जीवन दर्शन के बारे में और अनेकानेक बातों के बारे में जानकारी पा सकेंगे। अभी तो हमें यह भी नहीं पता कि इस सभ्यता का अंत कैसे हुआ, उनके समक्ष क्या चुनौतियां थीं। पुरावशेषों के अध्ययन एवं विश्लेषण द्वारा विद्वानों ने इन प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश की है।

## 4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको सिन्धु सभ्यता की भाषा-लिपि एवं सभ्यता के पतन के बारे में जानकारी देना है, इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- 1- सिन्धु सभ्यता की भाषा-लिपि
- 2- सिन्धु सभ्यता के पतन

## 4.3 सिन्धु सभ्यता की भाषा एवं लिपि

सिन्धु लिपि की उत्पत्ति के संबंध में अभी आधिकारिक रूप से कुछ भी कहना प्रासंगिक नहीं है; संभवतः भविष्य की खोज ही इस विषय में सम्यक प्रकाश डाल पायेगी। यहां पर इस विषय को समझने में आपको प्रख्यात विद्वान डेविड डिरिंगर का कथन महत्वपूर्ण हो सकता है। डिरिंगर के अनुसार सिन्धु सभ्यता की लिपि सांकेतिक थी, किन्तु यह स्थापित करना अत्यंत कठिन है कि यह

स्थानीय थी या बाहर से लायी गयी थी। इस लिपि और कीलाक्षर लिपि तथा प्राचीन एलमाइट लिपियों की पूर्वज लिपि में कोई संबंध रहा होगा लेकिन यह स्थापित करना कठिन है कि यह संबंध क्या था। इस संबंध कुछ अनुमान लगाये जा सकते हैं ; जैसे- सिन्धु लिपि शायद उस लिपि से उत्पन्न हुई जो इस समय अज्ञात है और शायद जो कीलाक्षर लिपि और एलमाइट लिपि की भी पूर्वज थी। यह भी हो सकता है कि तीनों ही लिपियों का जन्म स्थानीय हो लेकिन इनमें एक लिपि कीलाक्षर लिपि या पुरानी एलमाइट लिपि का प्रतिरूप थी, क्योंकि वह मौलिक लिपि थी और शेष दो लिपियों का जन्म उस प्रेरणा का परिणाम था जो लेखन कला के कारण अस्तित्व में आ चुकी थी।

सिन्धु लिपि, अर्द्ध-सांकेतिक लिपियों के परिवार से संबंधित प्रतीत होती है। इसमें 400-500 विभिन्न चिह्न हैं, लेकिन मूल चिह्न 62 हैं और शेष उन्हीं के परिवर्तित रूप हैं। परिवर्तित रूप मूल चिह्नों या अक्षरों में मात्रा या अर्द्ध-अक्षर या अन्य अक्षर को जोड़कर बनाये गये लगते हैं। उदाहरण के लिए मीन या मछली चिह्न से अनेक प्रकार के सरल और क्लिष्ट अक्षर बने मिलते हैं। कुछ मुद्राओं से ऐसा लगता है कि यह लिपि दायें से बायें लिखी जाती रही होगी।

#### 4.3.1 लिपि का उत्पत्ति

अनेक विद्वानों ने सिन्धु लिपि की उत्पत्ति के विषय में प्रकाश डालने का प्रयास किया है। सर जॉन मार्शल, रैवरैण्ड हैरस जैसे विद्वानों सिन्धु सभ्यता का तादात्मीकरण द्रविड़ सभ्यता से स्थापित करने का सुझाव देते हैं। रैवरैण्ड हैरस तो सिन्धु लिपि को बायें से दायें पढ़ते हैं और उसे तमिल भाषा का पूवै रूप बतलाते हैं। विद्वान पुरालिपिशास्त्री वैडल ने अपनी पुस्तक दि इण्डो सुमेरियन सील्स डिसाइफर्ड में सिन्धु लिपि का संबंध सुमेर की भाषा और लिपि के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है। वैडल का मानना है कि चौथी सहस्राब्दी ईसापूर्व में सुमेरियाइयों ने सिन्धु घाटी में अपना एक उपनिवेश स्थापित कर लिया था और वहां अपनी भाषा तथा लिपि को भी प्रचलित किया। विश्व की प्राचीनतम लिपियों में वस्तुतः अपनी चिह्न-सांकेतिक प्रवृत्तियों के कारण पर्याप्त एकरूपता दृष्टिगोचर होती है। सिन्धु लिपि और मिस्र, क्रीट, सुमेर आदि देशों की लिपियों में यह एकरूपता स्वाभाविक है, वर्तमान साक्ष्यों के प्रकाश में यह कहना कठिन है कि सिन्धु नागरिकों ने अपनी लिपि सुमेर से प्राप्त की थी या सुमेर के लोगों ने अपनी लिपि सिन्धु घाटी से।

दि स्क्रिप्ट ऑफ हड़प्पा एण्ड मोहनजोदड़ो में जी.आर. हण्टर, सांकेतिक लिपि की प्रकृति बताते हुए लिखते हैं कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुद्राओं के बहुत से लिपि-चिह्न प्राचीन मिस्र की सांकेतिक लिपि से मिलते हैं। विशेषतौर पर वे चिह्न जो देवी-देवताओं को मानव रूप में प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त किये गये हैं, यहां सिन्धु सभ्यता की लिपि और मिस्र की लिपि में अद्भुत समानता मिलती है। हण्टर आगे बताते हैं कि ऐसे चिह्नों का एक भी पर्याय हमें सुमेर की लिपि या प्रोटो-एलमाइट लिपि में नहीं मिलता है, साथ ही हण्टर कहते हैं कि देखने वाली बात यह है कि हमें

कई ऐसे चिह्नों के पर्याय प्रोटो-एलमाइट लिपि और विशेषकर जैम्दैत-नस्र अभिलेखों में मिलते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की लिपि कुछ मिस्र की लिपि से और कुछ मेसोपोटामिया का लिपि से ली गयी है। यह भी संभव है कि तीनों लिपियों को जन्म देने वाली कोई अन्य लिपि हो हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की लिपि में मिस्र का तत्व बाहर से लिया गया हो।

#### 4.3.2 लिपि पढ़ने का प्रयास

वर्तमान तक सिन्धु लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है, इस संबंध में सभ्यता के 20वीं सदी के तीसरे दसक में प्रकाश में आने के बाद से ही प्रयास प्रारंभ हो चुके थे लेकिन प्रायः 90 वर्ष बीत जाने पर भी सिन्धु लिपि एक पहली बनी है। इस बारे में खोज करने वाले प्रायः सभी विद्वानों का मानना है कि इस लिपि का अनुवाद करने के लिए उपयुक्त साधन अभी तक प्राप्त नहीं हो सके हैं। पुरालिपिशास्त्रियों को आवश्यकता है एक द्विभाषी अभिलेख की, जिसमें एक भाषा का हमें पूर्ण ज्ञान हो या फिर एक ऐसे लंबे शिलालेख की प्राप्ति हो जिसमें कुछ महत्वपूर्ण भाग बारबार प्रयुक्त हों। अभी तक हमें जो भी अभिलेख मिले हैं वे छोटे हैं और उनमें औसत रूप से केवल छह अक्षर हैं; सबसे लंबा शिलालेख भी जो मिला है उसमें केवल 17 अक्षर हैं।

पिछले कुछ वर्षों में फिनिश रिसर्च टीम, रूसी भारतविद् तथा एस.आर.राव द्वारा सिन्धु लिपि को पढ़े जाने का दावा प्रस्तुत किया गया लेकिन ये सभी दावे आशंकाओं को परिपूर्ण नहीं कर पाये और अभी भी सिन्धु भाषा और लिपि एक अबूझ पहली बनी हुई है।

#### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. धौलावीरा से प्राप्त 15 बड़े अभिलेखों में हमें सिन्धु सभ्यता की लिपि के प्रमाण मिलते हैं
2. सिन्धु लिपि में 600-700 विभिन्न चिह्न हैं, लेकिन मूल चिह्न 92 हैं
3. पुरालिपिशास्त्री वैडल ने सिन्धु लिपि का संबंध मिस्र की भाषा और लिपि के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है।
4. रैवरैण्ड हैरस सिन्धु सभ्यता का तादात्मीकरण द्रविड़ सभ्यता से स्थापित करने का सुझाव देते हैं।
5. दि स्क्रिप्ट ऑफ हड़प्पा एण्ड मोहनजोदड़ो नामक पुस्तक जी.आर. हण्टर द्वारा लिखी गयी है।
6. चिह्न-सांकेतिक प्रवृत्तियों के कारण सिन्धु लिपि और मिस्र, क्रीट, सुमेर आदि देशों की लिपियों में एकरूपता स्वाभाविक है।

## 4.4 सिन्धु सभ्यता का पतन

लिपि की अनभिज्ञता के कारण हम स्पष्ट रूप से यह नहीं कह सकते कि सिन्धु सभ्यता का पतन किन कारणों से हुआ लेकिन उत्खनन के फलस्वरूप जो तथ्य प्रकाश में आये उनके आधार पर इस सभ्यता के पतन के लिए जिम्मेदार कारणों का विश्लेषण विद्वानों ने किया है। इनके अन्तर्गत विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता के पतन में आत्मघाती कमजोरियों का योगदान, आर्यों का उत्तरदायित्व, विदेशी तत्वों की भूमिका और प्राकृतिक आपदाओं के योगदान को शामिल किया है। इन कारणों को अध्ययन की सुविधा के लिए शीर्षकवार समझा जा सकता है-

### 4.4.1 सिन्धु नागरिकों की आत्मघाती कमजोरियां

1. सुमेर के साथ व्यापारिक संबंध के बावजूद भी सिन्धु नागरिकों ने तत्कालीन सर्वाधिक विकासवादी सभ्यता से अपने विकास के लिए किसी भी प्रकार के तकनीकी ज्ञान को सीखने का प्रयास नहीं किया, जो कि प्रत्येक विकासशील सभ्यता के लिए आवश्यक हैं।

2. हड़प्पा नागरिकों की मानसिक स्थिरता का पता उनकी लिपि से लगता है, जिसमें 20 चिन्हों से अधिक नहीं मिलते हैं और बहुधा 10 चिन्हों से अधिक प्रयोग नहीं किया गया है। दीर्घ काल में भी इसमें परिवर्तन न होना सिन्धु नागरिकों के अत्यधिक कम मानसिक परिवर्तन के दोष का द्योतक है।

3. हड़प्पा से प्राप्त फलक चौरस और आसानी से मोड़े जा सकते हैं, जबकि सुमेर निवासियों ने बहुत पहले ही ऐसे चाकू तथा भाले बनाये थे जिनके मध्यभाग में अतिरिक्त शक्ति के लिए तीलियां लगायी गयी थीं और कुठारों के सिर सछिद्र बनाये थे जिनमें दण्ड डाला जा सकता था। यह सत्य है कि हड़प्पा वासियों ने भी ऐसे आरे का निर्माण कर लिया था जिसमें लहरदार दांत थे। यह बढ़ई के लिए तो उपयोगी था किन्तु सुरक्षा के रूप में उसका कोई उपयोग नहीं था।

ये कुछ उदाहरण हैं जो सिन्धु सभ्यता में गति या बदलती हुई परिस्थितियों के साथ सामन्जस्य बैठाने में असमर्थता के दोष को बतलाती हैं। सिन्धु नागरिकों ने अपनी रक्षा के विषय में कोई विशेष आविष्कार नहीं किये थे, यही कारण है कि जब उनपर आक्रमण हुआ तो वे अपने से अविकसित लोगों से भी पराजित हो गये।

### 4.4.2 आर्यों का उत्तरदायित्व

आर्यों ने भारत आगमन से पूर्व अनेक नगरीय संस्कृतियों को क्षति पहुंचायी थी। इन्द्र ने हरियूपिया के ध्वंसावशेषों को समाप्त किया था, जिस जाति को समाप्त किया गया था उससे यवजावति नदी (आधुनिक रावी नदी) के किनारे सामना हुआ था। इससे हड़प्पा में किसी वास्तविक

युद्ध की संभावना होती है। अतः प्रतीत होता है कि हड़प्पा में स्थित कब्रिस्तान 'एच' जो कि बाद का है, अवश्य ही आर्यों से संबंधित होगा।

ऋग्वेद में यह उल्लेख प्राप्त है कि इन्द्र ने अनेक नदियों को मुक्त किया था, जो कि कृत्रिम अवरोधकों द्वारा रोकी गयी थीं। "चुड़ैल वृत्र पहाड़ी ढलान में एक बड़े सांप के समान लेटी थी, जब इन्द्र द्वारा इस चुड़ैल को चूर दिया गया तो पत्थर गाड़ी के पहियों की भांति लुड़कने लगे।" इस कथन का आशय किसी बांध के विनाश से ही हो सकता है। अनेक भाषाशास्त्रियों के अनुसार "वृत्र" शब्द का अर्थ "अवरोधक" होता है। अगर इस विचार को मान लिया जाय तो आर्यों ने सिन्धु नागरिकों द्वारा सिन्धु नदी पर खड़े किये अवरोधकों को समाप्त कर सैन्धव्यों को भूखे मरने को छोड़ दिया। यह तथ्य ज्ञात है कि सिन्धु सभ्यता के इतिहास के अन्तिम चरण में दरिद्रता की स्थिति पैदा हो गयी थी।

ऋग्वेद में सौ स्तभों वाले शत्रु के किलों का वर्णन है, जिनसे कि आर्यों का मुकाबला हुआ। इसके अलावा ऋग्वेद में लिंग पूजकों के भय का भी वर्णन है। लिंग पूजकों का यह भय यजुर्वेद काल में समाप्त हो गया, जब इसको मान्यता दे दी गयी। उत्तर वैदिक काल में शिव प्रमुखता पाने लगे और यजुर्वेद में तो शिव, महेश्वर या महान् देव के रूप में पूजे जाने लगे। उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों में मातृदेवी का उल्लेख मिलता है। उपनिषद के ऋषियों द्वारा किया गये चिन्तन में वैदिक देवताओं को प्रमुखता नहीं दी गयी है, वरन् इसमें सिन्धु सभ्यता के धार्मिक तत्वों का समावेश मिलता है। इन तथ्यों से पता चलता है कि आर्यों ने सिन्धु सभ्यता को क्षति पहुंचायी लेकिन आने वाले युगों में आर्यों ने लिंग पूजा और दस्युओं को अपनी सभ्यता में आत्मसात कर लिया।

इन तथ्यों के बावजूद भी सिन्धु सभ्यता के पतन में आर्यों का उत्तरदायित्व सन्देहास्पद प्रतीत होता है, क्योंकि यदि हड़प्पा को आर्यों द्वारा ध्वंस या समाप्त किया गया तथा कब्रिस्तान "एच" को आर्यों से संबंधित किया जाये तो यह तार्किक दृष्टि से अटपटा लगता है कि हड़प्पा के समीप ही स्थित कालीबंगन पर आक्रमण नहीं किया गया। इसके अलावा सरस्वती और पंजाब क्षेत्र की अनेक हड़प्पीय बस्तियां, इन्द्र और अग्नि के आक्रमण के पूर्व ही पतनोन्मुख हो चुकी थीं। और यह ज्ञात है कि काली चमड़ी वाले लोग अन्य स्थानों को पलायन कर गये थे। पुरातात्विक सामग्री से भी यह प्रमाणित होता है कि नवागंतुकों द्वारा इन स्थानों को अधिगृहित नहीं किया गया वरन् इन्हें त्याज्य समझ कर छोड़ दिया गया। यह अजीब है कि कोई इन स्थानों की जीतकर इन्हें अधिकृत न कर छोड़ दें।

#### 4.4.3 विदेशी तत्वों की भूमिका

रानाघुण्डई के प्राचीनतम स्तर से पता चलता है कि अश्वारोही आक्रामकों के दल वहां 3000 ई0 पू0 में विद्यमान थे, वे वहां कृषि सभ्यता को स्थान देकर शीघ्र ही लुप्त हो गये। यह कृषि सभ्यता, सिन्धु सभ्यता के समकालीन थी। लेकिन 2000 ई0 पू0 के आसपास गावों को जलाने तथा एक नवीन, भदे आकार के मृत्तिका पात्रों की प्राप्ति से पुनः आक्रामकों की उपस्थिति का पता चलता है। इसके बाद अन्य आक्रामक आये जो अरंजित ढक्कनदार मृत्तिका पात्रों का प्रयोग करते थे। ऐसे ही प्रमाण उत्तरी बलूचिस्तान में भी मिलते हैं जबकि दक्षिणी बलूचिस्तान में एक अनैतिक संस्कृति ने सुत्कजेन्डोर के समीप शाही टंप में बस्ती बना ली थी।

प्रतीत होता है कि बलूचिस्तान के आक्रामकों ने वहां के ग्रामीण लोगों को सिन्धु नगरों में शरण लेने पर बाध्य किया। विदेशी तत्वों का प्रभाव और उनके द्वारा सिन्धु नगरों में उत्पन्न अस्थिरता का पता कुछ तथ्यों से लगता है। हड़प्पा में बाद की बस्तियों की संरचना निकृष्ट कोटि की है। भवनों के स्थान पर झोपड़ियां बनायी जाने लगीं। जल-वितरण प्रणाली को त्याग दिया गया, मृणभाण्डों के निर्माण में प्रयुक्त तकनीकी परिवर्तित हो गयी। बाद के आभूषण निम्न स्तर के हैं। शहर के मध्य में और कभी कभी सड़क के बीच में ईंट के भट्टे बनाये जाने लगे। इसी प्रकार के पतनोन्मुख चिन्ह काठियावाड़ प्रायद्वीप के स्थलों में भी मिलते हैं। लोथल का अन्य नगरों के साथ सम्बन्ध धीरे-धीरे कमजोर और फिर टूट गया।

#### 4.4.4 प्राकृतिक आपदाएँ

कुछ प्राकृतिक आपदायें एव कमजोरियां भी सिन्धु सभ्यता के पतन में जिम्मेदार रहीं थीं, यथा-

1. सिन्धु सभ्यता के नगरों की बढ़ती जनसंख्या की भोजन आपूर्ति के लिए कृषकों की उत्पादन बढ़ाने में असमर्थता।
2. सिन्धु सभ्यता के नगरों में लगातार आने वाली बाढ़ें ।
3. एक प्रमुख हाइड्रोलोजिस्ट के अनुसार एक टेक्टोनिक क्रिया से समुद्र का जल स्तर उठ गया, जिससे सिन्धु नगर जल स्तर के नीचे आ गये और उनमें बाढ़ आ गयी, मोहनजोदड़ो में जल स्तर के नीचे भी बस्ती के प्रमाण मिलते हैं।
4. सिन्धु का बहाव नील नदी से दुगुना है।
5. मिटटी के लवणीकरण की गति बढ़ना, राजपुताना के मरूस्थल का फैलाव तथा सिन्धु नदी द्वारा अपना मार्ग परिवर्तित करना भी ऐसे कुछ कारण हैं जिन्होंने सिन्धु संस्कृति के पतन में योगदान दिया।

---

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. हड़प्पा नागरिकों की मानसिक स्थिरता का पता उनके व्यापारिक क्रियाकलापों से लगता है।
2. हड़प्पा वासियों ने कुठारों के सिर सछिद्र बनाये थे जिनमें दण्ड डाला जा सकता था।
3. ऋग्वेद में हजार स्तंभों वाले शत्रु के किलों का वर्णन है।
4. आर्यों ने भारत आगमन से पूर्व अनेक नगरीय संस्कृतियों को क्षति पहुंचायी थी।
5. सिन्धु का बहाव नील नदी से दुगुना है।
6. हड़प्पा में बाद की बस्तियों की संरचना निकृष्ट कोटि की है।

---

**4.5 सारांश**

वर्तमान तक हम भाषा और लिपि को नहीं पढ़ पाये हैं और इस अनभिज्ञता के कारण ही हम सिन्धु सभ्यता के प्रारंभिक ज्ञान तक ही सीमित रह गये हैं। हम स्पष्ट रूप से उनके धर्म-दर्शन के विषय में नहीं कह सकते हैं, हम यह नहीं जानते हैं कि उन्होंने अपनी राजव्यवस्था किस प्रकार बनायी थी, व्यापार के उनके क्या नियम या तरीके थे और वह किस प्रकार संगठित था, हम यह भी नहीं जानते हैं कि सिन्धु नागरिकों के समक्ष वे कौन सी चुनौतियां थीं या उनकी सभ्यता को किस बात से खतरा था। सिन्धु सभ्यता के कुछ स्थलों में सभ्यता एकाएक समाप्त दिखती है जबकि दूसरे अनेक स्थलों में यह शनैः शनैः समाप्त होती दिखती है या इन स्थलों में धीरे-धीरे अन्य सभ्यताएँ इनका स्थान ले लेती हैं। अतः इस सभ्यता की भाषा एवं लिपि की यदि जानकारी हो जाये तो इस संबंध में भी ठोस निष्कर्ष सामने आ सकते हैं।

---

**4.6 तकनीकी शब्दावली**

मृद्भाण्ड - मिट्टी के बरतन

द्वि-भाषी - दो भाषाओं वाला

रोसेट्टा स्टोन - इस द्वि-भाषी अभिलेख की सहायता से प्राचीन मिस्र की भाषा पढ़ी गयी थी

अश्वारोही - घोड़ों पर सवार

---

## 4.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

---

- इकाई 4.3 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - असत्य  
इकाई 4.3 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - असत्य  
इकाई 4.3 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - असत्य  
इकाई 4.3 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर - सत्य  
इकाई 4.3 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर - सत्य  
इकाई 4.3 के प्रश्न संख्या 6 का उत्तर - सत्य  
इकाई 4.4 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - असत्य  
इकाई 4.4 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - असत्य  
इकाई 4.4 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - असत्य  
इकाई 4.4 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर - सत्य  
इकाई 4.4 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर - सत्य  
इकाई 4.4 के प्रश्न संख्या 6 का उत्तर - सत्य

---

## 4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005

ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972

---

## 4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

1. Allchin, Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation, Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi, 1993
2. Bisht, R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90, pp. 71-82
3. Chakraborti, D.K, The External Trade of the Harappans, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1990

- 
4. Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973
  5. Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995
  6. Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999
  7. Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3<sup>rd</sup> edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968
- 

#### 4.10 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. सिन्धु सभ्यता की भाषा एवं लिपि पर एक निबंध लिखिए।
2. सिन्धु सभ्यता के पतन पर प्रकाश डालिए।

---

## इकाई एक - आर्य जाति एवं आर्यों का मूलनिवास स्थान

---

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 आर्य जाति
  - 1.3.1 आर्य जाति से संबंधित विभिन्न विचार
    - 1.3.1.1 आर्यों का आदि देश भारत
    - 1.3.1.2 उत्तरी ध्रुव या आर्कटिक प्रदेश
    - 1.3.1.3 यूरोप
    - 1.3.1.4 एशिया
    - 1.3.1.5 वर्तमान विचार
- 1.4 सारांश
- 1.5 पारिभाषिक शब्दावली
- 1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

प्राचीनतम आर्य भाषाभाषी पूर्वी अफगानिस्तान, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती स्थानों तक फैले हुए थे। अफगानिस्तान की कुछ नदियां जैसे कुभा नदी और सिंधु नदी तथा उसकी पांच शाखाएं ऋग्वेद में उल्लिखित हैं। सिंधु नदी, जिसकी पहचान अंग्रेजी के 'इंडस' से की जाती है, आर्यों की विशिष्ट नदी है, और इसका बारंबार उल्लेख होता है। दूसरी नदी 'सरस्वती' ऋग्वेद में सबसे अच्छी नदी (नवीतम) कही गई है। इसकी पहचान हरियाणा और राजस्थान में स्थित घग्गर-हकरा की धार से की जाती है। लेकिन इसके ऋग्वैदिक वर्णन से पता चलता है कि यह अवेस्ता में अंकित हरख्वती नदी है जो आजकल दक्षिण अफगानिस्तान की हेलमंद नदी है। यहां से सरस्वती नाम भारत में स्थानांतरित किया गया। भारतीय उपमहाद्वीप के अंतर्गत जहाँ आर्य भाषाभाषी पहले पहल बसे वह संपूर्ण क्षेत्र सात नदियों का देश कहलाता है।

ऋग्वेद से हम भारतीय आर्यों के बारे में जानते हैं। ऋग्वेद में आर्य शब्द का 363 बार उल्लेख है, और इससे सामान्यतः हिंद-आर्य भाषा बोलने वाले सांस्कृतिक समाज का संकेत मिलता है। ऋग्वेद, हिंद-आर्य भाषाओं का प्राचीनतम ग्रंथ है। यह वैदिक संस्कृत में लिखा गया है लेकिन इसमें अनेक मुंडा और द्रविड़ शब्द भी मिलते हैं। शायद ये शब्द हड़प्पा लोगों की भाषाओं से ऋग्वेद में चले आए।

ऋग्वेद में अग्नि, इंद्र, मित्र, वरूण आदि देवताओं की स्तुतियाँ संगृहित हैं जिनकी रचना विभिन्न गोत्रों के ऋषियों और मंत्र सृष्टाओं ने की है। इसमें दस मंडल या भाग हैं, जिनमें मंडल 2 से 7 तक प्राचीनतम अंश हैं। प्रथम और दशम मंडल सबसे बाद में जोड़े गए मालूम होते हैं। ऋग्वेद की अनेक बातें अवेस्ता से मिलती हैं। अवेस्ता ईरानी भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ है। दोनों में बहुत से देवताओं और सामाजिक वर्गों के नाम भी समान हैं। पर हिंद-यूरोपीय भाषा का सबसे पुराना नमूना इराक में पाए गए लगभग 2200 ई० पू० के एक अभिलेख में मिला है। बाद में इस तरह के नमूने अनातोलिया (तुर्की) में उन्नीसवीं से सत्रहवीं सदी ईसा-पूर्व के हत्ती) अभिलेखों में मिलते हैं। इराक में मिले लगभग 1600 ई० पू० के कस्सी अभिलेखों में तथा सीरिया में मितानी अभिलेखों में आर्य नामों का उल्लेख मिलता है। उनसे पश्चिम एशिया में आर्य भाषाभाषियों की उपस्थिति का पता चलता है। लेकिन भारत में अभी तक इस तरह का कोई अभिलेख नहीं मिला है।

## 1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको आर्य जाति एवं आर्यों के मूलनिवास स्थान का परिचय देना है और इस विषय से संबंधित विभिन्न विद्वानों के विचारों की जानकारी देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. आर्य जाति
2. आर्य के मूल निवास से संबंधित विभिन्न विचार

### 1.3 आर्य जाति

द्वितीय सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य में भारत में एक नवीन जाति या कबीले का अस्तित्व मिलता है। कुछ विद्वान इन्हें आक्रमणकारी मानते हैं और बाहर से आया बताते हैं। ए.एल.बाशम तथा कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि ये आक्रामक थे और अपने को आर्य कहते थे। अंग्रेजी भाषा में आर्य शब्द का सामान्य अर्थ आर्यन्स है, बाशम के अनुसार फारस के प्राचीन निवासी भी इस नाम का प्रयोग करते थे और वर्तमान ईरान शब्द में तो यह शब्द अब भी विद्यमान है।

‘आर्य’ शब्द संस्कृत भाषा का है जिसका अर्थ है ‘उच्च’, ‘उत्तम’ अथवा ‘श्रेष्ठ’। सम्भवतः अपनी उच्च जातीयता, उच्चतम कर्म और श्रेष्ठता प्रदर्शित करने हेतु इस जाति ने अपने को ‘आर्य’ नाम से विभूषित किया। अपनी विरोधी जाति को उन्होंने ‘अनार्य’, ‘दस्यु’ अथवा ‘दास’ कहकर सम्बोधित किया जिसकी पुष्टि ऋग्वेद में दिए गए ‘अकर्मन्’, ‘अब्रह्मन्’, ‘अव्रत’, ‘अदेवयु’ जैसे शब्दों से होती है। अपनी शारीरिक रचना तथा मानसिक एवं बौद्धिक गुणों से वशीभूत होकर ही वे अनार्यों से अपने को श्रेष्ठ समझते थे। उनके आचार-विचार विकसित और उन्नत थे। ऐसा लगता है कि उनके भारत आगमन से पूर्व उन्हें उत्तर भारत में द्रविड़ों से संघर्ष करना पड़ा। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप के अनेक ऋग्वैदिक वर्णन संघर्षों की पुष्टि भी करते हैं। द्रविड़ पराजित होने के पश्चात् दक्षिण की ओर चले गए। इस तरह द्रविड़ सभ्यता तथा सिन्धु घाटी के ध्वासावशेषों पर आर्य सभ्यता ने पनपना शुरू कर दिया। बाद में इन आर्यों का भारतीयकरण हो गया और उन्हें भारतीय आर्य की संज्ञा प्राप्त हुई।

#### 1.3.1 आर्य जाति से संबंधित विभिन्न विचार

आर्यों के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। कुछ का मानना है कि वे उत्तर भारत के सप्त-सैन्धव प्रान्त में, जो सिन्धु से सरस्वती नदी की घाटी तक था, रहते थे। वहीं से वे एशिया तथा यूरोप तक फैल गए। उनका आदिम निवास स्थान कोई उत्तरी ध्रुव के समीप, कोई दक्षिणी रूस या हंगरी देश में तो कोई मध्य एशिया में स्वीकार करता है। अधिकांश लोगों का मानना है कि वे काकेशिया और मध्य एशिया की ओर से पशुओं के चारे एवं खाद्य पदार्थों की खोज करते हुए उधर तो यूरोप में जा पहुंचे और इधर एशियामाइनर, ईरान, अफगानिस्तान तथा भारतवर्ष में आ निकले। दीर्घ कालीन अन्वेषणों के पश्चात् आर्यों के आदि देश के विषय में जिन प्रमुख सिद्धान्तों को प्रकाश में लाया गया है, उनका विवरण इस प्रकार है-

### 1.3.1.1 आर्यों का आदि देश भारत

डॉ० अविनाश दास एवं सम्पूर्णानन्द के अनुसार आर्यों का आदि देश सप्तसैन्धव था। इस प्रदेश में सिन्धु, वितस्ता, अस्कनी, परूष्णी, विपाशा, शतुद्रि और सरस्वती नामक सात नदियां बहती थीं। इन्हीं के द्वारा सींचा गया उर्वर प्रदेश प्राचीन युग में सप्तसैन्धव के नाम से जाना जाता था और यही प्रदेश आर्यों का आदि देश था। महामहोपाध्याय पं गंगानाथ झा के अनुसार आर्यों का आदि देश भारत का मध्यप्रदेश है। उनके अनुसार मूल आर्य मध्यप्रदेश में निवास करते थे और कालान्तर में जब उन्हें अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता हुई तो वे पश्चिमी एशिया तथा मध्य एशिया आदि स्थानों में फैल गए। एल०डी० कल्ल ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि आर्य मूल रूप से कश्मीर तथा हिमालय के प्रदेशों में रहते थे। डी०एस० त्रिवेदी मुल्तान में स्थित देविका नदी के समीपवर्ती प्रदेश को आर्यों का निवास स्थान मानते हैं। डॉ० के०एम० मुंशी ने आर्यों का आदि देश गुजरात माना है।

परन्तु भारतवर्ष को आर्यों का आदि देश मानने में निम्नलिखित कठिनाइयां हैं-

यदि आर्यों का आदि देश भारत होता तो वे अपने देश का पूर्णरूपेण आर्यीकरण करते तब दूसरे देशों को जाते। परन्तु ऋग्वेद से स्पष्ट सूचना मिलती है कि तत्कालीन आर्य मध्य प्रदेश, पूर्वी भारत तथा दक्षिणापथ से प्रायः अपरिचित थे जबकि ईरान और अफगानिस्तान के सन्दर्भ में उनका भौगोलिक ज्ञान अपेक्षाकृत ज्यादा था। इससे प्रतीत होता है कि वे बाहर से आये थे और ऋग्वैदिक काल तक वे पंजाब के प्रदेश से आगे के भारत में प्रविष्ट नहीं हुए थे। इण्डो-यूरोपियन परिवार की प्राचीनतम भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से हमें जिन वनस्पतियों और पशु-पक्षियों का पता चलता है वे सब भारत में नहीं पायी जाती। इससे यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक है कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं थे।

बलूचिस्तान में द्रविड़ भाषा के प्रचलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के अधिकांश भागों में आर्य भाषा का प्रचलन नहीं था। इस आधार पर भी भारत को आर्यों का आदि देश नहीं माना जा सकता है।

### 1.3.1.2 उत्तरी ध्रुव या आर्कटिक प्रदेश

श्री बालगंगाधर तिलक ने ऋग्वैदिक विवरण की व्याख्या में लम्बी अवधि प्रायः 6 माह के रात और दिन का अनुमान लगाकर उत्तरी ध्रुव प्रदेश या आर्कटिक प्रदेश को आर्यों का निवास बताया है जहाँ से हिम प्रलय के कारण वे हटकर भारत आये थे। श्री तिलक के मतानुसार ईरानी अवेस्ता में उत्तरी ध्रुव के संकेत मिलते हैं और भीषण तुषारापात का वर्णन भी मिलता है। आर्यों द्वारा

वर्णित वनस्पति और उनकी औषधियां उत्तरी ध्रुव में प्राप्त होती हैं। परन्तु इस सिद्धान्त को मानने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि-

सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में कहीं भी उत्तरी ध्रुव को आर्यों की भूमि नहीं कहा गया है और यदि आर्य उत्तरी ध्रुव को अपना आदि देश मानते तो सप्तसैधव को 'देवकृत योनि' न कहते।

### 1.3.1.3 यूरोप

यूरोप को आर्यों का आदि देश स्वीकार करने वाले विद्वानों में डॉ० पी०गाइल्स प्रमुख हैं जिन्होंने भाषा विज्ञान के आधार पर हंगरी को उनका आदि देश माना है। यहाँ से वे एशिया माइनर और ईरान होकर भारत पहुंचे। परन्तु भाषा विज्ञान के आधार पर उनका यह मत उचित प्रतीत नहीं होता। कुछ विद्वानों ने भूरे बालों के आधार पर भी जर्मन प्रदेश को आर्यों का आदि देश स्वीकार किया है। यह विशेषता आज भी जर्मन जाति में पायी जाती है। कुछ पूर्वतिहासिक मृद्भाण्ड मध्य जर्मनी से मिले हैं। इस आधार पर भी मध्य जर्मनी को भी कुछ विद्वानों द्वारा आर्यों का आदि देश स्वीकार किया है। पेन्का नामक विद्वान् की धारणा है कि भूरे बालों के अतिरिक्त प्राचीनतम आर्यों की जो अन्य शारीरिक विशेषतायें थीं वे जर्मन प्रदेश के निवासियों यानि स्कैण्डिनेवियन्स में पायी जाती हैं। अतः स्कैण्डिनेविया को ही आर्यों का आदि देश स्वीकार किया जाना चाहिए। हर्ट महोदय भी इस मत को स्वीकार करने के पक्ष में हैं। इसके अलावा त्रेपोल्जे ने यूक्रेन से प्राप्त कुछ मृद्भाण्डों का अध्ययन करके इन्हें आर्यों से सम्बन्धित बताया है। पोकोर्नी का कहना है कि जिस उपजाऊ भूमि का वर्णन ऋग्वेद में है वह बेजर और विश्वुला नदियों के बीच स्थित श्वेत रूस तक फैला था। इसे स्टेप्स का मैदान कहा जाता है जो आर्यों का आदि देश माना जा सकता है। परन्तु यूरोपीय सिद्धान्त को स्वीकार करने में निम्नलिखित कठिनाइयां हमारे सामने आती हैं-

1. केवल शारीरिक विशेषताओं के आधार पर किसी जाति को आर्यों का वंशज कहना उचित प्रतीत नहीं होता है।
2. जहाँ तक भूरे बालों का प्रश्न है, प्रसिद्ध भाष्यकार पतंजलि ने भूरे बालों को ब्राह्मणों का गुण बताया है। इस आधार पर तो आर्यों को भारत का ही मूल निवासी क्यों नहीं कहा जा सकता।
3. मृद्भाण्डों को आधार मानकर आर्यों का आदि देश स्वीकार करना भी तर्कसंगत नहीं है। क्योंकि इस तरह के मृद्भाण्ड अन्य स्थानों से भी प्राप्त हुए हैं।

### 1.3.1.4 एशिया

अनेक विद्वानों ने विभिन्न तर्कों का आधार लेकर एशिया को आर्यों का आदि देश स्वीकार करने की वकालत की है। उनके अनुसार आर्यों के प्राप्त दो आदि ग्रन्थ ऋग्वेद और जैन्द-अवेस्ता यहीं से प्राप्त हुए हैं। अतः यहीं कहीं आस-पास ही वे निवास करते होंगे। आर्यों का प्राचीनतम लेख भी यहीं के बोगजकोई (1400 ई0पू0) नामक स्थान से प्राप्त हुआ है जिसमें एक, तेर, पंज, सत्त आदि अंकों का उल्लेख है जो वैदिक संख्याओं के ही अनुरूप हैं। इसी तरह मिस्र में एल-अर्मना नामक स्थान पर कुछ मिट्टी के खण्ड प्राप्त हुए हैं जो बेबीलोनिया की लिपि में लिखित हैं और इन पर कुछ बेबीलोनिया के नरेशों के नाम हैं। ये नाम बहुत कुछ वैदिक प्रतीत होते हैं। प्रश्न यह उठता है कि एशिया के किस भाग में आर्यों का आदि स्थान था- इस पर अलग-अलग विद्वानों की अलग-अलग धारणाएँ हैं। मैक्समूलर ने मध्य एशिया को आर्यों का आदि देश स्वीकार करते हुए इस बात पर प्रकाश डाला है कि यहीं से ये विभिन्न शाखाओं में विभाजित होकर ईरान और भारत गये। जे0जी0 रोड एवं पॉट का मानना है कि आर्य मूल रूप से बैक्ट्रिया के निवासी थे जहाँ से वे विभिन्न दिशाओं में गए थे। यह मत अवेस्ता को आधार मानकर प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रकार प्रो0 सेअस ने कैस्पियन सागर का समीपस्थ प्रदेश आर्यों का आदि देश स्वीकार किया है। उनका तर्क है कि वे शीत जल और वनस्पति प्रधान स्थानों पर रहते थे जिसकी पुष्टि ऋग्वेद और अवेस्ता के अनेक प्रसंगों से होती है। एडवर्ड मेयर पामीर पठार और बैरुण्डेस्टोन एशिया में यूराल पर्वत के दक्षिण में स्थित स्टेप्स प्रदेश को आर्यों का आदि प्रदेश स्वीकार करते हैं। परन्तु मध्य एशिया को आर्यों का देश स्वीकार करने में निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं-

1. मध्य एशिया के निवासियों में आर्यों के गुण उपलब्ध नहीं होते हैं। यदि आर्यों का आदि स्थान यहाँ पर था तो यहाँ की आधुनिक जातियों में उनके वंशज आर्यों का प्रभाव क्यों नहीं पाया जाता।
2. आर्य कृषि कर्म करते थे परन्तु मध्य एशिया में कृषि कर्म हेतु उपजाऊ तथा उर्वरक प्रदेश नहीं थे। अतः जल की कमी तथा अनुपजाऊ वाले प्रदेश को आर्यों का आदि देश स्वीकार करना कठिन है।

### 1.3.1.5 वर्तमान विचार

हिन्द-यूरोपीय भाषा, आर्य संस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता मानी जाती है। भाषाशास्त्रियों ने आद्य हिन्द-यूरोपीय भाषा का प्रारंभ सातवीं या छठी सहस्राब्दी ईसा पूर्व अर्थात् आज से 8-9 हजार वर्ष पूर्व बतलाया है। हिन्द-यूरोपीय भाषा का की दो शाखाएँ थीं- एक पूर्वी शाखा और दूसरी पश्चिमी शाखा। भाषाशास्त्रियों के अनुसार पूर्वी हिन्द-यूरोपीय भाषा शाखा के उच्चारण संबंधी विकास में पांचवी सहस्राब्दी के मध्य में अनेक चरण देखने को मिलते हैं। ऐसी ही एक भाषा संभवतः आद्य हिन्द-ईरानी भाषा थी। डॉ. आर.एस. शर्मा बतलाते हैं कि इसमें हिन्द-आर्य भाषा भी शामिल थी और

इस भाषा के प्राचीनतम प्रमाण इराक के अगेड वंश के पाटिया पर लिखे मिलते हैं जिनका समय 2300 ईसा पूर्व है। डॉ शर्मा आगे बताते हैं कि इस अभिलेख में अरिसेन और सोमसेन नामक व्यक्तियों के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार हिट्टाइट अभिलेख से जो साक्ष्य मिले हैं उसके आधार पर कहा जा सकता है कि इस स्थान पर हिन्द-यूरोपीय भाषा की पश्चिमी शाखा के बोलने वाले वहां 19वीं सदी से 17वीं सदी ईसा पूर्व में विद्यमान थे। इसी प्रकार डॉ. शर्मा बतलाते हैं कि मेसापोटामिया में कैस्साइट और मिटानी शासकों के बोगजकोई अभिलेखों से पता चलता है कि 16वीं से 14वीं सदी ईसा पूर्व में इस भाषा की पूर्वी शाखा के बोलने वाले विद्यमान थे। डॉ. शर्मा का विचार है कि हिन्द-ईरानी भाषा का विकास पश्चिम में फिनलैण्ड और पूरब में कॉकेशस क्षेत्र के बीच कहीं था।

गॉर्डन चाइल्ड ने इण्डो-आर्यों के उद्गम पर प्रकाश डालते हुए अनातोलिया को इण्डो-यूरोपीयों का मूल निवास स्थान बतलाया। कुछ अन्य पुराविद्-सह-भाषाशास्त्रियों ने भी इस मत का समर्थन करते हुए इण्डो-यूरोपीय भाषा का मूल स्थान कॉकेशस के दक्षिण क्षेत्र अर्थात् पूर्वी अनातोलिया और उत्तरी मेसोपोटामिया क्षेत्र को माना है। रेनफ्रू नामक पुराविद् भी पूर्वी अनातोलिया को आर्यों का मूल निवास स्थान मानते हैं।

इस संबंध में डॉ. आर.एस.शर्मा रोचक तथ्य रखते हुए बताते हैं कि जीवन विज्ञानियों की हाल के शोध कार्य मध्य एशिया से मानव प्रसरण पर सम्यक प्रकाश डालते हैं। मानव की रक्त कोशिकाओं में जो उत्पत्ति संबंधी संकेत (डी.एन.ए.) होते हैं वे मानव पीढ़ियों में सदैव रहते हैं। जीवन-वैज्ञानिकों के अनुसार इस तरह के कुछ विशेष संकेत मध्य एशिया के एक छोर से दूसरी छोर तक 8000 इस्वी पूर्व के आसपास मिलते हैं। इन विशेष संकेतों का नाम एम17 दिया गया है और ऐसे संकेत मध्य एशिया के 40 प्रतिशत से अधिक लोगों में मिलते हैं लेकिन ये संकेत द्रविड़ भाषाभाषियों के केवल 10 प्रतिशत जनसंख्या में मिले हैं, इससे पता चलता है कि इण्डो-आर्य मध्य एशिया से भारत पहुंचे थे।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. ऋग्वेद में आर्य शब्द का 405 बार उल्लेख है
2. यूरोप के लगभग 1600 ई0 पू0 के कस्सी अभिलेखों में तथा सीरिया में मिटानी अभिलेखों में आर्य नामों का उल्लेख मिलता है
3. 'आर्य' शब्द उर्दू भाषा का है जिसका अर्थ है 'उच्च', 'उत्तम' अथवा 'श्रेष्ठ
4. डॉ0 अविनाश दास एवं सम्पूर्णानन्द के अनुसार आर्यों का आदि देश सप्तसैन्धव था
5. श्री बालगंगाधर तिलक ने आर्कटिक प्रदेश को आर्यों का निवास बताया है
6. डॉ0 पी0गाइल्स ने हंगरी को आर्यों का आदि देश माना है

7. मैक्समूलर ने मध्य एशिया को आर्यों का आदि देश स्वीकार किया है  
 8. गॉर्डन चाइल्ड ने अनातोलिया को इण्डो-यूरोपीयों का मूल निवास स्थान बतलाया

## 1.4 सारांश

आर्यों का आदि देश निश्चित करने वाले विभिन्न सिद्धान्तों और मतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इस सन्दर्भ में किसी निर्णय पर पहुंचना अत्यन्त ही कठिन है। यह एक ऐसा विवादग्रस्त प्रश्न है जिस पर सर्वसम्मति बनाना एक दुष्कर कार्य है। सम्भवतः आर्य धीरे-धीरे कई समूहों अथवा कबीलों के रूप में भारत आये थे तथा ये सभी कबीले किसी आक्रमणकारी के रूप में नहीं वरन चरागाहों तथा अतिरिक्त कृषि भूमि आदि की प्राप्ति से प्रेरित होकर यहाँ आये थे। वे अधिक नम प्रदेशों में जाकर बस गए थे। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि आर्यों की एक शाखा ईरान और भारत में आयी और दूसरी नार्डिक प्रदेश तथा यूक्रेन तथा अन्य दक्षिणी और पश्चिमी प्रदेशों में बसी। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास के अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि यहाँ विदेशों से जातियों का आगमन हुआ है। यहाँ से कभी भी कोई जाति बाहर नहीं गयी। कदाचित् आर्य भी यहाँ बाहर से ही आये होंगे, यहाँ से बाहर नहीं गये होंगे।

## 1.5 पारिभाषिक शब्दावली

सप्त-सैन्धव - सिन्धु नदी और उसकी सहायक छह नदियों का प्रदेश

आर्य - यद्यपि वर्तमान में यह शब्द प्रजाति के संदर्भ में प्रयुक्त होता है लेकिन वस्तुतः यह भाषा विशेष के प्रयोगकर्ताओं के लिए प्रयुक्त है।

मृदभाण्ड- मिट्टी के बरतन

डी.एन.ए. - गुणसूत्र

## 1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

- इकाई 1.3 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य  
 इकाई 1.3 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य  
 इकाई 1.3 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- असत्य  
 इकाई 1.3 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- सत्य  
 इकाई 1.3 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर- सत्य  
 इकाई 1.3 के प्रश्न संख्या 6 का उत्तर- सत्य  
 इकाई 1.3 के प्रश्न संख्या 7 का उत्तर- सत्य  
 इकाई 1.3 के प्रश्न संख्या 8 का उत्तर- सत्य

## 1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

रामशरण शर्मा	: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010
वी.डी.महाजन	: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005
ए.एल.बाशम	: अब्दुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972
Childe, V.G.	:The Aryans
Dutt, N.K.	:Aryanisation of India
Law, N.N.	:Age of the Rigveda
Sharma, R.S.	:Advent of the Aryans in India
Taylor, I	:The Origin of the Aryans
Thapar, Romila	:The Theory of Aryans Race and India
Tilak, B.G.	:The Arctic Home of the Aryans

## 1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Chattopadhyaya, K.C.	: Studies in Vedic and Indo-Iranian Literature, Vol.- 2, Bhartiya Vidya Bhawan, Varanasi, 1978.
Dange, S.A	.: Cultural Sources from the Vedas, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1977.
Ghurye, G.S.	: Vedic India, Popular Prakashan, Bombat, 1979.
Sharma, R.S	: Material Culture and Social Formation in Ancient India, Macmillan, Delhi, 1983
Tripathi, Vibha	: The Painted Grey Ware: an Iron Culture of Northern India, Concept Publishing, Delhi, 1976.
Childe, V.G.	:The Aryans
Dutt, N.K.	:Aryanisation of India
Law, N.N.	:Age of the Rigveda
Sharma, R.S.	:Advent of the Aryans in India
Taylor, I	:The Origin of the Aryans
Thapar, Romila	:The Theory of Aryans Race and India
Tilak, B.G.	:The Arctic Home of the Aryans

## 1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आर्य कौन थे? उनके आदि देश के सन्दर्भ में विभिन्न मतों का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिए।

---

## इकाई दो - भारत में आर्यों का आगमन ,आर्यों का विस्तार एवं वैदिक साहित्य

---

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 आर्यों का प्रसरण
- 2.4 भारत में आर्यों का आगमन
  - 2.4.1 ऋग्वेद कालीन आर्यों का भारत में विस्तार
  - 2.4.2 उत्तर वैदिक कालीन आर्यों का भारत में विस्तार
- 2.5 वैदिक ग्रन्थों में वर्णित भौगोलिक क्षेत्र
- 2.6 वैदिक साहित्य
  - 2.6.1 श्रुति साहित्य
  - 2.6.2 स्मृति साहित्य
- 2.7 सारांश
- 2.8 तकनीकी शब्दावली
- 2.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

वर्तमान भारतीय संस्कृति का आधार वैदिक सभ्यता को माना जाता है। इस सभ्यता के एक प्रमुख कबीले के आधार पर ही भारतवर्ष का नाम पड़ा है। यह सभ्यता सिन्धु सभ्यता के बाद की सभ्यता है। पिछली इकाइयों में आपने सिन्धु सभ्यता के विषय में जानकारी प्राप्त की थी, जैसा कि अब आपको जानकारी है कि सिन्धु सभ्यता एक नगर प्रधान सभ्यता थी, लेकिन वैदिक सभ्यता सिन्धु सभ्यता के विपरीत एक कबिलाई सभ्यता थी जिसमें नगरों की कोई जानकारी नहीं थी।

इस इकाई में आपको वैदिक सभ्यता के विभिन्न तथ्यों से अवगत कराया जायेगा। वैदिक सभ्यता से संबंधित पिछली इकाई में आपको आर्य जाति का परिचय दिया गया था, घोड़ों पर आधारित इस जाति की एक प्रमुख विशेषता गतिशीलता थी, जिस कारण विश्व के विभिन्न देशों में इस सभ्यता को प्रसार करने में आसानी हुई, इसी क्रम में इतिहासकारों का मानना है कि भारत में भी आर्यों का आगमन हुआ।

वेद में आर्यों के आदि-देश, उनके प्रयाण-स्थल, प्रस्थान का काल, मार्ग आदि का विवरण नहीं है, जिस प्रदेश में ऋग्वेद की रचना हुई उसका उल्लेख आर्यों ने किया है। ऋग्वेद की रचना भारत में आर्यों के प्रविष्ट होने के पश्चात ही हुई और इसका रचना स्थल सिन्धु प्रदेश था। प्रारम्भ में आर्यों का प्रसार इसी प्रदेश में हुआ।

## 2.2 उद्देश्य

वैदिक सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए द्वितीय ब्लाक की पहली इकाई में आपको आर्यों के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गयी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। इस इकाई का उद्देश्य आपको सभ्यता से संबंधित अन्य तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. भारत में आर्यों का आगमन
2. आर्यों का भारत में विस्तार
3. वैदिक साहित्य की सामान्य जानकारी

## 2.3 आर्यों का प्रसरण

प्राचीनतम आर्य भाषाभाषी पूर्वी अफगानिस्तान, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती स्थानों तक फैले हुए थे। अफगानिस्तान की कुछ नदियाँ जैसे कुभा

नदी और सिंधु नदी तथा उसकी पांच शाखाएँ ऋग्वेद में उल्लिखित हैं। सिंधु नदी, जिसकी पहचान अंग्रेजी के 'इंडस' से की जाती है, आर्यों की विशिष्ट नदी है, और इसका बार-बार उल्लेख होता है। दूसरी नदी 'सरस्वती' ऋग्वेद में सबसे अच्छी नदी (नवीतम) कही गई है। इसकी पहचान हरियाणा और राजस्थान में स्थित घग्गर-हाकरा की धार से की जाती है। लेकिन इसके ऋग्वैदिक वर्णन से पता चलता है कि यह अवेस्ता में अंकित हरख्वती नदी है जो आजकल दक्षिण अफगानिस्तान की हेलमंद नदी है। यहां से सरस्वती नाम भारत में स्थानांतरित किया गया। भारतीय उप-महाद्वीप के अंतर्गत जहां आर्य भाषाभाषी पहले पहल बसे वह संपूर्ण क्षेत्र सात नदियों का देश कहलाता था।

ऋग्वेद से हम भारतीय आर्यों के बारे में जानते हैं। ऋग्वेद में आर्य शब्द का 363 बार उल्लेख है, और इससे सामान्यतया हिंद-आर्य भाषा बोलने वाले सांस्कृतिक समाज का संकेत मिलता है। ऋग्वेद हिंद-आर्य भाषाओं का प्राचीनतम ग्रंथ है। यह वैदिक संस्कृत में लिखा गया है लेकिन इसमें अनेक मुंडा और द्रविड शब्द भी मिलते हैं। शायद ये शब्द हड़प्पा लोगों की भाषाओं से ऋग्वेद में चले आए।

ऋग्वेद में अग्नि, इंद्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं की स्तुतियाँ संगृहीत हैं जिनकी रचना विभिन्न गोत्रों के ऋषियों और मंत्रस्रष्टाओं ने की है। इसमें दस मंडल या भाग हैं, जिनमें मंडल 2 से 7 तक प्राचीनतम अंश हैं। प्रथम और दशम मंडल सबसे बाद में जोड़े गए मालूम होते हैं। ऋग्वेद की अनेक बातें अवेस्ता से मिलती हैं। अवेस्ता ईरानी भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ है। दोनों में बहुंत से देवताओं और सामाजिक वर्गों के नाम भी समान हैं।

पर हिंद-यूरोपीय भाषा का सबसे पुराना नमूना इराक में पाए गए लगभग 2200 ई0 पू0 के एक अभिलेख में मिला है। बाद में इस तरह के नमूने अनातोलिया (तुर्की) में उन्नीसवीं से सत्रहवीं सदी ईसा-पूर्व के हत्ती (Hittite) अभिलेखों में मिलते हैं। इराक में मिले लगभग 1600 ई0 पू0 के कस्सी (Kassite) अभिलेखों में तथा सीरिया में मितानी (Mitanni) अभिलेखों में आर्य नामों का उल्लेख मिलता है। उनसे पश्चिम एशिया में आर्य भाषाभाषियों की उपस्थिति का पता चलता है। लेकिन भारत में अभी तक इस तरह का कोई अभिलेख नहीं मिला है।

भारत में आर्य जन कई खेपों में आए। सबसे पहले की खेप में जो आए वे हैं ऋग्वैदिक आर्य, जो इस उपमहादेश में 1500 ई0 पू0 के आसपास दिखाई देते हैं। उनका दास, दस्यु आदि नाम के स्थानीय जनों से संघर्ष हुआ। चूंकि दास जनों का उल्लेख प्राचीन ईरानी साहित्य में भी मिलता है, इसलिए प्रतीत होता है कि वे पूर्ववर्ती आर्यों की ही एक शाखा में पड़ते थे। ऋग्वेद में कहा गया है कि भरत वंश के राजा दिवादास ने शंबर को हराया। यहाँ दास शब्द दिवोदास के नाम में लगता है। ऋग्वेद में जो दस्यु कहे गए हैं वे संभवतः इस देश के मूलवासी थे और आर्यों के जिस राजा ने उन्हें

पराजित किया था वह त्रसदस्यु कहलाया। वह राजा दासों के प्रति तो कोमल था, पर दस्युओं का परम शत्रु था। ऋग्वेद में दस्युहत्या शब्द का बार बार उल्लेख मिलता है, पर दासहत्या का नहीं।

## 2.4 भारत में आर्यों का आगमन

पश्चिमी एशिया के बोगाजकोर्ड (एशिया माइनर) से प्राप्त चौदहवीं शताब्दी ई0 पू0 के कुछ अभिलेखों में ऐसे राजाओं का उल्लेख आया है, जिनके नाम आर्यों जैसे थे और जो सन्धियों की साक्षी तथा रक्षा के लिए इन्द्र, मित्र, वरुण और नासत्य जैसे देवताओं का आह्वान करते थे। यह निश्चित है कि ये अभिलेख आर्य धर्म की विकासावस्था के हैं, जबकि उनके इन्द्र, वरुण और उनसे सम्बद्ध अन्य देवता भी अपनी प्रारम्भिक वैदिक प्रधानता कायम रखे हुए थे। इन्द्र के ये उपासक अपने पहले के निवास स्थान सिन्धु की तराई से एशिया माइनर चले गये या इसकी क्रिया ठीक इसके विपरीत थी। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद की एक ऋचा में एक उपासक अपने प्रत्न ओकस् यानी प्राचीन निवास स्थान से उन्हीं इन्द्रदेव का आह्वान करता है, जिन्हें उसके पूर्वज भी पूजते थे। यह भी ज्ञात है कि यदु और तुर्वश ऋग्वेद के दो प्रधान जन थे, इन्द्र जिन्हें किसी दूर देश से लाये थे। कई ऋचाओं में यदु का विशेष सम्बन्ध पशु या पर्शु से जो नाम पर्शिया के प्राचीन निवासियों का था, स्थापित किया गया है। तुर्वश ने एक राजा से युद्ध में भाग लिया था, जिसका नाम पार्थव कहा गया है।

### 2.4.1 ऋग्वेद कालीन आर्यों का भारत में विस्तार

दोनों इन्द्रोपासक आर्य दल आपस में संघर्ष करते रहते थे परन्तु अनार्यों के साथ उनकी लड़ाई महत्वपूर्ण है जिसके परिणामस्वरूप क्रमशः आर्यों का राज्य विस्तार पर्याप्त परिमाण में पूरब की ओर हुआ। शम्बर नामक दासों के सरदार से लड़ने का श्रेय दिवोदास को है। सुदास ने उसकी नीति को जारी रखा और यमुना के किनारे देशी जातियों के शत्रुतापूर्ण गिरोह को कुचल डाला। विश्वामित्र नामक पुरोहित के पथ प्रदर्शन में भरत लोग कीकट नामक एक अनार्य जाति के विरोध की भावना रखते हुए मालूम पड़ते हैं जिसका परम्परा से मगध (दक्षिण बिहार) से सम्बन्ध था। ऋग्वेद की जातियों ने अन्त में जिस भौगोलिक क्षेत्र पर अपना अधिकार कायम किया था, उसका साफ-साफ संकेत कुछ नदियों के नामों के उल्लेख से मिलता है जिन्हें कि बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण कुभा, सुवास्तु, क्रुम, गोमती (गुमल) सिन्धु, सुषोमा (सोहान), वितस्ता (झेलम), असिकनी (चनाब), मरुद्वधा, परुष्णी (रावी), विपाश (व्यास), सरस्वती, दृषद्वती (रक्षी या चितांग), यमुना, गंगा और सरयू है। इन नदियों का उल्लेख यह बताता है कि पूर्वी अफगानिस्तान से गंगा की ऊपरी तराई तक का बड़ा भू-भाग आर्यों के अधिकार में था। इस क्षेत्र का बड़ा भाग सप्तसिन्धु के नाम से प्रचलित था। इस बृहत प्रदेश का सारा भाग आर्य जातियों से पूर्णतः अधिकृत नहीं हो सका था, क्योंकि यहाँ दासों की जातियों (विशः) की चर्चा मिलती है, जिन्होंने इस

भू-भाग का कुछ न कुछ भाग अवश्य ही अपने अधिकार में रखा होगा और जिनका निष्कासन अवश्य ही मन्द और क्रमिक गति से हुआ होगा। देश का बड़ा भाग या तो अरण्यानी से आच्छादित था या बिल्कुल ही बंजर था, जिसमें कहीं-कहीं पर कुछ कूएँ (प्रपा) थे।

### 2.4.2 उत्तर वैदिक कालीन आर्यों का भारत में विस्तार

उत्तर वैदिक काल में 'विश्वजनीन राजा' की धारणा प्रबल होने लगी। बड़े-बड़े राज्यों के बढ़ने के साथ ही हमें आर्यों के राजनीतिक और सांस्कृतिक आधिपत्य का फैलाव पूर्व और दक्षिण में मिलता है। यह जितना ही राजाओं और राजकुमारों के साहसपूर्ण उत्साह के कारण हुआ, उतना ही पुरोहितों की इच्छा के कारण भी, जो यज्ञों के द्वारा अग्नि देवता को नये देशों का स्वाद चखाना चाहते थे। उत्तर वैदिक काल के अन्त के पहले आर्यों ने यमुना, उपरी गंगा और सदानीरा (राप्ती या गंडक) से सिंचित उर्वरा मैदानों को पूर्णरूपेण जीत लिया। विन्ध्य जंगल में साहसी दल घुस गये और उन्होंने दक्खन में गोदावरी के उत्तर शक्तिशाली राज्य स्थापित किये।

इस काल की जातियों में सबसे अधिक मुख्य पहले कुरु और पांचाल थे जिनकी राजधानियाँ क्रमशः आसन्दीवत् और काम्पिल थी। कुरुओं ने सरस्वती और दृषद्धती के अग्रभाग-कुरुक्षेत्र और दिल्ली तथा मेरठ के जिलों को अधिकार में किया। पांचालों ने बरेली, बदायूं और फर्रुखाबाद जिलों और आस पास के कुछ भू-भागों में अपना अधिकार जमाया।

आर्य जगत् का केन्द्र 'मध्यदेश' (ध्रुवा मध्यमा दिश्) था। यह सरस्वती से लेकर गंगा के दोआब तक फैला और कुरु, पांचाल एवं निकट की कुछ जातियों के द्वारा अधिकृत था। यह वही भू-भाग था, जहाँ से ब्राह्मण सभ्यता बाहर के प्रदेशों में सरयू और वरणावती से सिंचित कोसल एवं काशी में, विदेहों के उपनिवेश गंडक के पूरब वाली दलदलों में, और विद्धों से अधिकृत वर्धा की तराई में फैली। इनके बाहर, पूर्व बिहार में बंग और दक्षिण बिहार में मौगध जैसी मिश्रित जातियाँ रहती थी और उत्तर बंगाल में पुण्ड्र, विध्य के जंगल में पुलिन्द और शबर तथा गोदावरी की तराई में आन्ध्र लोग रहते थे जो दस्यु या आदिवासी थे।

#### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. ऋग्वेदिक सभ्यता बिहार प्रदेश में विद्यमान थी
2. उत्तर वैदिक काल में आर्यों को केरल की जानकारी थी
3. आर्यों के विस्तार में उनके पुरोहितों का भी योगदान था
4. आर्य जगत् का केन्द्र 'मध्यदेश' (ध्रुवा मध्यमा दिश्) था

## 2.5 वैदिक ग्रन्थों में वर्णित भौगोलिक क्षेत्र

ऋग्वेद में आर्यों के आदि-देश, उनके प्रयाण-स्थल, प्रस्थान का काल, मार्ग आदि का विवरण नहीं है। ऋग्वेद से ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम आर्य पूर्वी अफगानिस्तान तथा पंजाब में बसे थे। अफगानिस्तान की काबुल, स्वात, कुर्रम तथा गोमल नदियों-और पंजाब की पांचों नदियों-वितस्ता (झेलम), असिक्नी (चेनाब), परूष्णी (रावी), विपाशा (व्यास) तथा शुतुद्री (सतलज) नदियों का उल्लेख ऋग्वेद के मन्त्रों में बार-बार आया है। जिन अन्य नदियों का उल्लेख मिलता है उनमें सिन्धु सुषोमा (रावलपिंडी जिला), मरूदवृधा (जम्मू तथा काश्मीर), सरस्वती, दृषद्वती (रक्षी या चितांग), यमुना तथा गंगा सम्मिलित है। यमुना का तीन बार तथा गंगा का केवल एक बार उल्लेख मिलता है। गंगा के पूर्व की नदियों का उल्लेख नहीं मिलता है। ऋग्वेदिक आर्यों को पूर्व की भौगोलिक जानकारी न होने का एक अन्य प्रमाण यह है कि ऋग्वेद में पूर्वी खाद्यान्न चावल और पूर्वी पशु बाघ का उल्लेख नहीं मिलता है।

ऋग्वेदिक लोगों को हिमालय की जानकारी थी क्योंकि सोम का पौधा ये हिमालय के मूजवत् शिखर से प्राप्त करते थे। इन्हें यमुना के दक्षिण की जानकारी नहीं थी क्योंकि विंध्य का उल्लेख नहीं मिलता है। समुद्र की जानकारी सौ पतवारों वाले जहाज से यात्रा करने के उल्लेख तथा भुज्यु के बेड़े के टूटने के उल्लेख से मिलती है, परन्तु अनेक विद्वान समुद्र का अर्थ जल-राशि से लेते हैं, और मानते हैं कि नौ यात्रा, नारों द्वारा नदियों को पार करने तक सीमित थी।

उत्तरवैदिक कालीन ग्रन्थ आर्यों के बाद के प्रसार को बताते हैं जिससे हमें उनके भौगोलिक ज्ञान की जानकारी होती है। ऋग्वेदिक कालीन आर्यों को केवल अफगानिस्तान, पंजाब तथा दिल्ली क्षेत्र का ज्ञान था परन्तु अब आर्यों की जानकारी में भारत के अधिकांश भाग आ गये थे। कुरुक्षेत्र इस युग की सभ्यता का केन्द्र था, मध्यदेश भी इससे संबंधित था। मध्यदेश, सरस्वती से लेकर गंगा के दोआब तक विस्तृत था और कुरू, पांचाल तथा उशीनर आर्य समूह द्वारा अधिकृत था। सरयू और वरणावती से सिंचित कोसल एवं काशी, विदेहों के उपनिवेश गंडक के पूरब वाली दलदलों तथा विदर्भों से अधिकृत वर्धा की तराई का आर्यों को सम्यक ज्ञान हो चुका था। पूर्व बिहार में अंग दक्षिण बिहार में मागध जैसी मिश्रित जातियों, उत्तर बंगाल में पुत्र, विंध्य के जंगलों में पुलिन्द और शबर तथा गोदावरी की तराई में स्थित आन्ध्रों का उन्हें ज्ञान था।

इस काल की भौगोलिक जानकारी का ज्ञान इस काल में प्रयुक्त चित्रित धूसर मृणभाण्डों से भी लगता है। चित्रित धूसर भाण्डों का प्रयोग करने वाली लगभग 315 बस्तियां उत्खनित हुई हैं। इन बस्तियों के उत्खनन से आर्यों के प्रसरण का सम्यक अध्ययन होता है।

## 2.6 वैदिक साहित्य

विद्वानों ने वैदिक साहित्य को दो भागों-श्रुति साहित्य एवं स्मृति साहित्य में विभाजित किया है। इनका अध्ययन अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-

### 2.6.1 श्रुति साहित्य

श्रुति साहित्य के अन्तर्गत चार संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् को सम्मिलित किया जाता है, इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'जानना' सामान्यतः इसका अर्थ 'ज्ञान' से है। वेदों की संख्या चार है, यथा ऋक, साम, यजुः और अथर्व। प्रथम तीन कभी कभी त्रयी कहे जाते हैं और सर्वप्रथम यही धर्म ग्रन्थ माने गये। ऋग्वेद प्राचीनतम है इसमें 10 मण्डल तथा कुल मिलाकर 1028 सूक्त हैं। प्रत्येक सूक्त में रचयिता ऋषि का नाम अथवा गोत्र, स्तुति की जाने वाले देवता का नाम तथा विनियोग मिलता है। होता नामक पुरोहित इनका पाठ करते थे। 2 से 7 तक मण्डल सर्वाधिक प्राचीन हैं जबकि 10 वां मण्डल उत्तर-वैदिक काल में जुड़ा प्रतीत होता है। सामवेद में शायद ही कोई स्वतन्त्र विषय है केवल 75 मन्त्रों को छोड़कर इसके सभी मन्त्र सीधे ऋग्वेद से लिये गये हैं। इसके मन्त्र सोमयज्ञ के अवसर पर उद्गात नामक एक विशेष वर्ग के पुरोहितों द्वारा गाये जाते थे। सामवेद, गायन से सम्बन्धित है और भारतीय संगीत का जन्म सामवेद से ही माना जाता है। यजुः का अर्थ यज्ञ है, इस वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ विधियों का प्रतिपादन किया गया है इसीलिए यह यजुर्वेद कहलाया। यजुर्वेद में ऋग्वेद की ऋचाओं के अतिरिक्त मौलिक गद्य के मन्त्र भी थे जिन्हें अध्वर्यु नामक पुरोहित पढ़ते थे। इस संहिता में दो भिन्न पाठ हैं- तैत्तिरीय, मैत्रायनी और काठक पाठान्तर-ग्रन्थों में सुरक्षित कृष्णयजुर्वेदसंहिता और वाजसनेयी पाठान्तर ग्रन्थ में सुरक्षित शुक्लयजुर्वेद संहिता।

उपरोक्त संहिताओं के बहुत समय बाद अथर्ववेद ने धर्म ग्रन्थ की स्वीकृति प्राप्त की। इसमें 40 अध्याय हैं। इसके विषय में ब्रह्म ज्ञान, समाज निष्ठा, औषधि प्रयोग, शत्रु दमन, रोग निवारण, जन्म मन्त्र, रोना टोटका आदि सम्मिलित हैं। विषय विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस समय तक आर्य और अनार्य विचारधाराओं का समन्वय हो गया था।

दूसरे वर्ग के ग्रन्थ ब्राह्मण-साहित्य के नाम से विख्यात है, ब्रह्म का अर्थ यज्ञ है, अतः यज्ञ विषयों का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ ब्राह्मण कहलाये। ये वेदों पर आधारित हैं और वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करते हुए ही ये अपने यज्ञों का प्रतिपादन करते हैं। ये मूलतः गद्य ग्रन्थ हैं यद्यपि कहीं कहीं पद्य भी मिलता है। प्रत्येक वेद के अपने अपने ब्राह्मण हैं, यथा-ऋग्वेद का ऐतरेय और

कौषीतकि ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, सामवेद का पंचविंश ब्राह्मण तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण।

तृतीय वर्ग में 'आरण्यक' है। ये जंगलों में दिये जाने वाले उपदेशों या जंगलों में रहने वाले ऋषियों के लिए रचित ग्रन्थ हैं। आरण्यकों में कोरे यज्ञवाद के स्थान पर चिन्तनशील ज्ञान के पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है। प्रमुख आरण्यकों में ऐतरेय आरण्यक, शांखायन आरण्यक, तैत्तरीय आरण्यक, मैत्रायनी आरण्यक तथा तलवकार आरण्यक है।

अन्त में 'उपनिषद्' हैं जिनका अर्थ है 'समीप पर बैठकर कहने योग्य सिद्धान्त या रहस्य ग्रन्थ'। उपनिषदों में दार्शनिक ढंग की गंभीर विवेचना है जो 'ब्रह्मन् या आत्मन्' के दो विचारों के चारों ओर चक्कर काटती है। प्राचीनतम उपनिषदों साधारणतः बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व की समझी जाती है, किन्तु कुछ निश्चय ही बहुत बाद की है। उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है। प्रमुख उपनिषदों में ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, वृहदारण्यक और कौषितिकी हैं। केवल उपरोक्त साहित्यिक रचनाएँ ही श्रुति कहलाती हैं।

### 2.6.2 स्मृति साहित्य

हालांकि इन रचनाओं से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित सहायक ग्रन्थों को वेदांग कहते हैं और उन्हें स्मृति के अन्तर्गत रखा जाता है। वेदांग, संख्या में 6 हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् और ज्योतिष।

शिक्षा में शुद्ध उच्चारण और वैदिक मन्त्रों के जोर से उच्चारण के चिन्हों पर विचार किया गया है। शिक्षा में ऋग्वेद के संहिता पाठ के साथ साथ पद पाठ भी दिया गया है जो पदों को एक पूर्ण व्याकरण सम्बन्धी विश्लेषण प्रदान करता है शिक्षा की सबसे प्रधान रचना 'प्रातिशाख्य सूत्र' है।

कल्प के अन्तर्गत श्रौत सूत्र जो बड़े बड़े यज्ञों के सम्पादन के लिए नियम बनाते हैं, गृह्य सूत्र जो दैनिक जीवन के छोटे छोटे उत्सवों के लिए नियम बनाते हैं तथा धर्म सूत्र जो पवित्र और धर्म निरपेक्ष नियमों और प्रशासन पर विचार करते हैं, सम्मिलित है। श्रौत सूत्र के अन्तर्गत शुल्व सूत्र नाम की रचना है जो भारतीय ज्यामिती पर सबसे प्राचीन पुस्तक है।

व्याकरण, निरुक्त और छन्दस् में क्रमशः पाणिनी, यास्क, और पिंगल के महान् ग्रन्थ आते हैं, ज्योतिष का एक छन्दोबद्ध ग्रन्थ प्राप्त है, किन्तु यह तुलनात्मक दृष्टि से बाद का है।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए

1. श्रुति साहित्य के अन्तर्गत वेदांग को सम्मिलित किया जाता है

2. उपनिषदों की संख्या 18 मानी जाती है
3. शुल्व सूत्र भारतीय ज्यामिती पर सबसे प्राचीन पुस्तक है

## 2.7 साराशं

पश्चिमी एशिया के बोगाजकोई (एशिया माइनर) से प्राप्त चौदहवीं शताब्दी ई० पू० के कुछ अभिलेखों में ऐसे राजाओं का उल्लेख आया है, जिनके नाम आर्यों जैसे थे और जो सन्धियों की साक्षी तथा रक्षा के लिए इन्द्र, मित्र, वरूण और नासत्य जैसे देवताओं का आहवान करते थे। ये उल्लेख वैदिक आर्यों के पश्चिम एशियाई संबंधों की ओर इशारा करते हैं। भारत में आर्यों के विस्तार का इतिहास क्रमिक है। ऋग्वेद आर्यों की पंजाब क्षेत्र में गतिविधियों की जानकारी देता है जबकि उत्तरवैदिक कालीन ग्रंथ आर्यों के पूर्व तथा दक्षिण दिशा में विस्तार को बतलाते हैं। वैदिक काल के अंत तक सरयू और वरणावती से सिंचित कोसल एवं काशी, विदेहों के उपनिवेश गंडक के पूरब वाली दलदलों तथा विदर्भों से अधिकृत वर्धा की तराई का आर्यों को सम्यक ज्ञान हो चुका था। पूर्व बिहार में अंग दक्षिण बिहार में मागध जैसी मिश्रित जातियों, उत्तर बंगाल में पुत्र, विंध्य के जंगलों में पुलिन्द और शबर तथा गोदावरी की तराई में स्थित आन्ध्रों का उन्हें ज्ञान था। वैदिक सभ्यता की जानकारी इसके समृद्ध साहित्य से होती है। जिसके अन्तर्गत चार संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् और ज्योतिष को सम्मिलित किया जाता है।

## 2.8 तकनीकी शब्दावली

1. प्रत्न ओकस् - प्राचीन निवास स्थान
2. अरण्यानी - जंगल
3. विश्वजनीन राजा - संपूर्ण विश्व का राजा
4. मध्यदेश - सरस्वती से लेकर गंगा के दोआब तक का क्षेत्र
5. चित्रित धूसर भाण्ड - सलेटी रंग के चित्रित बरतन जिन्हें आर्यों के साथ संबंधित किया गया है।

## 2.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

- इकाई 2.4 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य  
 इकाई 2.4 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य  
 इकाई 2.4 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य  
 इकाई 2.4 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- सत्य

- 
- इकाई 2.6 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य  
इकाई 2.6 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य  
इकाई 2.6 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य
- 

## 2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

1. रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010
  2. वी.डी. महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
  3. ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984
  4. ए.एल. बाशम: अब्दुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972
- 

## 2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

- Chattopadhyaya, K.C.: Studies in Vedic and Indo-Iranian Literature, Vol.-2, Bhartiya Vidya Bhawan, Varanasi, 1978.
- Dange, S.A.: Cultural Sources from the Vedas, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1977.
- Ghurye, G.S.: Vedic India, Popular Prakashan, Bombay, 1979.
- Sharma, R.S.: Material Culture and Social Formation in Ancient India, Macmillan, Delhi, 1983
- Tripathi, Vibha : The Painted Grey Ware: an Iron Culture of Northern India, Concept Publishing, Delhi, 1976.
- 

## 2.12 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. वैदिक ग्रंथों के आधार पर उत्तर वैदिक काल तक आर्यों के भौगोलिक विस्तार पर चर्चा कीजिए।
2. वैदिक साहित्य का सविस्तार परिचय दीजिए।

## इकाई-तीन: वैदिकयुग में धार्मिक विचार एवं धार्मिक अनुष्ठान

- 
- 3.1 प्रस्तावना
  - 3.2 उद्देश्य
  - 3.3 वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा
    - 3.3.1 ऋग्वेदिक कालीन धार्मिक विचारधारा
    - 3.3.2 उत्तर वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा
  - 3.4 वैदिककालीन धार्मिक विश्वास
    - 3.4.1 एकम् सत
    - 3.4.2 एकेश्वरवाद
    - 3.4.3 बहुदेववाद
    - 3.4.4 प्रकृति में विश्वास
  - 3.5 देवी देवताओं के विभिन्न वर्ग
    - 3.5.1 प्राकृतिक देवता
    - 3.5.2 गृहस्थ्य जीवन से सम्बन्धित देवता
    - 3.5.3 अमूर्त देवता
    - 3.5.4 पशु रूप देवता
    - 3.5.5 अन्य देवता
  - 3.6 यज्ञ
  - 3.7 धार्मिक जीवन
  - 3.8 धार्मिक क्रिया-विधियाँ
    - 3.8.1 स्तुति और प्रार्थना
    - 3.8.2 यज्ञ
    - 3.8.3 पितृ-पूजा
    - 3.8.4 दाह क्रियाविधि
  - 3.9 सारांश
  - 3.10 तकनीकी शब्दावली
  - 3.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
  - 3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
  - 3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
  - 3.14 निबंधात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपको आर्यों के भारत आगमन तथा उनके विस्तार के बारे में जानकारी दी गयी थी। वैदिक सभ्यता के विभिन्न पक्षों की जानकारी के स्रोत श्रुति और स्मृति साहित्य हैं। आर्यों के धर्म एवं दर्शन के विषय में भी श्रुति और स्मृति साहित्य पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इनके विषय में पूर्व इकाई में आपको जानकारी दी गयी है। अब आपको जानकारी है कि इनमें ऋग्वेद प्राचीनतम है इसमें 10 मण्डल तथा कुल मिलाकर 1028 सूक्त हैं। प्रत्येक सूक्त में रचयिता ऋषि का नाम अथवा गोत्र, स्तुति की जाने वाले देवता का नाम तथा विनियोग मिलता है। होता नामक पुरोहित इनका पाठ करते थे। यजुर्वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ विधियों का प्रतिपादन किया गया है इसीलिए यह यजुर्वेद कहलाया। यजुर्वेद में ऋग्वेद की ऋचाओं के अतिरिक्त मौलिक गद्य के मन्त्र भी थे जिन्हें अध्वर्यु नामक पुरोहित पढ़ते थे। अथर्ववेद में 40 अध्याय मिलते हैं। इसके विषय में ब्रह्म ज्ञान, समाज निष्ठा, औषधि प्रयोग, शत्रुदमन, रोग निवारण, जन्म मन्त्र, रोग टोटका आदि सम्मिलित है।

ब्राह्मण ग्रंथ वेदों पर आधारित है और वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करते हुए ही ये अपने यज्ञों का प्रतिपादन करते हैं। ये मूलतः गद्य ग्रन्थ हैं यद्यपि कहीं कहीं पद्य भी मिलता है। प्रत्येक वेद के अपने अपने ब्राह्मण हैं, यथा-ऋग्वेद का ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, सामवेद का पंचविंश ब्राह्मण तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण। तृतीय वर्ग में 'आरण्यक' है। ये जंगलों में दिये जाने वाले उपदेशों या जंगलों में रहने वाले ऋषियों के लिए रचित ग्रन्थ हैं। आरण्यकों में कोरे यज्ञवाद के स्थान पर चिन्तनशील ज्ञान के पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है। प्रमुख आरण्यकों में ऐतरेय आरण्यक, शांखायन आरण्यक, तैत्तरीय आरण्यक, मैत्रायनी आरण्यक तथा तलवकार आरण्यक है।

अन्त में 'उपनिषद्' हैं जिनका अर्थ है 'समीप पर बैठकर कहने योग्य सिद्धान्त या रहस्य ग्रन्थ'। उपनिषदों में दार्शनिक ढंग की गंभीर विवेचना है जो 'ब्रह्मन् या आत्मन्' के दो विचारों के चारों ओर चक्कर काटती है। प्राचीनतम उपनिषद साधारणतः बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व की समझी जाती हैं, किन्तु कुछ निश्चय ही बहुत बाद की हैं। उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है। प्रमुख उपनिषदों में ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, वृहदारण्यक और कौषीतिकी हैं। केवल उपरोक्त साहित्यिक रचनाएँ ही श्रुति कहलाती हैं। वैदिक धर्मग्रन्थों से हमें आर्यों के धर्म-दर्शन का जो स्वरूप मिलता है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उस काल के मनीषियों ने धर्म और तत्त्व पर पर्याप्त चिंतन किया था।

## 3.2 उद्देश्य

वैदिक सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए द्वितीय ब्लाक की पहली इकाई में आपको आर्यों के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गयी थी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। तृतीय इकाई में आपको भारत में आर्यों का आगमन, आर्यों का भारत में विस्तार, और वैदिक साहित्य की सामान्य जानकारी दी गया थी। इस इकाई में वैदिकयुग में धार्मिक विचार एवं धार्मिक अनुष्ठान की जानकारी से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा एवं धार्मिक विश्वास
2. वैदिककालीन धार्मिक धार्मिक जीवन
3. वैदिककालीन धार्मिक क्रियाविधियां
4. वैदिककालीन धर्म-दर्शन

## 3.3 वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा

ऋग्वेद की ऋचाएँ आर्यों की धार्मिक विचारधाराओं पर प्रकाश डालती हैं। इनका अध्ययन हम अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं-

### 3.3.1 ऋग्वेदिक कालीन धार्मिक विचारधारा

इस धर्म के लौकिक और दार्शनिक पक्ष हैं। ऋग्वेदकालीन आर्य नितान्त प्रवृत्तिमार्गी थे। उन्होंने आभी तक गृहत्याग, सन्यास ओर तप की कल्पना नहीं की थी। वे विश्व का अमंगलकारी कष्ट का स्थान नहीं मानते थे। उनमें शरीर से मुक्ति या सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए कोई तीव्र लालसा या उत्सुकता नहीं थी। प्रारम्भिक वैदिक धर्म को एकैकदेववाद कहा गया है, जिसके अनुसार लोग अलग-अलग देवताओं में विश्वास करते थे और जिनमें से प्रत्येक देवता अपनी जगह पर सर्वोच्च था। ऋग्वेदिक आर्यों के लिए विश्व और गृहस्थाश्रम उत्तम स्थान थे। वे गृहस्थाश्रम में ही रहकर देवोपासना और नैतिकता से कल्याण प्राप्ति के लिए प्रयास करते थे।

ऋग्वेद में मनुष्यों के सद्गुणों और नैतिकता पर भी बल दिया गया है, मनुष्य के वर्तमान तथा भविष्य के विषय में कोई संघर्ष नहीं था। धर्म, अर्थ एवं काम के बीच में कोई विरोधाभास नहीं था, यह कल्पना की जाति थी कि सम्पूर्ण मानव जीवन सुख और समन्वय की इकाई है। प्रारम्भिक एकैकदेववाद के स्थान पर कालान्तर में आर्यों के धार्मिक विचारों में परिवर्तन होता गया। प्रकृति और देवताओं के विषय में आर्यों के मत में परिवर्तन हो गया। आर्यों ने यह समझ लिया था कि

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक परम सत्ता है। “सत् एक ही है। विद्वान या ऋषिगण उसे अग्नि, यम और मातरिश्वा आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं।” यह देवादिदेव के अस्तित्व की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद की बाद की ऋचाओं में एकेश्वरवाद की भावना और अद्वैतवाद की प्रवृत्ति के निश्चित संकेत और दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में कहा गया है कि “ आकार और अस्तित्व वाले का सृजन निराकार से हुआ।”

अन्ततः हमें सृष्टि का एक संगीत मिलता है, जिसके अनुसार प्रारम्भ में न तो मृत्यु और न अमरता रहती थी और न दिन रात का भेद ही था। केवल वही एक शान्तिपूर्वक रहता था जो अपने ऊपर निर्भर था, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं था और इसके ऊपर भी कोई नहीं था।

### 3.3.2 उत्तर वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा

उत्तर वैदिक काल में आर्यों के धार्मिक जीवन में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। प्राचीन देवताओं की द्युति क्रमशः मलिन पड़ रही थी। पुरोहितों ने धर्म के यज्ञवाले भाग का बहुत ही प्रसार किया, जबकि प्रेतों, पिशाचों, जादू-मन्त्रों और जादू विद्या में सार्वजनिक अन्धविश्वास ने धर्म में स्थान प्राप्त कर लिया। समय के साथ एकेश्वरवादी ओर अद्वैतवादी प्रवृत्तियाँ, जो कि ऋग्वैदिक काल के अन्त में पनप रही थीं, अब स्पष्ट हो गयीं। भौतिक प्राणियों के स्वामी प्रजापति के सामने पहले के सब देवता ज्योतिहीन हो गये। ईश्वर के अवतारवाद की धारणा प्रजापति की कहानियों से स्पष्ट होती है, जिन्होंने शूकर का रूप धारण कर पृथ्वी को पाताल के जल से ऊपर उठाया और जो सृष्टि निर्माण के समय कच्छप हो गये।

साधारण जनता दुरूह धर्म विद्या या दार्शनिक विवेचना को नहीं समझ सकी और ऋग्वेद में परिचित कुछ देवताओं के प्रति अपना सम्मान दिखाने लगी, किन्तु वे देवता इतने प्रमुख नहीं थे, जितने इन्द्र या वरुण। उनमें एक रूद्र थे, जो पहले की प्रार्थनाओं में शिव की उपाधि रखते थे और शीघ्र ही महादेव और पशुपति समझे जाने लगे। रूद्र के साथ ही दूसरी मूर्ति विष्णु की थी, जो ऋग्वेद में तीन डगों के लिए प्रसिद्ध सूर्य लोग के देवता थे। विश्व सम्बन्धी और धर्मानुरूप व्यवस्था के मूलस्वरूप दुःख से मनुष्य जाति को मुक्त करने वाले और देवताओं के रक्षक के रूप में विष्णु ने शीघ्र ही वरुण का स्थान प्राप्त किया और स्वर्गीय देवों में ये सबसे अधिक महिमान्वित हुए। वैदिक धर्म पुस्तकों के अन्तिम काल तक वे वासुदेव समझे जाने लगे और इनहीं धर्म पुस्तकों में भागवत् सम्प्रदाय के बीज प्राप्त होते हैं।

### 3.4 वैदिककालीन धार्मिक विश्वास

वैदिक ग्रंथों के अनुशीलन द्वारा इमें तत्कालीन धार्मिक विश्वासों के विषय की निम्नलिखित रूपरेखा प्राप्त होती है:-

### 3.4.1 एकम् सत

ऋग्वेद के रचयिता एक सत्य में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार यह 'सत्' अस्तित्व की नियन्त्रित करने वाला एक नियम है तथा यही असीम वास्तविकता है। ऋग्वेद में प्रार्थना, उपासना तथा भेंट द्वारा जिन देवताओं की स्तुति की गई है वे सभी सत्य के अभिभावक हैं। उन्हीं की कृपा द्वारा सत्य के नियम, को पहचाना जा सकता है।

### 3.4.2 एकेश्वरवाद

ईश्वर एक है परन्तु उसका वर्णन कई रूपों में किया जाता है ऋग्वेद के इस कथन से स्पष्ट होता है कि ऋग्वैदिक आर्य 'एकम् सत्' में विश्वास रखते हुए जिस सार्वभौमिक सत्ता में विश्वास रखते थे- वह एकेश्वरवाद थी।

### 3.4.3 बहुदेववाद

ऋग्वैदिक आर्य एक सार्वभौमिक सत्ता में विश्वास रखते हुए भी बहुदेववादी हो गये थे। ऋग्वेद अनेक देवताओं का अस्तित्व मानता है। एकेश्वरवाद तथा बहुदेववाद के इस समन्वयी दृष्टिकोण के विषय में यास्क ने उदाहरण देते हुए कहा है कि व्यक्तिगत रूप से भिन्न होते हुए भी जैसे असंख्य मनुष्य राष्ट्र के रूप में एक हैं वैसे ही विविध रूपों में प्रकट होने पर भी देवताओं में एक ही परमात्मा व्याप्त है।

### 3.4.4 प्रकृति में विश्वास

ऋग्वैदिक आर्यों का विश्वास था कि प्रकृति की प्रत्येक शक्ति एक देवता के अधीन कार्य करती है। परिणामस्वरूप वे प्रकृति को भी विभिन्न देवताओं का स्वरूप मानने लगे। प्रकृति के प्रतिनिधि के रूप में उनके देवताओं की तीन श्रेणियाँ थीं- (1) आकाश देवता- द्यौस-वरुण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषन, अदीति, उषा तथा आश्विन आदि, (2) अन्तरिक्ष देवता - इन्द्र, रूद्र, मारुति, वात, पर्जन्य आदि, तथा (3) पृथ्वीवासी देवता- पृथ्वी, अग्नि, सोम, वृहस्पति, सरस्वती आदि।

## 3.5 देवी देवताओं के विभिन्न वर्ग

आर्यों द्वारा प्रयुक्त 'देव' शब्द की परिभाषा व्यापक थी। इसके अन्तर्गत परम पुरुष से लेकर, प्रकृति की विभिन्न शक्तियों, पूर्वज, आचार्य, माता पिता, आदि की कल्पना की जाती थी। आर्यों का विश्वास एक सर्वोच्चशक्ति 'सत्' अथवा परम पुरुष में था जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अनेक रूपों में स्वीकार की। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने प्रकृति, गृहस्थ, पशुरूप तथा अमूर्त देवताओं की कल्पना की। इन रूपों तथा अपने एवं देवता के मध्य सम्बन्धों से वे आश्चर्य, भय, एवं

प्रभाव आदि भावनाओं से ओतप्रोत हुये और सभी के समक्ष समान आदर से उन्होंने शीश झुकाकर सभी के देवता स्वरूप को स्वीकार किया। ऋग्वैदिक देवी देवताओं के विभिन्न वर्ग निम्नलिखित है-

### 3.5.1 प्राकृतिक देवता

प्रकृति के प्रधान कार्यों के द्योतक देवताओं के वर्ग में थीं, पृथ्वी, वरुण, इन्द्र, सूर्य (इसके पाँच रूप है- सूर्य, सविता, मित्र, पूषन तथा विष्णु), रुद्र, दो आश्विन (जो प्रायः तथा सांयकाल के रूप हैं) मरुत, वायु, वात रर्जन्य तथा ऊषा आदि है।

### 3.5.2 गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित देवता

इस वर्ग के देवताओं का सम्बन्ध आर्यों के गृहस्थ जीवन से था। ये देवता अग्नि (इसके तीन रूप थे सूर्य, विद्युत तथा भौतिक अग्नि), सोम (अमृत का पेय) हैं।

### 3.5.3 अमूर्त देवता

हमें वैदिक ग्रंथों में अनेक ऐसे अनेक देवताओं की संकल्पना मिलती है, जिन्हें अमूर्त देवता के वर्ग में रक्षा जा सकता है। इस वर्ग में श्रद्धा तथा मन्यु थे।

### 3.5.4 पशु रूप देवता

कुछ स्थानों पर इन्द्र की वृषभ रूप में तथा सूर्य की अश्वरूप में पूजा की गयी है। सर्प का समुद्र का देवता कहा गया है।

### 3.5.5 अन्य देवता

ऋभु, आकाशचारी देवता, देव योनियों, अप्सराएं तथा गन्धर्व आदि अन्य देवता थे।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. अन्तरिक्ष देवता के अंतर्गत इन्द्र, रुद्र, मारुति, वात, पर्जन्य आदि सम्मिलित थे।
2. आकाशवासी देवता के अंतर्गत पृथ्वी, अग्नि, सोम, वृहस्पति, सरस्वती आदि सम्मिलित थे।
3. अमूर्त देवता के वर्ग में पृथ्वी, वरुण, इन्द्र, सूर्य आदि को रखा जा सकता है।

## 3.6 यज्ञ

देवता के लिये मन्त्रपूर्वक द्रव्यत्याग को यज्ञ कहते थे। यज्ञ का प्रारम्भिक स्वरूप सरल था। ऋग्वेद काल में देवता के स्तुतिपरक मन्त्र पढ़े जाते थे और हवि के रूप में विविध धान्य अथवा

गोरस से निर्मित अन्न आदि तथा सोमरस अर्पित किये जाते थे। क्रमशः अनेक यज्ञों में ऋत्विक् के कार्य का चतुर्धा विभाजन भी होता था। होता नामक ऋत्विक् ऋचाओं का पाठ करता था। अध्वर्यु कर्मकाण्ड का भार वहन करता था। उदगाता सामगान करता था तथा ब्रह्मा यज्ञ कर्म का अध्यक्ष होता था।

### 3.7 धार्मिक जीवन

गुरुचरण सुश्रुषा, तप और त्याग तथा श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अभ्यास से विकसित आर्यों का धर्म अद्वितीय था। सभ्यता के उस चरण में विश्व के किसी भी भाग में धर्म का ऐसा रूप नहीं मिलता। साधारण से परिवर्तन के अतिरिक्त उत्तर वैदिक काल का धार्मिक जीवन लगभग ऋग्वैदिक काल के ही समान था। आवागमन के सिद्धान्त का जन्म नहीं हुआ था तथा अहिंसा की नीति का प्रतिपादन होना अभी शेष था। अथर्ववेद की अधिकांश प्रार्थनाओं में आयु, संतान, धन एवं प्रभुता की कामना ही मिलती है। यजुर्वेद की लगभग सारी स्तुतियों तथा क्रियाएं भौतिक सुख प्राप्ति विषयक ही हैं। नई धार्मिक प्रवृत्तियों में परलोक गमन विषयक विश्वास इस युग की नई देन थे। अथर्ववेद में कहा गया है कि अच्छे काम करने वाले व्यक्ति देवताओं के पास जाते हैं और यम के साथ रहते हैं। स्वर्ग में घी, दूध, शहद, दही और सुरा की भरमार है। स्वर्ग का उलटा नरक है जहाँ पर पापी लोग रक्त में बैठ कर बाल चबाते हैं। इन कथनों से प्रगट होता है कि उत्तर वैदिक काल में स्वर्ग और नरक की चिन्ता सताने लगी थी। इसी चिन्ता के फलस्वरूप जिस नई भावना का जन्म हुआ वह यह थी कि इस सब स्वर्ग और नरक का क्या तात्पर्य है? यह विश्व क्या है? किसने इसे बनाया? क्यों बनाया? आदि आदि। ये खोजकर्ता के स्वाभाविक प्रश्न थे। “ इस पर मनन करते करते विश्व के आदिकरण की कल्पना हुई। विश्वचक्र में संसार क्षणभंगुर प्रतीत होता है, अतएव इसमें स्थायी सुख नहीं हो सकता दुःख तो बहुत सा है, इस सारे जंजाल को छोड़ कर शान्ति पाने की चेष्टा करनी चाहिये। इसी विचार से तप की परिपाटी चल निकली। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में सात ऋषियों द्वारा तपक ने का उल्लेख है। अथर्ववेद में कहा गया है कि तप, यज्ञ, ऋत, ओर ब्रह्म आदि के आधार पर ही विश्व स्थिर है। ऐतरेय ब्राह्मणों के अनुसार तप और यज्ञ द्वारा ही देवताओं ने स्वर्ग जीता था। इन सभी उल्लेखों आदि से स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक काल में कुछ नये दृष्टिकोणों का जन्म हो रहा था।

### 3.8 धार्मिक क्रिया-विधियाँ

वैदिक ग्रंथों में धार्मिक क्रियाविधियों की जानकारी विस्तार से मिलती है, इनका अध्ययन अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-

### 3.8.1 स्तुति और प्रार्थना

आर्यों की धार्मिक क्रियाविधियों में देवी-देवताओं की स्तुति, आराधना और प्रार्थना मुख्य थीं। प्रत्येक देवी-देवता के लिए भिन्न-भिन्न ऋचाएँ थीं और उनको गाकर ही देव-स्तवन होता था। आर्यों की धारणा थी कि उनके देवता प्रार्थना, उपासना और उपहार तथा भेंट से प्रसन्न होते हैं और सुख समृद्धि देते हैं।

### 3.8.2 यज्ञ

ऋग्वैदिक युग में यज्ञ स्वर्ग के देवों के मिलन का सांसारिक स्थान था। यज्ञ दो प्रकार के होते थे प्रथम नित्य और द्वितीय नैमित्तिक। नित्य यज्ञों में पांच महायज्ञ थे यथा ब्रह्म-यज्ञ, देव-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, भूत-यज्ञ और मनुष्य-यज्ञ। उपर्युक्त पांच महायज्ञों के अतिरिक्त नैमित्तिक यज्ञ भी होते थे। यजमान अपने पुरोहितों की सहायता से नैमित्तिक यज्ञ विभिन्न और विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कराते थे। शतपथ ब्राह्मण में ऐसे अनेक यज्ञों का उल्लेख है यथा वैश्वदेव-यज्ञ से अग्नि लोक प्राप्त किया जा सकता था, साकमेध और वरुण-प्रधास से इन्द्रलोक और वरुणलोक मिलते थे। इसी प्रकार आयुकामेष्टि दीर्घायु होने के लिए वारारिष्टी वर्षा के लिए आदि आदि।

### 3.8.3 पितृ-पूजा

ऋग्वैदिक युग में देव-पूजा के साथ-साथ पितृ-पूजा भी प्रचलित हो गयी थी, ऋग्वेद के दसवें मण्डल में एक ही स्थल पर देवताओं और पितरों का साथ-साथ विवरण है। देवताओं के समान पितरों की भी स्तुति की जाती थी और उनके लिए सोम, हवि और स्वधा का समर्पण किया जाता था। पितरों से आशा की जाती थी कि वे प्रसन्न होकर अपने वंशजों की रक्षा करेंगे, उन्हें शान्ति देंगे, उनकी सहायता करेंगे और हानि व कष्ट से उन्हें बचायेंगे।

### 3.8.4 दाह क्रियाविधि

इस युग में किसी मनुष्य की मृत्यु के पश्चात उसके शव को चिता पर ले जाते थे और मृतक के साथ उसकी पत्नी और अन्य सम्बन्धी होते थे। शव को चिता पर रख दिया जाता था। यदि मृतक ब्राह्मण होता तो उसे दाहिने कर में लाठी दी जाती, क्षत्रिय होने पर धनुष और वैश्य होने पर बैल हाकने की छड़ी दी जाती थी। उसकी पत्नी उसके समीप तब तक बैठी रहती जब तक कि उसे “अरे महिला! उठो, और जीवित लोगों के लोक में आओ।” कहकर हटाया नहीं जाता था। इसके पश्चात उस व्यक्ति के परिवार के अग्निस्थल (हवन कुण्ड या चूल्हा) से लायी गयी आग से चिता प्रज्वलित की जाती थी। इसके बाद मृतक के लिए यह ऋचा पढी जाती थी, “पुरखाओं के मार्ग पर जाओ”

(ऋग्वेद 10-14)। अग्नि में शव के पूर्णतया भस्म होने पर शरीर की अस्थियां एकत्रित कर ली जाती थीं और उन्हें धोकर स्वच्छ कर एक कलश में रखकर पृथ्वी में गाड़ दिया जाता था।

### 3.9 सारांश

प्रारम्भिक वैदिक धर्म को एकैकदेववाद कहा गया है, जिसके अनुसार लोग अलग-अलग देवताओं में विश्वास करते थे और जिनमें से प्रत्येक देवता अपनी जगह पर सर्वोच्च था। प्रारम्भिक एकैकदेववाद के स्थान पर कालान्तर में आर्यों के धार्मिक विचारों में परिवर्तन होता गया। प्रकृति और देवताओं के विषय में आर्यों के मत में परिवर्तन हो गया। आर्यों ने यह समझ लिया था कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक परम सत्ता है। उत्तर वैदिक काल में आर्यों के धार्मिक जीवन में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। पुरोहितों ने धर्म के यज्ञवाले भाग का बहुत ही प्रसार किया, जबकि प्रेतों, पिशाचों, जादू-मन्त्रों और जादू विद्या में सार्वजनिक अन्धविश्वास ने धर्म में स्थान प्राप्त कर लिया। समय के साथ एकेश्वरवादी और अद्वैतवादी प्रवृत्तियां, जो कि ऋग्वैदिक काल के अन्त में पनप रही थीं, अब स्पष्ट हो गयीं। भौतिक प्राणियों के स्वामी प्रजापति के सामने पहले के सब देवता ज्योतिहीन हो गये। ईश्वर के अवतारवाद की धारणा प्रजापति की कहानियों से स्पष्ट होती है, आर्यों द्वारा प्रयुक्त 'देव' शब्द की परिभाषा व्यापक थी। इसके अन्तर्गत परम पुरुष से लेकर, प्रकृति की विभिन्न शक्तियों, पूर्वज, आचार्य, माता पिता, आदि की कल्पना की जाती थी। आर्यों का विश्वास एक सर्वोच्चशक्ति 'सत्' अथवा परम पुरुष में था जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अनेक रूपों में स्वीकार की।

### 3.10 तकनीकी शब्दावली

प्रवृत्तिमार्गी- सांसारिक

एकेश्वरवाद- वह दर्शन जिसमें एक ही परम सत्ता को स्वीकार किया जाता है।

अवतारवाद- वह विश्वास जिसके अनुसार मानवता की भलाई के लिए ईश्वर शरीर धारण करता है।

परलोक - पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य लोक

### 3.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 3.3 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- सत्य

इकाई 3.3 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य

इकाई 3.3 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य

इकाई 3.5 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- सत्य

इकाई 3.5 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य

इकाई 3.5 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- असत्य

---

### 3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

1. रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010
2. वी.डी. महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
3. ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984
4. ए.एल. बाशम: अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972

---

### 3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

- Keith, A.B.: Religion and Philosophy of the Vedas, Oxford University Press, London, 1925.  
Majumdar, R.C. (ed.): The History and Culture of the Indian People, Vol. 1, The Vedic Age, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1951.  
Pande, Rajbali: Hindu Samskaras : Socio-Religious Study of the Hindu Sacraments, Motilal Banarasidas, Delhi, 1987.

---

### 3.14 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा एवं धार्मिक विश्वासों पर एक निबंध लिखिए।
2. वैदिककालीन धार्मिक क्रिया-विधियों के विषय में आप क्या जानकारी रखते हैं।

## इकाई चार: वैदिकयुगीन सामाजिक तथा आर्थिकजीवन

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 वैदिककालीन सामाजिक जीवन
  - 4.3.1 परिवार
  - 4.3.2 भोजन
  - 4.3.3 सुरापान
  - 4.3.4 वस्त्र-वेशभूषा
  - 4.3.5 श्रृंगार
  - 4.3.6 आभूषण
  - 4.3.7 मनोरंजन
  - 4.3.8 स्त्रियों का पद तथा दशा
  - 4.3.9 विवाह
    - 4.3.10 प्रेम विवाह
    - 4.3.11 बाल विवाह
    - 4.3.12 बहुविवाह
    - 4.3.13 विधवा विवाह
  - 4.3.14 उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक जीवन
- 4.4 सामाजिक प्रतिरूप
  - 4.4.1 ऋग्वैदिक काल
  - 4.4.2 उत्तर वैदिक काल
- 4.5 वैदिक कालीन आर्थिक जीवन
  - 4.5.1 ऋग्वैदिक कालीन आर्थिक प्रतिरूप
  - 4.5.2 उत्तर-वैदिक कालीन आर्थिक प्रतिरूप
- 4.6 सारांश
- 4.7 तकनीकी शब्दावली
- 4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

वैदिक काल से संबंधित पूर्व की इकाइयों में आपको आर्यों के भारत आगमन, उनका भारत में विस्तार, उनके द्वारा प्रणीत साहित्य आदि के विषय में विस्तार से जानकारी दी गई और आप विभिन्न तथ्यों से अवगत हुए। वैदिक साहित्य से आर्यों की जीवन प्रणाली के विभिन्न पक्षों की जानकारी भी मिलती है। इस इकाई में हम वैदिक जनों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

आर्यों के सामाजिक जीवन के विषय में जानकारी के प्रमुख स्रोत वैदिक ग्रंथ ही हैं। ऋग्वेदकालीन सामाजिक जीवन का परिचय ऋग्वेद से मिलता है जबकि उत्तर वैदिककालीन समाज की जानकारी के लिए शेष वैदिक ग्रंथों और विशेषकर सूत्र साहित्य का महत्व सर्वाधिक है। इन ग्रंथों के आधार पर हमें आर्यों की समाज व्यवस्था के साथ ही उसमें होने वाले परिवर्तनों की भी सम्यक जानकारी मिल जाती है।

आर्यों के आर्थिक जीवन के विषय में जानकारी के प्रमुख स्रोत भी वैदिक ग्रंथों में वर्णित विभिन्न संदर्भ हैं जिनके आधार पर उस काल के आर्थिक जीवन का एक अच्छा खाका खींचा जा सकता है। इन ग्रंथों के उल्लेखों से पता चलता है कि समय के साथ उत्तर वैदिक काल में आर्यों के भौतिक जीवन में भी परिवर्तन आये और विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्टीकरण में वृद्धि हुई।

## 4.2 उद्देश्य

वैदिक सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए पिछली इकाइयों में आपको आर्यों के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गयी थी। भारत में आर्यों का आगमन, आर्यों का भारत में विस्तार, वैदिक साहित्य, वैदिकयुग में धार्मिक विचार एवं धार्मिक अनुष्ठान की आपको जानकारी दी जा चुकी है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. वैदिककालीन सामाजिक जीवन
2. वैदिककालीन सामाजिक प्रतिरूप
3. वैदिककालीन वैदिक कालीन आर्थिक जीवन
4. वैदिककालीन आर्थिक प्रतिरूप

### 4.3 वैदिककालीन सामाजिक जीवन

वैदिककालीन सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन हम अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं-

#### 4.3.1 परिवार

आर्य समाज पितृसत्तात्मक था परंतु नारी को मातृरूप में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। पिता अथवा पितामह परिवार का प्रधान होता था तथा उसे 'गृहपति' और 'कुलाप' कहा जाता था। परिवार के सभी सदस्य उसके आज्ञाकारी होते थे। यह पद वंशानुगत होता था तथा पिता की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र अथवा पिता का छोटा भाई 'गृहपति' अथवा 'कुलाप' का स्थान ग्रहण करता था। पुत्र पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता था। कतिपय परिस्थितियों में पैतृक सम्पत्ति का विभाजन भी होता था। पिता की सम्पत्ति पर पुत्री का अधिकार नहीं था। संयुक्त परिवार प्रणाली होने से उत्तरदायित्व भी समान तथा सामूहिक था। परिवार के सम्मान, पारिवारिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा मान्यताओं के पालन में समस्त कुटुम्ब तत्पर रहता था। इसके अतिरिक्त कौटुम्बिक प्रेम तथा पारस्परिक सद्भावना एवं सहानुभूति ने पारिवारिक जीवन को सुख समृद्धता प्रदान की हुई थी। पत्नी अपने पति के साथ धार्मिक अनुष्ठानों में प्रमुख भाग लेती थी। ऋग्वेद के मन्त्रों में कहा गया है "पत्नी ही गृह है, वही गृहस्थी है तथा उसमें आनन्द है।" परिवार की सम्पन्नता का मापदण्ड परिवार का वृहद् होना था। "हमारे घर सन्तान से भरे रहें, हमें वीर पुत्रों की कमी न हो।" ऐसे अनेक उद्धरण मिलते हैं।

#### 4.3.2 भोजन

दूध तथा उससे बने हुए पदार्थ आर्यों को विशेष प्रिय थे। दूध के साथ वे चावल पकाते थे। चावल और जौ को घी में मिलाकर खाया जाता था। एक प्रकार का हलवा दूध तथा यव के मिश्रण से बनाया जाता था। कीथ महोदय ने लिखा है "समूचे भारतीय इतिहास में तरकारियों तथा फलों के ही भोजन उपादान रहे हैं, परन्तु वैदिक भारतीय मांसाहारी थे।" ऋग्वेद कालीन आर्य भोजन के विषय में अभिव्यक्त इस मत से हम पूर्ण सहमत नहीं हैं। जिन पशुओं के मांस का प्रयोग इस समय किया जाता था वे भेड़ तथा बकरी थे। ऋग्वेद में मछली का नाम नहीं है तथा गाय पवित्र, माता के समान मानी जाती थी अतः इनके मांस का भक्षण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जहाँ तक ऋग्वेद के वर्णनों का प्रश्न है- हम इतना ही कह सकते हैं कि आर्यों को शाकाहारी भोजन प्रिय था तथा केवल विशेष अवसरों पर ही मांस का प्रयोग किया जाता था। खाद्यान्नों में गेहूं, जौ, धान, उड़द, मूंग तथा अन्य दालों का विशेष प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद में रोटी तथा तवे का उल्लेख नहीं मिलता है।

अतः हम यह नहीं कह सकते कि वे आटे का उपयोग किस रूप में करते थे। मोटे तौर पर आर्यों का भोजन सादा, सन्तुलित तथा शक्ति वर्द्धक था।

### 4.3.3 सुरापान

सुरा निन्दित समझी जाती थी। सुरा पीकर लोग अपना आपा खो बैठते तथा सभा समितियों में आपस में लड़कर उपद्रव करते थे। आर्य सुरापान के दोषों से परिचित थे। परन्तु सुरापान का निषेध पूर्ण रूप से नहीं था। सुरापान किया जाता था। ऋग्वेद के नवें मण्डल तथा छहों अन्य सूक्तों में सोम की प्रशंसा की गई है। सोमवल्ली मूजवन्त पर्वत पर अथवा कीकटों के देश में उत्पन्न होती थी। सोम की मादकता तथा आनन्ददायिनी विशेषताओं का वर्णन भी मिलता है। सुरापान विशेष रूप से यज्ञादि के अवसर पर किया जाता था। सुरा देवताओं को भी अर्पित की जाती थी।

### 4.3.4 वस्त्र-वेशभूषा

आर्य प्रमुखतः तीन प्रकार के वस्त्र धारण करते थे- (1) अधोवस्त्र, (2) उत्तरीय तथा (3) अधिवासा। ऋग्वेद में 'उष्णीय' अर्थात् सर पर धारण की जाने वाली पगड़ी का भी उल्लेख है। उनके वस्त्र सूत, ऊन तथा मृगचर्म द्वारा बनते थे। वे सिलाई से परिचित थे तथा उनके वस्त्र नाना प्रकार के होते थे। धनी तथा विलासी व्यक्ति जरी तथा अनेक रंगों के वस्त्र धारण करते थे। उत्सवों के अवसरों पर नये तथा विशेष आकार-प्रकार के वस्त्र पहनने की प्रथा थी। स्त्रियोंसूई द्वारा कढ़ाई करके वस्त्र बनाती थीं।

### 4.3.5 श्रृंगार

श्रृंगार में स्त्रियों की विशेष रूचि थी। वे अपने केशों को अनेक प्रकार गूंधती थीं। वेणी स्त्री की सुन्दरता का प्रतीक मानी जाती थी। श्रृंगार विविध प्रकार के फूलों तथा आभूषणों द्वारा किया जाता था। काजल, तिलक, विभिन्न तेलों, सुगन्धियों तथा रंगों के श्रृंगार प्रयोग से उनका परिचय था। आर्य पुरुष भी लम्बे बाल रखते थे। दाढ़ी को 'श्मश्रु' कहा जाता था परन्तु क्षौर कराने की प्रथा थी। नाई को वाप्त कहा जाता था। सिल्ली पर उस्तरा तेज करने का उल्लेख मिलता है। अनेक स्त्रियां अपने सौन्दर्य तथा श्रृंगार पर फूली नहीं समाती थीं तथा प्रेमियों का चित्तहरण करने में कुशल थीं।

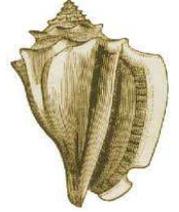
### 4.3.6 आभूषण

स्त्री तथा पुरुष समान रूप से आभूषण प्रिय थे। वे कानों में कर्णफूल, गले में निष्क, हाथों में कड़े और, छाती पर सुनहले पदक, गले में मणियां पहनते थे। इनके अतिरिक्त ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में माथे का टीका, भुजबन्ध, केयूर, नुपुर, कंकण, मुद्रिका आदि आभूषणों का उल्लेख

मिलता है। आभूषणों का निर्माण करने वालों को स्वर्णकार कहा जाता था। आभूषणों में प्रयुक्त होने वाली सामग्री स्वर्ण, चाँदी, कीमती पत्थर, हाथीदाँत तथा मोती, मूंगें आदि थे।

### 4.3.7 मनोरंजन

ऋग्वेद में मनोरंजन की अनेक विधियों, साधनों तथा प्रणालियों का उल्लेख मिलता है। आमोद - प्रमोद के लिये विभिन्न उत्सवों का आयोजन किया जाता था। संगीत, मनोरंजन का मुख्य साधन था। इसके तीन अंग थे- नृत्य, गायन तथा वाद्य। वाद्यों में वीणा, शंख, मृदंग तथा दुन्दुभि आदि प्रमुख थे। आखेट, घुड़दौड़, मल्लयुद्ध तथा रथों की दौड़ का आयोजन किया जाता था। प्रेम और प्रसन्नता के भाव में आर्य लोग आनन्द से जीवन बिताते थे, परलोक की बहुत अधिक चिन्ता नहीं थी। खुले मैदान में स्त्री और पुरुष बड़े चाव से नाचा करते थे। खास तौर से स्त्रियों को नदियों और तालाबों में नहाने का बहुत शौक था। ऋग्वेद के समय में जैसा उल्लास और सामाजिक स्वातन्त्र था वैसा हिन्दुस्तान में फिर कभी नहीं देखा गया।



### 4.3.8 स्त्रियों का पद तथा दशा

सामाजिक परम्पराओं की मान्यतानुसार स्त्रियों का पद बहुत ऊँचा था। समाज के मानसिक तथा धार्मिक नेतृत्व में स्त्रियों का पर्याप्त सहयोग रहता था। पर्दे की प्रथा नहीं थी। शिक्षा के द्वार स्त्रियों के लिये भी खुले हुए थे। धार्मिक साहित्य में रूचि रखने वाली स्त्रियों को अपनी प्रवृत्ति के पालन में कोई रोक टोक नहीं थी। कई ऋषि स्त्रियों की रचनाएं ऋग्वेद संहिता में हैं। साहस और वीरता में स्त्रियाँ काफी आगे थीं उदाहरणार्थ विष्पला नामक स्त्री लड़ाई में गई थी तथा वह घायल हो गई तो अश्विनो ने उसकी चिकित्सा की थी। प्रत्येक माता पिता की अभिलाषा पुत्री की अपेक्षा पुत्र प्राप्त करने की होती थी। पुत्र अपने पिता के कार्यों में सहायक होता था तथा जन-धन की रक्षा के साथ पूर्वजों का तर्पण करता था। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पुत्री हेय तथा घृणा की वस्तु थी। ऋग्वेद के अनेक स्थानों पर पुत्र तथा पुत्रियों की दीर्घायु के लिये कामना करने का वर्णन मिलता है। पुत्र के अभाव में पुत्री को ही पुत्र सदृश्य माना जाता था। क्योंकि बाल विवाह की प्रथा नहीं थी अतः विवाह होने से पहले कन्याओं को शिक्षा प्राप्त करने का समय मिल जाता था। गृहकार्य, कताई, बुनाई, नाना प्रकार के व्यंजन बनाने की शिक्षा, नृत्य, गायन, संगीत, वाद्य, वृन्दादि स्त्री शिक्षा के प्रमुख अंग थे। कन्याओं को वैदिक शिक्षा दी जाती थी। पुत्री का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। ऋग्वेद में लोपामुद्रा, घोषा, विश्ववारा जैसी पारंगत तथ विदुषी स्त्रियों का उल्लेख किया गया है। स्त्रियों को यज्ञ करने का भी अधिकार था।

### 4.3.9 विवाह

लौकिक तथा परलौकिक शान्ति के लिये पुत्रों की कामना की जाती थी। यज्ञादि के अवसरों पर सपत्नीक उपस्थिति आवश्यक थी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विवाह आवश्यक था। विवाह व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का प्रमुख अंग था। वर की ओर से बारात वधू के घर जाती थी ताकि वहां पर सामूहिक भोज के पश्चात् यज्ञाग्नि के चारों ओर परिक्रमा करके वर-वधू का विवाह होता था। इसके पश्चात् दोनों दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते थे। यह गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने का अनुष्ठान भी माना जाता था। विवाह होने से पहले वर-वधू के गुण-दोषों को आंक लिया जाता था। विवाह के उपरान्त स्त्री-पति के नियन्त्रण में रहती थी।

### 4.3.10 प्रेम विवाह

विवाह के मामलों में स्त्रियों को बड़ी स्वतन्त्रता थी। यौवनावस्था में स्त्री-पुरुष परस्पर मिलाजुला करते थे। अपनी रूचि के अनुसार प्रेम किया करते थे तथा प्रेम के कारण विवाह कर लिया करते थे। युवक युवतियों छिप कर मिलने का प्रयत्न करते थे। एक स्थान पर युवक द्वारा मन्त्र का प्रयोग करके अपनी प्रेमिका के घर वालों को सुलाने का वर्णन मिलता है।

### 4.3.11 बाल विवाह

प्रेमविवाह तथा विवाह प्रणाली के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालविवाह की प्रथा नहीं थी। ऋग्वेद में कहीं पर भी बालविवाह का प्रत्यक्ष या परोक्ष उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत ऋग्वेद में कहा गया है कि घोषा नामक स्त्री प्रौढावस्था तक अविवाहित रही थी। अनेक स्त्रियाँ ऐसी भी थीं जो विवाह नहीं करती थीं। एक ऐसी स्त्री का उल्लेख है जो अपने माँ बाप के घर पर ही अविवाहित होते हुए वृद्धा होती जा रही थी।

### 4.3.12 बहुविवाह

कुछ गिने-चुने तथा समर्थ पुरुष ही बहुविवाह करते थे। आर्थिक कारणों तथा साधारण कौटुम्बिक सुख के कारणों से बहुविवाह करना जीवन को दुखमय बनाना था। ऋग्वेद में कहा गया है कि अनेक महापुरुष बहुविवाह करके घरेलू चिन्ताओं तथा पारिवारिक मनमुटाव के कारण बेहद परेशान रहते थे।

### 4.3.13 विधवा विवाह

ऋग्वेद में विधवा विवाह का निषेध नहीं है। ऋग्वेद की एक ऋचा में उस स्त्री से जो अपने पति के शव के साथ लेटी हुई है, कहा गया है- “स्त्री, उठो! तुम उसके पास लेटी हो जिसकी इहलीला

समाप्त हो गयी है। अपने पति से दूर हट कर जीवितों के संसार में आओ और उसकी पत्नी बनो जो तुम्हारा हाथ पकड़ता है और तुमसे विवाह करने को इच्छुक है। इस आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित थी।

#### 4.3.14 उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक जीवन

यह युग सामाजिक जीवन के उत्तरोत्तर विकास का युग था। इस बात के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं कि अब सामाजिक जीवन स्थिरता प्राप्त करने लगा था। कौटुम्बिक जीवन लगभग ऋग्वेदकाल के समान था। पितृसत्तात्मक परिवार का कर्ताधर्ता, पालक तथा स्वामी, पिता था। परिवार का प्रमुख होने के कारण सभी सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते थे तथा उसमें निष्ठा रखते थे। परिवार का प्रधान होने के नाते पिता ग्रामपरिषद तथा पंचायत में परिवार का प्रतिनिधित्व करता था। माता का भी बहुत आदर था। पैतृक सम्पत्ति संयुक्त परिवार की निधि होती थी तथा इसकी बढ़ोत्तरी के लिये परिवार के सदस्य संयुक्त प्रयास करते थे। अपने जीवनकाल में ही पिता अपने पुत्रों के मध्य सम्पत्ति का विभाजन कर देता था। पिता को पुत्रों से विशेष प्रेम होता था। प्रमाणों से पता चलता है कि पुत्र के दुष्चरित्र तथा व्यसनी होने पर पिता द्वारा दण्ड दिया जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार विश्वामित्र ने अपने परिवार के पचास सदस्यों को आज्ञापालन न करने के कारण दण्डकारण्य बन में निर्वासित कर दिया था। ऋग्वेद में उल्लेख है कि एक पुत्र की आंखें उसके पिता ने फोड़ दी थीं क्योंकि वह द्यूत का व्यसनी था। परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में साथ-साथ रहते थे पर सम्मिलित परिवार में अब कलह का डर रहने लगा था। कलह के कारण कई स्त्रियाँ ससुराल छोड़ कर मायके जाने लगी थीं। इस युग में कुटुम्ब के जीवन में विघटन की प्रक्रिया का संकेत भ्रातृव्य शब्द के अर्थ परिवर्तन से मिलता है। भ्रातृव्य का अर्थ चचेरा भाई है। अथर्ववेद में उसे बान्धव माना गया है। भ्रातृव्य के शत्रु बनने का कारण संयुक्त परिवार में सम्पत्ति के विभाजन से जुड़ा हुआ था। पति-पत्नी के सम्बन्ध बड़े सुखद थे। अनेक मन्त्रों में इनके प्रेम के बड़े सुन्दर वर्णन मिलते हैं। ऋग्वेद के अनुसार पत्नी घर की देखभाल करती थी।

#### 4.4 सामाजिक प्रतिरूप

वैदिक काल के सामाजिक प्रतिरूप का अध्ययन महत्वपूर्ण है, इसकी जानकारी के उपरांत आप ऋग्वेदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल में आर्यों की सामाजिक व्यवस्था के विविध प्रतिरूपों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं-

#### 4.4.1 ऋग्वैदिक काल

व्यक्ति का परिचय उसके गोत्र से था और उसकी प्राथमिक वफादारी अपने 'जन' या कबीले के प्रति थी। 'जनपद' शब्द जिसका तात्पर्य क्षेत्र से है, ऋग्वेद में नहीं मिलता है, कबीले के लिए प्रयुक्त दूसरा शब्द 'विश्व' है जो ग्राम नामक छोटी इकाइयों में विभक्त होता था, ये गाँव जब आपस में लड़ते थे तो संग्राम हो जाता था।

कुल शब्द जिसका अर्थ परिवार से है ऋग्वेद में बहुत कम आया है। अन्य हिन्द-यूरोपीय भाषाओं में यह भतीजे, भांजे, पोते, चचेरे-भाई, ममेरे-भाई जैसे अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद से पता चलता है कि पितृसत्तात्मक सम्मिलित परिवार व्यवस्था प्रचलित थी। पुत्री की अपेक्षा पुत्र के जन्म को अधिक चाहा गया है हॉलांकि अधिक सन्तान और पशुधन की निरन्तर कामना की गयी है। विवाह-संस्था की स्थापना हो गयी थी यद्यपि आदिम प्रथाओं के प्रतीक बचे हुए थे। यम और यमी का उदाहरण महत्वपूर्ण हैं मरुतों और रोदसी के उदाहरण से बहुपतित्व की जानकारी होती है। हॉलांकि इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम हैं। ऋग्वेद में नियोग और विधवा-विवाह की जानकारी मिलती है, बाल-विवाह का अस्तित्व नहीं था। वर्ण के आधार पर समाज का वर्गीकरण था। दास और दृष्युओं से जो कि अनार्य थे, दासों की भांति व्यवहार किया गया है। कबीलाई मुखिया और पुरोहित सम्पन्न वर्ग थे। कबीलाई समाज ईरान की भांति ही योद्धा, पुरोहित और सामान्य जन में विभाजित था, शूद्र ऋग्वेद के अन्तिम चरण में दिखाई देते हैं। व्यवसाय पर आधारित वर्गीकरण प्रारंभ हुआ दिखाई देता है- मैं कवि हूँ, मेरा पिता वैद्य है और मेरी माँ चक्की पीसती है।

#### 4.4.2 उत्तर वैदिक काल

चार वर्णों का स्पष्ट अस्तित्व, ब्राह्मणों की शक्ति में वृद्धि मिलती है, ये प्रारंभ में 16 पुरोहित वर्ग में से एक थे। शूद्रों पर नियोग्यताओं का थोपा जाना प्रारंभ हुआ, हॉलांकि अभी वे अनेक धार्मिक उत्सवों में भाग लेते थे। रथकारों का विशेष दर्जा था और उन्हें शूद्र होने के बावजूद भी जनेऊ धारण करने का अधिकार था। दशराज्ञ-युद्ध के फलस्वरूप आर्यों एवं अनार्यों में मेलजोल बढ़ा, अतः इस काल में हमें जाति-समिश्रण के अत्यधिक उदाहरण मिलते हैं। वेदों के सम्पादक वेद व्यास स्वयं आर्य मुनि और मछुआरिन की सन्तान थे। उत्तर-वैदिक काल में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के बीच श्रेष्ठता के लिए संघर्ष की झलक भी हमें दिखाई देती है।

पिता की शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हुई, वह पुत्र को उत्तराधिकार से बेदखल भी कर सकता था। कुछ अपवादों के बावजूद सामान्यतः स्त्रियों की दशा गिरी। गोत्र-व्यवस्था स्थापित हुई और गोत्र-बहिर्विवाह की प्रथा शुरू हुई। चार आश्रमों की जानकारी मिलती है, हॉलांकि चौथे आश्रम सन्यास की अभी स्पष्ट रूप से स्थापना नहीं हुई थी। इस काल के साहित्य में नियोग-प्रथा का उल्लेख

मिलता है। एक विवाह सामान्य प्रथा थी। खाली समय का प्रयोग गायन, वादन, नृत्य तथा चौपड़ के खेल में व्यतीत किया जाता था। सामवेद से संगीत का जन्म माना जाता है, यह आर्यों के विकसित ध्वनि-ज्ञान का परिचायक है। शिक्षा केवल उच्च वर्णों तक सीमित थी। निश्चित न्यायाधिकरण के दर्शन नहीं होते हैं। हत्या के अपराध में दाम चुकाकर मुक्ति पायी जा सकती थी। भूमि और उत्तराधिकार से सम्बन्धित झगड़ों का अस्तित्व मिलता है।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. ऋग्वेदिक काल में परिवार की सम्पन्नता का मापदण्ड परिवार का वृहद् होना था।
2. ऋग्वेद में कहीं पर भी बालविवाह का प्रत्यक्ष या परोक्ष उल्लेख नहीं है।
3. ऋग्वेदिक काल में स्त्री तथा पुरुष समान रूप से आभूषण प्रिय थे।
4. ऋग्वेदिक काल में स्त्रियों को यज्ञ करने का भी अधिकार था।
5. घोषा नामक स्त्री प्रौढावस्था तक अविवाहित रही थी।
6. उत्तर-वैदिक काल में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के बीच श्रेष्ठता के लिए संघर्ष की झलक भी हमें दिखाई देती है।
7. वेदों के सम्पादक वेद व्यास स्वयं आर्य मुनि और मछुआरिन की सन्तान थे।

## 4.5 वैदिक कालीन आर्थिक जीवन

वैदिक काल के प्रारम्भिक समय में आर्य अधिकतर गांवों में फैले थे। वेद मन्त्रों में नगर शब्द नहीं है। निःसन्देह पुरों का उल्लेख मिलता है, जो कभी-कभी बड़े आकार के होते थे और कभी पत्थर के बने (अश्ममयी) और लोहे के बने (आयसी) होते थे। गांव वालों की प्रधान जीविका खेती थी। गांवों में घर और खेती की भूमि व्यक्तियों और परिवारों के द्वारा अधिकृत मालूम पड़ती है, जब कि घास का मैदान (खिल्य) सम्भवतः जनसाधारण के अधिकार में होता था। कृषिकला का महत्व कृष्टि या चर्षणि (खेतिहर) नाम से व्यक्त होत है। यह नाम साधारण रूप से जनता के लिए और विशेष रूप से पांच प्रधान जनों के लिए जिनमें प्रारम्भिक वैदिक काल के लोग बंटे थे, लागू होता है। जुते हुए खेत उर्वरा या क्षेत्र कहे जाते थे। ये बहुधा नहरों से सींचे जाते थे, खाद का उपयोग भी ज्ञात था। भूमि में उत्पन्न अन्न धान या यव 'कहा जाता था। किन्तु इन नामों की ठीक-ठीक विशेषता प्राचीनतम साहित्य से नहीं लगती है। पकने पर वे हंसुए से काटे जाते थे, बोझों में बंधे रहते थे और खलिहान की भूमि में झाड़े जाते थे। उसके बाद चक्की में पीसे जाते थे और तब उनसे रोटी (अपूप) बनती थी।

कृषि के साथ ही पशुपालन का भी अत्यधिक महत्व था। गाय का अत्यधिक आदर था। दूध वैदिक घरों में भोजन का एक प्रधान अंग था। गोप प्रतिदिन पशुओं के झुण्डों को चरागाह में ले जाते थे। यमुना की तराई गोधन के लिए विशेष प्रसिद्ध थी। काम में आने वाले अन्य पशु, बैल, घोड़ा, कुत्ता, बकरी और भेड़ थे, गान्धार देश की भेड़ ऊन के लिए प्रसिद्ध थीं।

यद्यपि वैदिक जातियां खेतिहर और चरवाहा थीं, फिर भी वे व्यापार और उद्योग-धन्धों के प्रति उदासीन नहीं थीं। व्यापार अधिकतर पणि नामक लोगों के हाथ में था जो शायद अनार्य थे और जिनकी कृपणता कहावत सी हो गयी थी। लेकिन उन्हीं में बृबु जैसे दानी व्यापारियों के उल्लेख भी मिलते हैं। संभवतः व्यापार प्रधान रूप से वस्तु-विनिमय के द्वारा होता था। बाद की संहिताओं से पता चलता है कि व्यापार की मुख्य वस्तुएँ कपड़े, तोशक, चादर और चमड़े थीं। गाय मूल्य की प्रामाणिक इकाई थी। प्रारम्भिक काल के निष्क में प्रचलित सिक्के के सब गुण थे या नहीं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है।

स्थल द्वारा यातायात के प्रधान साधन रथ और गाड़ी थे। रथ सामान्यतः घोड़ों से और गाड़ी बैलों से खींची जाती थी। पथिकृत उपाधि अग्नि देवता की थी इससे स्पष्ट है कि जंगलों को जलाने के लिए अग्नि की सहायता ली जाती थी। ये जंगल, जंगली जानवरों और डाकुओं (तस्कर, स्तेन) से भरे रहते थे।

ऋग्वैदिक काल में समुद्र में जहाज संचालन प्रचलित था या नहीं, यह प्रश्न बहुत ही विवादग्रस्त है। कुछ विद्वानों के अनुसार नौ यात्रा, नावों के द्वारा नदियों के पार करने तक ही सीमित थी। परन्तु सौ पतवार वाले जहाज से यात्रा करने वाले यात्रियों के भी निश्चित उल्लेख हैं भुज्यु के जहाज डूबने की कहानी में समुद्र का वर्णन है “जो सहारा या आधार या ठहरने का स्थान नहीं होता है” कुछ विद्वानों के अनुसार उस समय समुद्र का अर्थ सिन्धु की निचली धारा समझा जाता था। कुछ अन्य विद्वान इस कहानी को दन्त कथा समझते हैं जो पथिकों से इकट्ठी की गई थी। किन्तु “समुद्र के कोषों” के उल्लेख से समुद्र का परिचय संभव मालूम होता है। यदि वैदिक ‘मना’ की एकरूपता बेबीलोन के मनः से ठीक है तो समुद्रों से दूर देशों और वैदिक भारत के बीच के पूर्वकालिक आवागमन के निश्चित प्रमाण है।

ऋग्वैदिक काल के उद्योग धन्धों में लकड़हारे, धातु संबंधी काम करने वाले, चमड़ा कमाने वाले, जुलाहे और कुंभकार के उद्योग विशेष उल्लेखनीय हैं। बढई केवल रथों, गाड़ियों, घरों और नावों का ही निर्माण नहीं करते थे, बल्कि वे अपनी कला कुशलता का परिचय सुन्दर ढंग के प्यालों के बनाने में भी देते थे। धातु सम्बन्धी कार्यकर्ता विभिन्न हथियार एवं आभूषण बनाते थे। चमड़े के काम करने वाले पानी के पीपे, धनुष की डोरी, ढेलवास ओर हस्त-रक्षक (ढाल) का निर्माण करते थे।

उत्तर वैदिक काल में लोग जिनमें धनवान् व्यक्ति (इभ्य) भी सम्मिलित थे, अभी तक अधिकतर गांवों में ही रहते थे। परंतु नागरिक जीवन की सुविधाएं अज्ञात नहीं थीं। कुछ गांवों में जमींदार वर्ग के लोग छोटे-छोटे किसान मालिकों को हटाकर पूरे गांवों के मालिक बनते जा रहे थे। फिर भी इस काल में भूमि हस्तान्तरित करने के काम को सार्वजनिक स्वीकृति नहीं मिलती थी और भूमि विभाजन केवल सजात्य लोगों की अनुमति से ही किया जा सकता था। प्रधान पेशों में अभी भी कृषि थी, परन्तु कृषि के औजारों में पर्याप्त उन्नति हुई थी। भूमि में नये प्रकार के फल व अन्न उपजाये जाने लगे थे। किन्तु कृषक कठिनाइयों से मुक्त नहीं थे। एक उपनिषद में ओले के साथ आंधी-पानी, तुषारपात और टिड्डी-दल का वर्णन आता है, जिसने एक देश को बहुत हानि पहुंचायी और बहुत लोगों को देश त्याग के लिए विवश किया।

व्यापार और उद्योग-धन्धों की उन्नति हुई। खानदानी व्यापारियों (वणिज) का एक वर्ग बन गया। पर्वतवासी किरातों के साथ स्थलीय व्यापार था, जो पर्वतों से खोदकर लायी हुई जडी बूटियों के कपडों, चटाइयों और चमडों से बदलते थे। समुद्र से लोग खूब परिचित थे। शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित प्रलय की कहानी में कुछ विद्वान बेबीलोन के साथ संबध का प्रमाण पाते हैं। निष्क, शतमान और कृष्णल जैसे मूल्य की सुविधाजनक इकाइयों से व्यवसाय की उन्नति हुई। लेकिन यह सन्देहास्पद है कि मूल्य की इन इकाइयों में नियमित सिक्कों के सब गुण मौजूद थे। वणिक् संगठित थे जैसा कि श्रेष्ठिन् के उल्लेखों से मालूम पडता है।

उद्योग धन्धों सम्बन्धी वृत्तियों के भेद महत्वपूर्ण है। विशेषज्ञता अहुत आगे बढ़ चुकी थी। रथ बनाने वाला बढई से, धनुष बनाने वाला धनुष की डोरी और तीर बनाने वालों से और चमड़े का काम करने वाला हड्डी सजाने वाले से अलग पहचाना जाता था। स्त्रियां औद्योगिक जीवन में भाग लेती थीं। वे कसीदावाली पोशाक बनाने का काम, कांटों का काम, रंगने का काम आदि करती थीं।

## 4.5 आर्थिक प्रतिरूप

वैदिक काल के सामाजिक प्रतिरूप की भांति ही आर्थिक प्रतिरूप का अध्ययन महत्वपूर्ण है, इसकी जानकारी के उपरांत आप ऋग्वेदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल में आर्यों की आर्थिक व्यवस्था के विविध प्रतिरूपों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं-

### 4.5.1 ऋग्वैदिक कालीन आर्थिक प्रतिरूप

आर्यों को भारत आने से पहले ही कृषि का ज्ञान था, ऋग्वेद में बुआई, कटाई, मड़ाई का उल्लेख मिलता है। उन्हें विभिन्न मौसमों या ऋतुओं का ज्ञान था। जौ प्रमुख खाद्यान्न था। 'गाय' के अनेक उल्लेख बताते हैं कि चरवाहा कबीला था। गायों के लिए युद्ध होते थे, 'गविष्टि' जो गायों की

खोज अर्थ रखता है, बाद में युद्ध के लिए प्रयुक्त होने लगा। उपहार गायों या दासों के रूप में दिये जाने के उल्लेख है। जमीन में भूमि अधिकार मान्य था। बढई, जुलाहा, चमडा कमाने वाले, कुंभकार के उल्लेख मिलते हैं। 'अयस' (तांबा या कांसा) शब्द से धातुकार की उपस्थिति भी ज्ञात होती है। व्यापार मुख्यतः 'पणि' या अनार्य व्यापारियों के हाथ में था, जिनसे आर्य ईर्ष्या करते थे। प्रमुखतः गाय मूल्य की इकाई थी और वस्तु विनिमय प्रणाली प्रचलित थी।

#### 4.5.2 उत्तर-वैदिक कालीन आर्थिक प्रतिरूप

1000 ई0पू0 से गांधार, बलूचिस्तान, पूर्वी पंजाब, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और राजस्थान में लोहे का प्रयोग होने लगा। लोहा, श्याम या कृष्ण अयस कहा जाता था। समाज पशुचारक से कृषक हो गया। 24 बैलों वाले हल, कृषि-कर्म की बढ़ोत्तरी बताता है। जनक द्वारा हल चलाने तथा बलराम को हलधर बताने वाले उल्लेख कृषि कर्म को प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं। हल संभवतः लकड़ी के होते थे। आर्यों को उर्वरक तथा सिंचाई का ज्ञान था। जौ उत्पन्न होता था परन्तु गेहूं और चावल प्रमुख खाद्यान्न थे। चार प्रकार के मृणभाण्ड-लाल, काले, काले और लाल तथा धूसर-प्रयुक्त होते थे। धूसर मृणभाण्ड की 315 बस्तियों से स्थाई जीवन के प्रमाण मिलते हैं। नगर शब्द का उल्लेख है, संभवतः हस्तिनापुर और कौशाम्बी प्राक्-नगर थे। समुद्र और समुद्री यात्राओं का उल्लेख मिलता है। वैश्यों ने व्यापार को अपनाया तथा भूमिधर बन गये। शूद्र जो अधिकतर अनार्य थे उन्होंने कृषि-कर्म अपनाया। सोना, कांसा और तांबे के अतिरिक्त इस काल में टिन, लेड, चांदी और लोहे का उल्लेख मिलता है। विभिन्न प्रकार के घरेलू नौकर तथा प्रारम्भिक प्रकार की औद्योगिक संरचना मिलती है, जिसमें नट, भविष्य-वक्ता, बांसुरी-वादक, नृत्यक के पेशों का उल्लेख मिलता है। वस्तु-विनिमय की प्रणाली विद्यमान थी, सिक्के संभवतः इस काल के अन्त में 6वीं शती ईसा-पूर्व से ही प्रचलित हुए।

#### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. वैदिक काल के प्रारम्भिक समय में आर्य अधिकतर नगरों में फैले थे।
2. आर्यों को भारत आने से पहले ही कृषि का ज्ञान नहीं था।
3. वैदिक काल में उपहार हाथी के रूप में दिये जाने के उल्लेख है।

#### 4.6 सारांश

आर्य समाज पितृसत्तात्मक था, पिता की सम्पत्ति पर पुत्री का अधिकार नहीं था। संयुक्त परिवार प्रणाली होने से उत्तरदायित्व भी समान तथा सामूहिक था। परिवार के सम्मान, पारिवारिक

परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा मान्यताओं के पालन में समस्त कुटुम्ब तत्पर रहता था। इसके अतिरिक्त कौटुम्बिक प्रेम तथा पारस्परिक सद्भावना एवं सहानुभूति ने पारिवारिक जीवन को सुख समृद्धता प्रदान की थी। पत्नी अपने पति के साथ धार्मिक अनुष्ठानों में प्रमुख भाग लेती थी। उत्तर वैदिक काल में चार वर्णों का स्पष्ट अस्तित्व, ब्राहमणों की शक्ति में वृद्धि मिलती है, ये प्रारंभ में 16 पुरोहित वर्ग में से एक थे। इसी काल से शूद्रों पर नियोग्यताओं का थोपा जाना प्रारंभ हुआ, कृषि के साथ ही पशुपालन का भी अत्यधिक महत्व था। गाय का अत्यधिक आदर था। दूध वैदिक घरों में भोजन का एक प्रधान अंग था। गोप प्रतिदिन पशुओं के झुण्डों को चरागाह में ले जाते थे। यमुना की तराई गोधन के लिए विशेष प्रसिद्ध थी। काम में आने वाले अन्य पशु, बैल, घोड़ा, कुत्ता, बकरी और भेड़ थे, गान्धार देश की भेड़ ऊन के लिए प्रसिद्ध थीं। स्थल द्वारा यातायात के प्रधान साधन रथ और गाड़ी थे। रथ सामान्यतः घोड़ों से और गाड़ी बैलों से खींची जाती थी। पथिकृत (पथ का निर्माता) उपाधि अग्नि देवता की थी इससे स्पष्ट है कि जंगलों को जलाने के लिए अग्नि की सहायता ली जाती थी। ये जंगल, जंगली जानवरों और डाकुओं (तस्कर, स्तेन) से भरे रहते थे। उद्योग धन्धे का सम्बन्धी वृत्तियों के भेद महत्वपूर्ण है। विशेषज्ञता अहुत आगे बढ़ चुकी थी। रथ बनाने वाला बढई से, धनुष बनाने वाला धनुष की डोरी और तीर बनाने वालों से और चमड़े का काम करने वाला हड्डी सजाने वाले से अलग पहचाना जाता था। स्त्रियां औद्योगिक जीवन में भाग लेती थीं। वे कसीदावाली पोशाक बनाने का काम, कांटों का काम, रंगने का काम आदि करती थीं। निष्क, शतमान और कृष्णल जैसे मूल्य की सुविधाजनक इकाइयों से व्यवसाय की उन्नति हुई। लेकिन यह सन्देहास्पद है कि मूल्य की इन इकाइयों में नियमित सिक्कों के सब गुण मौजूद थे। वणिक् संगठित थे जैसा कि श्रेष्ठिन् के उल्लेखों से मालूम पड़ता है।

#### 4.7 तकनीकी शब्दावली

गृहपति /कुलाप -घर अथवा कुल का मुखिया

लौकिक - इस लोक से संबंधित

इहलीला- इस लोक का जीवन,कर्म इत्यादि

पितृसत्तात्मक - जिस परिवार में शक्ति एवं सत्ता पिता के पास होती है

पथिकृत- पथ का निर्माता

#### 4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 4.4.2 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- सत्य

इकाई 4.4.2 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- सत्य

इकाई 4.4.2 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य

इकाई 4.4.2 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- सत्य

- 
- इकाई 4.4.2 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर- सत्य  
इकाई 4.4.2 के प्रश्न संख्या 6 का उत्तर- सत्य  
इकाई 4.4.2 के प्रश्न संख्या 7 का उत्तर- सत्य  
इकाई 4.5.2के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य  
इकाई 4.5.2के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य  
इकाई 4.5.2 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- असत्य
- 

## 4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

- 1.रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010
  - 2.वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005
  - 3.ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद, 1984
  - 4.ए.एल.बाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972
- 

## 4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

- Altekar,A.S: The Position of Women in Hindu Civilization, Motilal Banarsidas,Delhi,1965.
- Chattopadhyaya,K.C.: Studies in Vedic and Indo-Iranian Literature,Vol.-2,Bhartiya Vidya Bhawan,Varanasi,1978.
- Dange,S.A.: Cultural Sources from the Vedas, Bhartiya Vidya Bhawan,Bombay,1977.
- Ghurye,G.S.:Vedic India,Popular Prakashan, Bombat,1979.
- Sharma,R.S: Material Culture and Social Formation in Ancient India, Macmillan,Delhi,1983
- Tripathi,Vibha : The Painted Grey Ware: an Iron Culture of Northern India, Concept Publishing, Delhi,1976.
- 

## 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. वैदिककालीन समाज व्यवस्था पर एक सारगर्भित निबंध लिखिए।
  2. वैदिक कालीन अर्थव्यवस्था के विषय में आपकी क्या जानकारी है? ऋग्वेदिक काल से उत्तर वैदिक में अर्थव्यवस्था में आये परिवर्तनों को रेखांकित कीजिए।
-

## इकाई एक : इतिहास की परिभाषा, क्षेत्र तथा महत्व

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 इतिहास की परिभाषा
  - 1.3.1 इतिहास कहानी है
  - 1.3.2 इतिहास ज्ञान है
  - 1.3.3 इतिहास सामाजिक विज्ञान है
  - 1.3.4 इतिहास विचारधारा का इतिहास है
  - 1.3.5 इतिहास समसामयिक इतिहास है
  - 1.3.6 भूत और वर्तमान की कड़ी है
- 1.4 इतिहास का क्षेत्र
  - 1.4.1 राजनीतिक इतिहास
  - 1.4.2 सामाजिक इतिहास
  - 1.4.3 सांस्कृतिक इतिहास
  - 1.4.4 धार्मिक इतिहास
  - 1.4.5 आर्थिक इतिहास
  - 1.4.6 संवैधानिक इतिहास
  - 1.4.7 राजनयिक इतिहास
  - 1.4.8 औपनिवेशिक इतिहास
  - 1.4.9 संसदीय इतिहास
  - 1.4.10 कॉमनवेल्थ का इतिहास
  - 1.4.11 सैन्य इतिहास
  - 1.4.12 क्षेत्रीय इतिहास
  - 1.4.13 सार्क देशों का इतिहास
  - 1.4.14 इतिहास - दर्शन
  - 1.4.15 विश्व इतिहास
- 1.5 इतिहास का महत्व
- 1.6 सारांश
- 1.7 तकनीकी शब्दावली
- 1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

अतीत का अध्ययन इतिहास हैं। इतिहास में अतीत की घटनाओं का कालक्रमानुसार अध्ययन किया जाता है। पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के माध्यम से इतिहास मानव की कला, संस्कृति एवं सभ्यता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामने लाता है। इतिहास का ज्ञान मनुष्य को शिक्षा देता है कि, अतीत की घटनाओं से सबक ले। इतिहास का अध्ययन मनुष्य और उससे संबंधित घटनाएँ होती है।

मनुष्य के सुरक्षित भविष्य के लिए अतीत की गलतियाँ और वर्तमान की चुनौतियों का विश्लेषण बहुत जरूरी है। इतिहास यह बताता है कि, मनुष्य ने किस प्रकार और किन चुनौतियों का सामना करके वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया है और कैसे सुरक्षित भविष्य का निर्माण किया जा सकता है।

इस इकाई में आपको इतिहास की परिभाषा के साथ ही, इतिहास का अर्थ एवं इतिहास किसे कहते है की जानकारी प्राप्त होगी। इसके साथ ही, इस इकाई में आपको इतिहास के क्षेत्रों के बारे में व्यापक एवं उपयोगी जानकारी प्राप्त होगी। इस इकाई में आपको इतिहास का मनुष्य के जीवन में उपयोगिता तथा इतिहास की देश के लिए उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त होगा।

## 1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी इतिहास की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. विद्यार्थी इतिहास की परिभाषा को जान सकेंगे।
3. विद्यार्थी इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता को समझेंगे।
4. विद्यार्थी इतिहास के क्षेत्रों को जान सकेंगे।
5. विद्यार्थी इतिहास के महत्व को समझ सकेंगे।
6. विद्यार्थी जीवन में इतिहास की उपादेयता को जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी देश के लिए इतिहास की उपादेयता को समझ सकेंगे।
8. विद्यार्थी इतिहास की शिक्षा के द्वारा राजनैतिक जागृति के उदय को समझ सकेंगे।

## 1.3 इतिहास की परिभाषा

इतिहास अतीत का अध्ययन है, जिसका केन्द्र बिन्दु मनुष्य होता है। मनुष्य और उससे संबंधित समस्त घटनाएँ इतिहास अध्ययन का विषय होती हैं। इतिहास का ज्ञान की शाखा के रूप में उद्भव यूनान में हुआ था। इतिहास अंग्रेजी भाषा के 'हिस्ट्री' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। जैसे, इतिहास, 'इति - ह - आस' शब्दों के सम्मिलन से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ, 'निश्चित' रूप से ऐसा ही हुआ है। 'हिस्ट्री' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यूनान के 'हिरोडोटस' (480 - 430 ई. पू.) ने किया था और इसीलिए 'हिरोडोटस' को 'इतिहास का जनक' कहा जाता है।

इतिहास की परिभाषा, इतिहास के मूल स्वरूपों, या मूल तत्वों को सरल और सुगम रूप में प्रगट करती है। इससे इतिहास को जानने और पहचानने में सहायता मिलती है। इतिहास को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है, जो निम्नानुसार हैं -

### 1.3.1 इतिहास कहानी है

विद्वानों का एक वर्ग, इतिहास को कहानी मानता है, इनमें जी. एम. ट्रेविलियन, हेनरी पिरन, रेनियर, हुइजिंगा, एफ. एस. ओलिवर आदि प्रमुख हैं। विद्वानों के सम्मिलित विचारों को सारांशतः कहा जा सकता है कि, विद्वानों ने सभ्य समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों की उपलब्धियों और कार्यों को कहानी का इतिहास माना है। विद्वानों की स्पष्ट धारणा की सभ्य समाज के नेतृत्वकारी पुरुष के जीवन और उससे संबंधित घटनाओं को बिना किसी लाग - लपेट के कहानी स्वरूप में प्रस्तुत करना चाहिए। नेतृत्वकारी मनुष्य (मनुष्यों) का जीवन वृत्तांत नैतिक रूप से उच्च हो, जो समाज और देश के लिए अनुकरणीय भी हो, की कहानी इतिहास है तथा यह कहानी स्मरण करने लायक भी हो।

### 1.3.2 इतिहास ज्ञान है

विद्वानों का एक वर्ग, इतिहास को 'ज्ञान' का एक विषय मानता है। इनमें चार्ल्स फर्थ, डिल्थे, क्रोचे, कॉलिंगवुड आदि प्रमुख हैं। इन विद्वानों के मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि, इतिहास ज्ञान है, जो मनुष्य को सद्मार्ग दिखाता है और गलत रास्ते पर चलने से रोकता है। एक प्रकार से सही और गलत की शिक्षा का ज्ञान इतिहास प्रदान करता है। इतिहास अपने मूलरूप में यह बताता है कि, अमुक वस्तु सही है और अमुक सही नहीं है। ज्ञान की शाखा के रूप में इतिहास उचित और अनुचित की पहचान का रास्ता बताकर मनुष्य के दैनिक जीवन को उपयोगी ज्ञान प्रदान करता है। इतिहास अतीत की घटनाओं का ज्ञानप्रद उदाहरण प्रस्तुत करके मनुष्य को उसके कारणों और परिणामों के बारे में बताता है, जिससे मनुष्य उस प्रकार की घटनाओं से सीख लेकर गलतियों को

दोहराने का दुस्साहस नहीं करता है। जैसे, द्वितीय विश्वयुद्ध में परमाणु युद्ध विभीषिका की जानकारी देकर, इतिहास भविष्य में परमाणु अस्त्रों के प्रयोग के परिणामों से अवगत कराता है। इसी प्रकार इतिहास रावण, कंश, दुर्योधन, सद्दाम हुसैन, गद्दाफी, हिटलर, के जीवन का ज्ञान देकर यह बताता है कि, जो इनके रास्ते पर चलेगा उसका अंजाम भी वैसा ही होगा, इनका हुआ। इस प्रकार, इतिहास का ज्ञान मनुष्य से संबंधित ज्ञान का आधार है।

### 1.3.3 इतिहास सामाजिक विज्ञान है

इतिहास सामाजिक विज्ञान है, इसके पक्ष में विद्वानों का एक वर्ग सक्षम तर्क प्रस्तुत करते हुए कहता है कि, इतिहास समाज की जननी है और यह समाज का संपूर्ण खाका प्रस्तुत करता है। समाज के आदि से लेकर अंत तक की संपूर्ण घटनाओं के विवरण की जानकारी इतिहास देता है। इसीलिए हेनरी पिरेन ने कहा है कि, इतिहास प्राचीनकालीन मनुष्य के समाज के विकास का विवरण देता है। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश शब्दकोश में इतिहास को सामाजिक विज्ञान मानते हुए कहा है कि, 'इतिहास मानव समाज और राष्ट्र की समस्त घटनाओं का विवरण देता है।' इसी संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान ए. एल.राउज कहते हैं कि, 'भौगोलिक परिस्थिति और भौगोलिक वातावरण मनुष्य और उसके समाज को प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हैं।' अतः इतिहास भौगोलिक परिवेश में समाज में रह रहे लोगों का वृतांत है। इस प्रकार, इतिहास को समाज विज्ञान के रूप में परिभाषित करने वाले विद्वानों का मानना है कि, 'इतिहास समाज विज्ञान है, जिसमें मानव के संपूर्ण एवं सर्वांगीण क्रियाकलापों तथा सांस्कृतिक जनजीवन का उल्लेख होता है।

### 1.3.4 इतिहास विचारधारा का इतिहास है

इतिहास को विचारधारा का इतिहास मानने वाले विद्वानों का मानना है कि, मनुष्य के समस्त क्रियाकलापों एवं कार्य व्यवहार का मूल उत्स एवं उद्गम उसके विचार होते हैं और विचारधारा ही मनुष्य के कार्यों की रूपरेखा बनाती है, जिससे प्रेरित होकर मनुष्य विभिन्न क्रियाओं को साकार रूप प्रदान करते हैं। इस विषय में प्रसिद्ध विद्वान आर. जी. कॉलिंगवुड का स्पष्ट मत है कि, 'सम्पूर्ण इतिहास विचारधारा का इतिहास होता है।' कॉलिंगवुड की यह परिभाषा स्पष्टतः कार्य (क्रिया) को 'साध्य' और 'विचारधारा' को साधन मानती है। इतिहास को विचारधारा का इतिहास मानने वाले विद्वान कहते हैं कि, मनुष्य के कार्य करने से पहले उसके मस्तिष्क में एक स्पष्ट विचार आता है और मनुष्य उस विचार के अनुरूप कार्य करता है। इस मत के विरुद्ध प्रो. वाल्श ने कहा कि, इतिहास विचारधारा प्रधान नहीं होता। क्योंकि अलौकिक अदृश्य दैवीय शक्तियाँ और प्राकृतिक विनाशकारी घटनाएँ मनुष्य के विचार के अनुरूप नहीं होती हैं।

### 1.3.5 इतिहास समसामयिक इतिहास है

इतिहास को समसामयिक इतिहास मानने वाले विद्वानों का मत है कि, इतिहास को समसामयिक आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए लिखा जाता है। इतिहास को समसामयिक इतिहास मानने वाले सर्वश्रेष्ठ पक्षकार क्रोचे का मत है कि, 'सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास होता है।' इतिहासकार वर्तमान में रहकर अपनी वैचारिक धारणा के आधार पर अतीत का विश्लेषण करता है और जब अतीत की घटनाओं का वर्तमान की आवश्यकता के अनुसार इतिहास को पुनः व्याख्या या पुनः विवरण देता है, तो समसामयिक चेतना के गतिशील तत्वों का उसमें समावेश करता है। इसीलिए गोविन्द चन्द पाण्डे ने ठीक ही कहा है कि, 'अतीत उस क्षण वर्तमान हो जाता है, जब हम वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुरूप उसका पुनर्विस्तरण करते हैं।' अतः वर्तमान में सामाजिक आवश्यकताओं और रूचियों को प्रधानता देने के कारण इतिहास, 'समसामयिक इतिहास' बन जाता है।

### 1.3.6 भूत और वर्तमान की कड़ी है

इतिहास को भूत और वर्तमान के बीच की कड़ी मानने वाले विद्वानों का मत है कि, इतिहासकार वर्तमान में रहकर अतीत की व्याख्या करता है, इस प्रकार इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच एक कड़ी और पुल के रूप में कार्य करता है। प्रसिद्ध विद्वान ई. एच. कार ने 'इतिहास को अतीत और वर्तमान के मध्य अनवरत परिसंवाद की संज्ञा दी है।' वस्तु स्थिति तो यह है कि, 'इतिहास काल के तीनों खण्डों भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों के लिए उपादेय होता है, क्योंकि अतीत का इतिहास, वर्तमान में सुरक्षित भविष्य के लिए रचित किया जाता है। जिस प्रकार हमारे ऋषियों, मुनियों और विद्वानों ने चार वेदों, अनेक अरण्यों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत का लेखन अतीत में करके भविष्य के लोगों के मार्गदर्शन के लिए किया। उसी प्रकार इतिहास भी वर्तमान में भविष्य को दिशा - निर्देश देने के लिए लिखा जाता है, अतः इतिहास भूत (अतीत) और वर्तमान के बीच एक कड़ी और पुल (सेतु) के समान है।

#### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) इतिहास का शाब्दिक अर्थ।  
(ख) इतिहास ज्ञान है।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:
  - (I) क्या इतिहास भूत और वर्तमान के बीच की कड़ी है?
  - (II) क्या इतिहास कहानी है? सिद्ध कीजिए।

## 1.4 इतिहास का क्षेत्र

इतिहास के क्षेत्र से तात्पर्य, इतिहास की सीमाओं से है, जिसमें इतिहास से संबंधित अध्ययन की विषय वस्तु समाहित होती है, किन्तु इतिहास के क्षेत्र को सीमाबद्ध करना बहुत कठिन कार्य है। इतिहास क्षेत्र का स्वरूप देश, काल, परिस्थिति और सामाजिक आवश्यकताओं के कारण निरंतर विकसित होकर बढ़ता जा रहा है, अतः इतिहास के क्षेत्र को एक विशिष्ट सीमा में बांधना निश्चित रूप से संभव नहीं है। फिर भी इतिहासकारों ने इतिहास के क्षेत्र को वर्गीकृत करने की कोशिश की है, जो इस प्रकार है-

### 1.4.1 राजनीतिक इतिहास

राजनीतिक इतिहास, इतिहास क्षेत्र का महत्वपूर्ण अंग है। राजनीतिक इतिहास में समाज में विशिष्ट भूमिका निभाने वाले जननायकों एवं समाज को नेतृत्व देने वाले राजनेताओं का विवरण होता है। इन जननायकों का जीवन, कार्य एवं उपलब्धियाँ वर्तमान के लिए प्रेरणा दायक और भविष्य के लिए पथ प्रदर्शनकारी होती हैं। राजनीतिक इतिहास में राजनैतिक जननेताओं के साथ ही, राजनैतिक क्रांतियों, जनक्रांतियों, युद्धों, राजनैतिक घटनाओं आदि का भी इतिहास समाहित होता है। प्रसिद्ध विद्वान ए. एल. राउज 'राजनैतिक इतिहास को इतिहास की रीढ़ मानते हैं।' थ्यूसिडिडीज, गिबन, मैकाले जैसे विद्वानों के लेखन की पृष्ठभूमि 'राजनीतिक इतिहास' रही है। राजनीति इतिहास में अतीत एवं वर्तमान की राजनीतिक घटनाओं का क्रमिक विवरण होता है।

### 1.4.2 सामाजिक इतिहास

सामाजिक इतिहास, इतिहास क्षेत्र का अभिन्न भाग है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज में रहता है और उसकी समस्त क्रियाएँ समाज में संचालित एवं घटित होती हैं। सामाजिक इतिहास में मनुष्य के उद्भव से लेकर उसके क्रमिक विकास का संपूर्ण विवरण होता है, मनुष्य के दैनंदिनी जीवन, खानपान, रहन - सहन, वस्त्राभूषण, परिवार, विवाह, वैवाहिक जीवन एवं संबंध, विभिन्न वर्गों एवं समूहों के मध्य संबंधों का स्वरूप, आर्थिक एवं साँस्कृतिक जीवन, धर्म, संस्कृति, कला, साहित्य आदि सब कुछ समाहित रहता है। सामाजिक इतिहास में सामाजिक संबंधों एवं सामाजिक परिवर्तनों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इतिहास के सबसे बड़े समर्थकों में टेवेलियन प्रमुख थे। टेवेलियन का मत 'समाज को इतिहास की आधारशिला निरूपित करता है।'

### 1.4.3 साँस्कृतिक इतिहास

साँस्कृतिक इतिहास, इतिहास क्षेत्र का अभिन्न अंग है। साँस्कृतिक इतिहास मनुष्य, समाज एवं देश के साँस्कृतिक ताने - बाने का विवरण दिया जाता है। संस्कृति में धर्म, संस्कार, परंपरा, रीति

- रिवाज, कला, साहित्य, शिक्षा आदि सब कुछ समाहित होता है। जैसे भारतीय साँस्कृतिक इतिहास को प्रागैतिहासिक साँस्कृतिक इतिहास, वैदिक कालीन साँस्कृतिक इतिहास, प्राचीन कालीन साँस्कृतिक इतिहास मध्यकालीन साँस्कृतिक इतिहास, आधुनिक कालीन साँस्कृतिक इतिहास में बांट कर अध्ययन किया जा सकता है, जिसमें संबंधित काल के साँस्कृतिक जन - जीवन का क्रमिक कालक्रमानुसार अध्ययन किया जा सकता है।

#### 1.4.4 धार्मिक इतिहास

धार्मिक इतिहास इतिहास क्षेत्र का प्रमुख अंग है। धार्मिक इतिहास में किसी धर्म के उद्भव, विकास, पतन आदि का उल्लेख किया जाता है। धार्मिक इतिहास मनुष्य की भावनाओं को सीधे प्रभावित करता है, अतः इसके लेखन में बड़ी सावधानी रखी जाती है। विश्व के विभिन्न धर्मों हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि का इतिहास समय - समय लिखा गया है। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण, भारतीय धार्मिक इतिहास की प्रमुख विरासत हैं। यूरोप महाद्वीप में 'धार्मिक इतिहास लेखन का स्वर्णकाल' पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार काल को माना जाता है।

#### 1.4.5 आर्थिक इतिहास

आर्थिक इतिहास में किसी समाज, संस्था या राष्ट्र की समस्त आर्थिक गतिविधियों के उद्भव, विकास एवं पतन आदि सभी का उल्लेख होता है। पशुपालन, कृषि, उद्योग, आजीविका के समस्त साधन, व्यापार - वाणिज्य, राजस्व आदि सभी विषयों का अध्ययन किया जाता है, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ से जुड़े हैं। इतिहास क्षेत्र में आर्थिक इतिहास को प्रसिद्धि प्रदान करने वालों में कोदोरसे, काँम्ते, बर्कले, कार्ल मार्क्स की भूमिका उल्लेखनीय रही है। आर० एच० टानी तथा एलीन पावर ने सर्वप्रथम 'आर्थिक इतिहास' लेखन कर उल्लेखनीय कार्य किया। भारतीय इतिहासकारों में रजनी पामदत्त, डी० डी० कोसाम्बी, आर० सी० दत्त, इरफान हबीब आदि ने आर्थिक इतिहास लेखन किया है। आर्थिक इतिहास के बारे में विलियम ऐश्ले कहते हैं कि, 'आर्थिक विचार स्वयंमेव ऐतिहासिक तथ्य होते हैं।'

#### 1.4.6 संवैधानिक इतिहास

संवैधानिक इतिहास के अंतर्गत किसी समाज, संस्था या राष्ट्र के वे कानूनी विधिक रीति - रिवाज (जिन्हें समाज मान्यता देता है) आते हैं, जिनसे समाज, धर्म या राष्ट्र प्रभावित होता है। भारतीय समाज में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, मिताक्षरा, दाय भाग आदि का भारतीय समाज में विधिक महत्व है। ये ग्रंथ जटिल भारतीय रीति - रिवाजों एवं प्रथाओं से संबंधित समस्याओं के निराकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पी. वी. काणे का 'धर्मशास्त्र का इतिहास' लेखन को हैलम, कार्निवल लेविस, अर्सकीन, मेटलैंड ने प्रसिद्धि दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

### 1.4.7 राजनयिक इतिहास

राजनयिक इतिहास में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन किया जाता है। एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र से परम्पर संबंधों की पृष्ठभूमि, उनका क्रमिक विकास, संबंधों का उतार - चढ़ाव अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में संबंधों की भूमिका और संबंधों की प्रकृति आदि सब कुछ राजनयिक इतिहास की परिधि में आता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारत - चीन संबंध, भारत - पाकिस्तान संबंध, भारत - रूस संबंध, भारत - अमेरिका संबंध राजनयिक इतिहास लेखन के रोचक विषय है।

### 1.4.8 औपनिवेशिक इतिहास

औपनिवेशिक इतिहास के अंतर्गत किसी देश द्वारा दूसरे देश को जीतकर अपना उपनिवेश बना लेने का इतिहास आता है। यूरोप के इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन, पुर्तगाल आदि ने एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी एवं उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के देशों को जीतकर अपने उपनिवेश स्थापित किये। औपनिवेशिक इतिहास का लेखक उपनिवेश स्थापना के कारणों, परिस्थितियों, खिंचावों, तनावों, उपनिवेशों पर आधिपत्य के साधनों आदि सभी को अपने अध्ययन में सम्मिलित कर विश्लेषण करता है।

### 1.4.9 संसदीय इतिहास

संसदीय इतिहास में लोकतांत्रिक व्यवस्था और जनकल्याण का इतिहास निहित होता है। संसदीय इतिहास में संसदीय व्यवस्था की स्थापना के लिए संघर्ष, संसदीय व्यवस्था की स्थापना, विकास और जनकल्याण के लिए कल्याणकारी व्यवस्था का विश्लेषणात्मक इतिहास समाहित होता है।

### 1.4.10 कॉमनवेल्थ का इतिहास

कॉमनवेल्थ के इतिहास में ब्रिटिश साम्राज्य और उसके उपनिवेशों की स्वतंत्रता के बाद का इतिहास समाहित होता है। ब्रिटेन और उसके स्वतंत्र उपनिवेशिक देशों के बीच राजनीतिक रूप से सौहार्द्रपूर्ण संबंधों को बनाये रखने के लिए 'कॉमनवेल्थ' की स्थापना की गयी थी।

### 1.4.11 सैन्य इतिहास

सैन्य इतिहास के अंतर्गत विभिन्न सेनाओं की स्थापना एवं विकास, हथियारों के निर्माण एवं विकास, हथियारों के प्रयोग की तकनीक, युद्ध क्षेत्र में रणनीतिक व्यू - रचना आदि का समग्र अध्ययन किया जाता है। साम्राज्यों के उत्थान एवं पतन में सैन्य तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सिकन्दर, चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, नेपोलियन, हिटलर, मुसोलनी, चंगेज खाँ के साम्राज्यों की स्थापना में सैन्य पृष्ठभूमि ने आधारभूत भूमिका निभायी थी।

#### 1.4.12 क्षेत्रीय इतिहास

क्षेत्रीय इतिहास में एक क्षेत्र विशेष की भौगोलिक सीमाओं में निहित इतिहास का अध्ययन किया जाता है। जैसे - उत्तरी मध्य प्रदेश का इतिहास, उत्तराखण्ड के मैदानी क्षेत्रों का इतिहास, कुमाऊँ - गढ़वाल का इतिहास, विदर्भ का इतिहास आदि की विशेष क्षेत्रीय राजनीतिक एवं साँस्कृतिक परिवेश का अध्ययन समाहित होता है।

#### 1.4.13 सार्क देशों का इतिहास

सार्क देशों का संगठन भारत सहित भारत के सात पड़ोसियों का संगठन है, जिसका सचिवालय काठमाण्डू (नेपाल) में स्थित है। सार्क देशों की अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं इतिहास हैं, जिसमें बहुत कुछ मूलभूत समानताएँ हैं, आने वाले समय में सार्क देशों का पृथक से इतिहास लिखा जायेगा। सार्क देशों के इतिहास लेखन संबंधी विचार सर्वप्रथम डॉ. आनन्द कुमार शर्मा (ग्वालियर) ने दिया है।

#### 1.4.14 इतिहास - दर्शन

इतिहास दर्शन में इतिहास का आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इतिहास दर्शन का जनक वाल्टेयर को माना जाता है। दर्शन ज्ञान के प्रति लगाव का परिचायक है। इसका अध्ययन क्रमबद्ध तरीके से किया जाता है।

#### 1.4.15 विश्व इतिहास

विश्व इतिहास के अंतर्गत सारे संसार का कालक्रमानुसार अध्ययन किया जाता है। इसका उद्देश्य सारे संसार में भाईचारे की भावना को बढ़ाना है। विश्व भ्रातृत्व का विश्व में सर्वप्रथम संदेश भारत ने ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश देकर की थी। जैसे सर्वप्रथम विश्व इतिहास लेखन 'सर वाल्टर रेले' ने किया। उसके बाद एच. जी. वेल्स एवं टायन्बी ने भी विश्व इतिहास की रचना में अपना उपयोगी योगदान दिया।

इस प्रकार इतिहास क्षेत्र विस्तार की सीमाओं में आबद्ध करने की कोई अंतिम रेखा खींचना संभव नहीं है। उक्त क्षेत्र विस्तार इतिहास क्षेत्र के विभिन्न अंगों में से हैं।

**स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न**

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) सार्क देशों का इतिहास।  
(ख) विश्व इतिहास।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:  
(I) राजनीतिक इतिहास से आप क्या समझते हैं?  
(II) संवैधानिक इतिहास किसे कहते हैं?

## 1.5 इतिहास का महत्व

इतिहास का मानव जाति के लिए बहुत महत्व है। मानव के अतीत के विकास की गाथा इतिहास के पृष्ठों पर अंकित होती है। मानव अपनी वर्तमान प्रगति के सोपानों की दास्तां इतिहास को जानकर प्राप्त कर सकता है और सुनहरे भविष्य का निर्माण कर सकता है। मानव जाति के सुरक्षित भविष्य के लिए अतीत की गलतियाँ और वर्तमान की चुनौतियों का विश्लेषण आवश्यक एक शर्त होती है। इतिहास यह बताता है कि, मानव ने किस प्रकार और किन चुनौतियों का सामना करके वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया है। मानव के भौतिक विकास के ताने - बाने के तंतू भी अतीत के गर्भ से प्रस्फुटित हुए हैं, अतः साँस्कृतिक तत्वों के स्वरूप की आधारशिला को जानने के लिए इतिहास का महत्व बढ़ जाता है। फिशर ने ठीक ही कहा है, 'इतिहास के पृष्ठों मानव की प्रगति अंकित है।'

किसी भी राष्ट्र के सुरक्षित भविष्य के लिए भी इतिहास का बहुत महत्व है। जैसा कि, शेक अली कहते हैं कि, 'इतिहास की उपेक्षा करने वाले राष्ट्र का कोई भविष्य नहीं होता है।' एक राष्ट्र के लिए यह आवश्यक होता है कि, अतीत की गलतियों से सबक ले और वर्तमान में उन गलतियों को सुधारकर भविष्य के लिए सुरक्षित राष्ट्र का निर्माण करें। ऐतिहासिक रूप से देखें तो हम पायेंगे कि, भारतीय राजाओं ने अपनी उत्तरी - पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिए चीन की दीवार की तरह पुख्ता इंतजाम नहीं किये थे, इसीलिए लगातार समय - समय पर उत्तरी - पश्चिमी सीमा पर आक्रमण होते रहे और आक्रांता हमें रौंदते रहे। तात्पर्य यह है कि, हमें अपने अतीत का खुले दिमाग से विश्लेषण करना होगा तथा अपनी कमजोरियों - कमियों को दूर करना होगा, तभी सुरक्षित और उज्जल भविष्य की हम कल्पना कर सकते हैं।

इतिहास न केवल राष्ट्र को अपितु मनुष्य के लिए भी एक पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। इतिहास मनुष्य को यह शिक्षा देता है कि, किस रास्ते पर चलने का क्या परिणाम निकल सकता है? अतः गलत रास्ते या ऐसे कार्य की पुनरावृत्ति करने में मनुष्य सावधानी बरतता है, क्योंकि 'दूध का जला छाछ को भी फूंक - फूंक कर पीता' है।

इतिहास का महत्व दूसरे राष्ट्रों का समझने में भी है। इतिहास दूसरे राष्ट्रों की विचारधारा का ज्ञान कराता है, इससे दूसरे राष्ट्रों की वास्तविक मंशा को पहचाना जा सकता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करना है। हमने चीन के इतिहास से ज्ञान प्राप्त नहीं किया। चीन का इतिहास सदैव सीमा विस्तारवादी नीति का रहा है।

### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:
  - (I) इतिहास के पृष्ठों पर मानव की प्रगति अंकित होती है। स्पष्ट कीजिये?
  - (II) किसी राष्ट्र के लिए इतिहास का ज्ञान क्यों आवश्यक है?

## 1.6 सारांश

इतिहास के अध्ययन से हमें विदित होता है कि, मानव सभ्यता के विकास की क्रमिक जानकारी हमें इतिहास से प्राप्त होती है। इतिहास अतीत का अध्ययन है, जो मनुष्य के सुखमय भविष्य के लिए रास्ता बताता है। इतिहास का ज्ञान मनुष्य को अतीत में की गयी गलतियों को वर्तमान में सुधारने का अवसर प्रदान करता है, जिससे सुरक्षित भविष्य का निर्माण संभव है। इतिहास न केवल मानव के लिए अपितु राष्ट्र के लिए भी एक पथ प्रदर्शक का कार्य करता है, क्योंकि इतिहास की उपेक्षा करने वाले राष्ट्र का कोई भविष्य नहीं होता है। देश के रूप में 1962 के चीनी आक्रमण को नहीं भूलना चाहिए। भारत ने चीन के इतिहास से कुछ नहीं सीखा। चीन का इतिहास सदैव सीमा विस्तारवादी रहा है। हमने अपने इतिहास से भी नहीं सीखा कि, भारत पर सदियों से विदेशी आक्रमण होते रहे और हम हारते रहे है, इसलिए आजादी के बाद ठोस सुरक्षा नीति बनायी जाने की शिक्षा हमें इतिहास देता है।

## 1.7 तकनीकी शब्दावली

यूनान:	यूरोप महाद्वीप का एक देश।
अतीत:	बीता हुआ कल या भूतकाल।
पुनर्जागरण:	किसी देश या समाज का राजनीतिक एवं साँस्कृतिक रूप से उदय।
उपनिवेश:	किसी स्वतंत्र देश पर आक्रमण करके दूसरे देश द्वारा गुलाम बनाना।
सार्क देश:	भारत, नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालद्वीप एवं अफगानिस्तान।

## 1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

### इकाई 1.3

1. (क) देखिए 1.3 इतिहास की परिभाषा  
(ख) देखिए 1.3.2 इतिहास ज्ञान है
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:  
(I) देखिए 1.3.6 भूत और वर्तमान की कड़ी है  
(II) देखिए 1.3.1 इतिहास कहानी है

### इकाई 1.4

1. (क) देखिए 1.4.13 सार्क देशों का इतिहास  
(ख) देखिए 1.4.15 विश्व इतिहास
2. (I) देखिए 1.4.1 राजनीतिक इतिहास  
(II) देखिए 1.4.6 संवैधानिक इतिहास

### इकाई 1.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

- (I) देखिए 1.5 इतिहास का महत्व
- (II) देखिए 1.5 इतिहास का महत्व

## 1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बुद्ध प्रकाश - इतिहास दर्शन, प्रयाग, 1999
2. चौबे, झारखण्डे - इतिहास दर्शन, वाराणसी, 1999
3. कार, ई० एच० - इतिहास क्या है, नई दिल्ली, 1993
4. क्लार्क, जी० एन० - द क्रिटिकल हिस्टोरियन, लंदन, 1970
5. राउल, ए० एल० - द यूज ऑफ हिस्ट्री, लंदन, 1963
6. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र - इतिहास: स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1999

## 1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अली, मुबारक - इतिहास का मतान्तर, नई दिल्ली, 2002
2. दुबे, जगदीश नारायण - इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1982
3. थापर, रोमिला (संपा०) - इतिहास की पुनर्व्याख्या, नई दिल्ली, 1991

- 
4. शर्मा, रामविलास - इतिहास दर्शन, नई दिल्ली, 1995
  5. सरकार, सुमित - सामाजिक इतिहास लेखन की चुनौतियाँ, दिल्ली, 2001
  6. श्रीवास्तव, ब्रजेश कुमार - इतिहास लेखन, आगरा, 2009
- 

### 1.11 निबंधात्मक प्रश्न

---

- प्रश्न 1. इतिहास क्या इतिहास है? अपने विचार व्यक्त कीजिये?
- प्रश्न 2. इतिहास के क्षेत्रों का उल्लेख कीजिये?
- प्रश्न 3. इतिहास के महत्व पर अपने विचार प्रगट कीजिये?

## इकाई - दो प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत
  - 2.3.1 पुरातात्विक स्रोत
    - 2.3.1.1 अभिलेख
    - 2.3.1.2 मुद्राएँ
    - 2.3.1.3 स्मारक
    - 2.3.1.4 मुहरें
    - 2.3.1.5 मूर्तियाँ
  - 2.3.2 साहित्यिक स्रोत
    - 2.3.2.1 धार्मिक साहित्यिक स्रोत
      - 2.3.2.1.1 ब्राह्मण अथवा वैदिक साहित्य
        - 2.3.2.1.1.1 वेद
        - 2.3.2.1.1.2 ब्राह्मण ग्रंथ
        - 2.3.2.1.1.3 आरण्यक ग्रंथ
        - 2.3.2.1.1.4 उपनिषद्
        - 2.3.2.1.1.5 वेदांग
        - 2.3.2.1.1.6 स्मृतियाँ
        - 2.3.2.1.1.7 महाकाव्य
        - 2.3.2.1.1.8 पुराण
      - 2.3.2.1. बौद्ध साहित्य
      - 2.3.2.2 जैन साहित्य
  - 2.3.3 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक भारतीय साहित्यिक स्रोत
  - 2.3.4 विदेशी लेखकों के ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत
  - 2.3.5 यूनानी लेखकों का साहित्य
  - 2.3.6 चीनी लेखकों का साहित्य
  - 2.3.7 अरबी लेखकों का साहित्य
- 2.4 सारांश
- 2.5 तकनीकी शब्दावली
- 2.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

इतिहास अतीत का अध्ययन है। इतिहास में अतीत की घटनाओं का कालक्रमानुसार अध्ययन किया जाता है। अतीत का पुनर्निर्माण विभिन्न तथ्यों को एकत्रित करके किया जाता है। ये तथ्य अनेक कई प्रकार के होते हैं, यही तथ्य इतिहास के स्रोत होते हैं, जोकि प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों के रूप में मिलते हैं। प्राथमिक स्रोतों में मूल स्रोत आते हैं, जैसे - अभिलेख, मुद्राएँ, स्मारक भवन, मूर्तियाँ तथा पुरावशेष एवं मूल रचनाएँ जैसे - वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि सामग्री आती है। द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत प्रकाशित, अप्रकाशित प्रलेख या समस्त लिखित सामग्री आती है।

प्राचीन भारत का इतिहास भारत के लिए गौरव का विषय है। विद्वानों का मानना है कि, प्राचीन भारत के इतिहास की क्रमबद्ध जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रामाणिक स्रोतों नहीं मिलते हैं, इसी कारण कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों का मानना है कि, प्राचीन काल में भारतीयों में इतिहास लेखन के प्रति रूचि तथा इतिहास बुद्धि का अभाव था। ऐसे इतिहासकारों में डॉ. आर. एस. त्रिपाठी, डॉ. आर. सी. मजूमदार, फ्लीट, स्मिथ, अल्फिंस्टन आदि प्रमुख हैं। डॉ. आर. एस. त्रिपाठी का मानना है कि, 'प्राचीन भारतीय साहित्य बहुत विस्तृत एवं समृद्ध होने पर भी इतिहास की सामग्री की दृष्टि से अत्यन्त निराशाजनक है। इसका कारण सम्भवतः ऐतिहासिक मेधा (इतिहास लेखन बुद्धि) की कमी रही होगी।' इस बारे में ए. एल. बाशम का कहना है कि, 'भारत का प्राचीन इतिहास पहेलियों के समान है जिनके बहुत से पन्ने खो गये हैं।'

इस इकाई में आपको प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न स्रोतों की जानकारी प्राप्त होगी। साथ ही, इस इकाई में आपको इतिहास के विभिन्न पुरातात्विक स्रोतों, प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथों, लौकिक ग्रंथों तथा विदेशी लेखकों एवं उनकी रचनाओं का ज्ञान प्राप्त होगा।

## 2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. विद्यार्थी स्रोत क्या होता है? को समझ सकेंगे।
2. विद्यार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास के पुरातात्विक स्रोतों को समझ सकेंगे।
3. विद्यार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास के धार्मिक साहित्यिक स्रोतों को जान सकेंगे।
4. विद्यार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास के लौकिक या ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोतों को समझ सकेंगे।
5. विद्यार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास के विदेशी लेखकों के ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोतों से परिचित हो सकेंगे।

6. विद्यार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न स्रोतों को समग्र रूप जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास के पुरातात्विक स्रोतों की उपयोगिता को समझेंगे।
8. विद्यार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास की रचना के प्रेरित होंगे।

## 2.3 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास से तात्पर्य प्रारंभ से 1200 ई० तक के काल के भारतीय इतिहास से है। इसकाल के प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण के लिए जिन तथ्यों और स्रोतों का उपयोग किया जाता है। उन्हें प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत कहते हैं। कतिपय पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों का मानना है कि, प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण के लिए स्रोतों का अभाव है, क्योंकि प्राचीन भारतीयों में इतिहास लेखन की समझ ही नहीं थी। ग्यारहवीं सदी का पर्यटक विद्वान अलबरूनी भी लिखता है कि, 'हिन्दू घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम की ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे।' प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० आर० सी० मजूमदार भी कहते हैं कि, 'इतिहास लेखन के प्रति भारतीयों की विमुखता भारतीय संस्कृति का भारी दोष है।' किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत प्रचूर मात्रा में पुरातात्विक साक्ष्यों के रूप में उपलब्ध हैं। प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य में तत्कालीन इतिहास एवं संस्कृति के साक्ष्य स्रोतों के रूप में उपलब्ध हैं। इसके साथ ही, गैर धार्मिक प्राचीन भारतीय साहित्य भी इतिहास की व्यापक जानकारी देता है।

### 2.3.1 पुरातात्विक स्रोत

पुरातत्व उन भौतिक वस्तुओं का अध्ययन करता है, जिनका निर्माण और उपयोग मनुष्य ने किया है। अतः वे समस्त भौतिक वस्तुएँ जो अतीत में मनुष्य द्वारा निर्मित एवं उपयोग की गयी हैं, पुरातत्व की परिधि में आती हैं। वे सभी वस्तुएँ पुरातत्व के अंतर्गत आती हैं, पुरातात्विक स्रोत कहलाती हैं। विद्वान पुरातात्विक स्रोतों को बहुत अधिक प्रामाणिक मानते हैं, क्योंकि पुरातात्विक स्रोतों में लेखक कोई गड़बड़ी नहीं कर सकता है। पुरातात्विक स्रोत सामग्री के अंतर्गत अभिलेख, मुद्राएँ, स्मारक भवन, मूर्तियाँ, तथा पुरातात्विक अवशेषों को रखा जाता है।

#### 2.3.1.1 अभिलेख

अभिलेख, वह लेख होते हैं, जो किसी पत्थर (चट्टान), धातु, लकड़ी या हड्डी पर खोदकर लिखे होते हैं। प्राचीन अभिलेख अनेक जैसे, स्तम्भों, शिलाओं, गुहाओं, मूर्तियों, प्रकारों, ताम्रपत्रों, मुद्राओं पर मिलते हैं। अभिलेखों के अध्ययन को 'पुरालेखशास्त्र' कहा जाता है। कतिपय विद्वान प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक स्रोत अभिलेखों को मानते हैं। देश में सर्वाधिक अभिलेख मैसूर (कर्नाटक) में संरक्षित हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार फ्लीट का मानना

है कि, 'प्राचीन भारतीय इतिहास का ज्ञान अभिलेखों के धैर्यपूर्ण अध्ययन से प्राप्त होता है।' अभिलेखों एवं शिलालेखों से संबंधित शासकों के जीवन चरित्र, साम्राज्य - विस्तार, धर्म, शासन प्रबंध, कला तथा राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। अभिलेखों एवं शिलालेखों से भाषा के विकास की भी जानकारी प्राप्त होती है। मौर्यकाल और ई० पू० तृतीय शताब्दी के अधिकतर अभिलेखों में प्राकृत भाषा का प्रयोग मिलता है, वहीं दूसरी शताब्दी ई० से गुप्त - गुप्तेतर काल अधिकतर अभिलेखों में संस्कृत में भाषा का प्रयोग मिलता है। साथ ही, यह बात भी उल्लेखनीय है कि, अभिलेखों में नौवीं - दशवीं शताब्दी ई० से स्थानीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग किया जाने लगा था। इसके साथ ही, यह बात भी उल्लेखनीय है कि, गुप्तकाल से पहले के अधिकतर अभिलेखों में ब्राह्मणेतर धर्मों का तथा गुप्त एवं गुप्तेतर काल के अधिकतर अभिलेखों ब्राह्मण धर्म का उल्लेख मिलता है।

पुराविदों का मानना है कि, भारत में अब तक मिला सबसे प्राचीन अभिलेख पाँचवीं शताब्दी ई० पू० का पिप्रावा कलश (जिला बस्ती) लेख है। इसके साथ ही, अजमेर से प्राप्त 'बडली - अभिलेख' अशोक के काल से पहले का माना जाता है।

अशोक के अभिलेख भारत में पढ़े जाने वाले सबसे प्राचीन अभिलेख है। अशोक के लेख ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरामाइक एवं ग्रीक, लिपि में मिलते हैं। साथ ही, अशोक के केवल चार अभिलेखों, मास्की (कर्नाटक), निठूर, उदेगोलम और गुज्जरा (जिला दतिया, म० प्र०) में अशोक का नाम मिलता है। अशोक के अभिलेखों में शिलालेख, स्तम्भलेख, गुहालेख सम्मिलित है। अशोक के चौदह बड़े शिलालेख, पंद्रह लघु शिलालेख, सात स्तम्भलेख, छः लघु स्तम्भलेख तथा चार गुहालेख प्राप्त है। देश में अशोक के अतिरिक्त अनेक शासकों अभिलेख प्राप्त है, जिनसे उनके व्यक्तिगत शासन एवं वंश की विविध जानकारी मिलती है, इनमें प्रमुख रूप से पुष्यमित्र शुंग का अयोध्या अभिलेख, कलिंगराज खारखेल का हाथीगुम्फा अभिलेख, गौतमी बलश्री का नासिक अभिलेख, रुद्रदामा का गिरनार अभिलेख, समुद्रगुप्त की 'प्रयाग -प्रशस्ति', चन्द्रगुप्त द्वितीय का महरौली स्तम्भ लेख, स्कंद गुप्त का भितरी एवं जूनागढ़ लेख, भोज - प्रतिहार की ग्वालियर प्रशस्ति, हर्षवर्धन के मधुवन, बाँसखेड़ा एवं सोनीपत अभिलेख, पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख, बंगाल के पाल शासकों में धर्मपाल का खालिमपुर तथा देवपाल का मुंगेर अभिलेख तथा सेन शासक विजय सेन का देवपाड़ा अभिलेख, परमार शासकों में भोज परमार (1010 - 55 ई०) की 'उदयपुर प्रशस्ति', राष्ट्रकूटों के बारे में गोविन्द तृतीय के राधनपुर, वनिदिन्दोरी तथा अमोघवर्ष प्रथम के संजन दानपत्रों से विशेष जानकारी मिलती है।

अभिलेखों के विशेष महत्व के बारे में यह कहा जा सकता है कि, सातवाहन इतिहास तो उनके अभिलेखों के आधार पर लिखा गया है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के पल्लव, चालुक्य,

राष्ट्रकूट, पांडय और चोल वंशों का इतिहास लिखने में इन शासकों के अभिलेखों की महत्व भूमिका रही है।

गुहालेख, वे लेख है, जो गुफाओं में उत्कीर्ण है। अशोक के बराबर तथा दशरथ के नागार्जुनी गुहालेख एवं सातवाहनों के नासिक, नानाघाट और काले आदि गुहालेखों में इतिहास सामग्री का भंडार भरा पड़ा है। इसके अतिरिक्त अनेक अभिलेख मूर्तियों पर, मंदिरों एवं स्तूपों के प्राकारों पर, मिट्टी एवं धातु के पात्रों पर, ताँबे की चादरों पर (अधिकतर भूमि - अनुदान - पत्र), मुद्राओं एवं सीलों पर मिलते हैं, जिनमें महत्वपूर्ण इतिहास सामग्री उपलब्ध है।

### 2.3.1.2 मुद्राएँ

मुद्राएँ जारी करना किसी भी शासक की स्वतंत्र सत्ता का प्रतीक होता था। भारत में सबसे प्राचीन मुद्राएँ 'आहत' मुद्राएँ हैं, जो लगभग पाँचवीं शताब्दी ई. पू. में प्रचलित थीं। मुद्राओं के अध्ययन को 'न्यूमिस्मेटिक्स' (मुद्राशास्त्र) कहा जाता है। प्राचीन भारत में मुद्राएँ ताँबे, चाँदी, सोने, सीसे, पोटीन, मिट्टी की मिलती हैं। पुरातात्विक सामग्री में मुद्राओं का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि 206 ई. पू. - 300 ई. तक का भारतीय इतिहास मुख्यतः मुद्राओं की सहायता से ही लिख गया है। इसके साथ ही, हिन्द - यूनानी शासकों का तो सम्पूर्ण इतिहास मुद्राओं के द्वारा ही लिखा गया है। शक - क्षत्रप, इण्डो - बैक्ट्रियन तथा इण्डो - पर्शियन के इतिहास जानने के एकमात्र साधन सिक्के ही हैं। मुद्राओं के अध्ययन से अनेक प्रकार की सूचनाएँ मिलती हैं, जो प्राचीन भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्रोत हैं।

मुद्राओं से किसी भी शासक या साम्राज्य की आर्थिक स्थिति का पता चलता है। सोने की मुद्रा का किसी भी साम्राज्य में प्रचलन मजबूत आर्थिक स्थिति का प्रतीक होता माना जा सकता है और यह भी स्पष्ट है कि, आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर ही क्रमशः चाँदी व ताँबे अथवा मिश्रित धातु के सिक्कों का प्रचलन किया जाता होगा। मुद्राओं पर अंकित तिथि से किसी भी शासक या साम्राज्य की कालक्रम की जानकारी मिलती है, जिससे कालक्रम निर्धारण में मदद मिलती है। मुद्राएँ नई जानकारी को भी सामने लाती करती हैं, गुप्त - शासक रामगुप्त और काच के बारे में जानकारी का स्रोत मुद्राएँ ही हैं। मुद्राओं से किसी भी शासक या साम्राज्य की विजय की जानकारी मिलती है। जोगलथम्बी मुद्राभाण्ड नहपान पर शातकर्णिकी विजय और चंद्रगुप्त की चाँदी की मुद्राएँ शकों पर विजय की जानकारी देती हैं।

मुद्राओं से साम्राज्य की सीमा की भी जानकारी मिलती है। किसी स्थान विशेष से यदि बड़ी संख्या में मुद्राएँ मिलें तो यह अनुमान लगाया जाता है कि यह इस साम्राज्य के राज्य का हिस्सा हो सकता है। मुद्राओं से शासकों की व्यक्तिगत रुचियों की भी जानकारी मिलती है। मुद्राओं पर

समुद्रगुप्त को वीणा बजाते दिखाया गया है, इससे प्रतीत होता है कि, समुद्रगुप्त की संगीत में विशेष रूचि थी। मुद्राओं से साम्राज्य की धार्मिक नीति और शासक के धर्म की जानकारी मिलती है। मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर मुख्यतः देवता की आकृति अंकित मिलती है, शासक की धार्मिक रूचि और साम्राज्य की धार्मिक नीति स्पष्ट होती है। मुद्राओं से तत्कालीन कला की भी जानकारी मिलती है। मुद्राओं पर उत्कीर्ण चित्रों, संगीत वाद्यों तथा मुद्राओं की बनावट से तात्कालिक कला के बारे में जानकारी मिलती है। मुद्राओं से तत्कालीन कला की भी जानकारी मिलती है।

मुद्राओं किसी भी शासक या साम्राज्य के विदेशी संबंधों की जानकारी मिलती है। विदेशों में भारतीय मुद्राओं एवं विदेशी मुद्राओं का भारत में मिलना। यह जानकारी देता है कि, दोनों देशों में संबंध थे। मुद्राओं किसी भी शासक या साम्राज्य के व्यापार एवं वाणिज्य की भी जानकारी मिलती है। दूसरे देशों में किसी शासक की मुद्राओं का मिलना, यह दर्शाता है कि, उस शासक या साम्राज्य का व्यापार यहाँ तक चलता था। इसके साथ ही, शासकों से अनुमति लेकर व्यापारियों और स्वर्णकारों की श्रेणियों (व्यापारिक संघों) ने भी अपनी मुद्राएँ चलायी थीं। इससे व्यापार एवं वाणिज्य के उन्नत होने का पता चलता है।

### 2.3.1.3 स्मारक

स्मारक से तात्पर्य, प्राचीन भवन, मृतक स्मृति भवन और क्षत्रिय, धार्मिक भवन आदि आते हैं। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, तक्षशिला, नालंदा, रोपड़, हस्तिनापुर, बनावली आदि के स्मारकों से तत्कालीन वास्तुकला नगर नियोजन, सामाजिक स्थिति, धार्मिक स्थिति एवं साँस्कृतिक स्थिति का ज्ञान होता है। स्तूप, चैत्य, विहार, गुफाओं एवं मंदिरों से तत्कालीन धार्मिक एवं साँस्कृतिक स्थिति का ज्ञान होता है। स्मारकों से कला के विकास, काल निर्धारण, कला में प्रयुक्त सामग्री, स्तूप, चैत्य, विहार एवं मंदिरों में चित्रित और अंकित मूर्तियों की वेशभूषा, अलंकरणों एवं अंकनों से तत्कालीन सामाजिक स्थिति, धार्मिक स्थिति एवं साँस्कृतिक स्थिति का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही वैचारिक धारणा का भी पता चलता है।

विदेशी स्मारकों से भी भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। कम्बोडिया का अंगकोरबाट मंदिर, जावा का बोरोबुदुर मंदिर तथा मलाया व वाली द्वीप से प्राप्त अनेक प्रतिमा, बोर्नियों में मकरान से प्राप्त विष्णु की मूर्ति से ज्ञात होता है कि, वहाँ पर भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रसार था तथा भारतीय धर्म और संस्कृति के बारे में ये महत्वपूर्ण सूचनाएँ देते हैं।

### 2.3.1.4 मुहरें

मुहरें भी प्राचीन भारतीय इतिहास के मुख्य स्रोतों में आती हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता से लगभग 2000 से भी अधिक मुहरें मिली हैं, जिनसे तत्कालीन जलवायु, पशु जगत्, भाषा, धर्म

आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। बसाढ़ (बैशाली) से 274 मुहरों से चौथी शताब्दी ई० में एक व्यापारिक श्रेणी की जानकारी मिलती है। मुहरों तत्कालीन आर्थिक एवं प्रशासनिक कार्य व्यवहार की जानकारी देती है।

### 2.3.1.5 मूर्तियाँ

मूर्तियों से धार्मिक अवस्था एवं कला के विकास के बारे में जानकारी मिलती है। भारतीय इतिहास की सर्वप्रथम मूर्ति बेलन घाटी से बनी हड्डी की मातृदेवी की मूर्ति मिली है, जो उच्च पुरापाषाण कालीन (लगभग 35000 ई० पू०) है। सिन्धु घाटी से पत्थर, टैराकोट एवं धातु की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। कुषाण कालीन मूर्तियों से गांधार कला पर विशेष प्रकाश पड़ता है। गुप्तकालीन मूर्तियाँ अपने काल की कलात्मकता का बखान करती है। मौर्यकालीन लोक कला की यक्ष - यक्षणियाँ विशेष उल्लेखनीय है। चन्देल शासकों के काल की खजुराहों की मूर्तियाँ तत्कालीन सामाजिक विचारधारा को प्रकट करती हैं। ये मूर्तियाँ कला एवं संस्कृति के विकास की जानकारी देने के साथ ही, प्राचीन भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण स्रोत भी है।

### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

- अशोक के अभिलेखों कितनी लिपियों में मिलते हैं?
 

(क) तीन	(ख) चार
(ग) पाँच	(घ) दो
- अशोक के कितने अभिलेखों में उसका नाम मिलता है?
 

(क) तीन	(ख) चार
(ग) पाँच	(घ) दो
- 'प्रयाग -प्रशस्ति' किस शासक की हैं?
 

(क) अशोक	(ख) रामगुप्त
(ग) समुद्रगुप्त	(घ) चंद्रगुप्त
- किस वंश के शासकों का इतिहास मुद्राओं के आधार पर लिखा गया है?

- (क) हर्यक शासकों का (ख) मौर्य शासकों का  
 (ग) गुप्त शासकों का (घ) हिन्द - यूनानी शासकों का

5. कम्बोडिया का अंगकोरबाट का मंदिर कहा है?

- (क) भारत में (ख) कम्बोडिया में  
 (ग) मलाया में (घ) बाली में

### 2.3.2 साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोत, वे स्रोत है, जो साहित्य अर्थात् पुस्तकों के माध्यम से प्राप्त होती है। यह साहित्य धार्मिक, लौकिक एवं विदेशी लेखकों की लेखनी से प्राप्त है।

#### 2.3.2.1 धार्मिक साहित्यिक स्रोत

धार्मिक साहित्यिक स्रोत के अंतर्गत ब्राह्मण अथवा वैदिक साहित्य, बौद्ध साहित्य एवं जैन साहित्य आता है।

##### 2.3.2.1.1 ब्राह्मण अथवा वैदिक साहित्य

ब्राह्मण ग्रंथों में वैदिक साहित्य प्रमुख है। वैदिक साहित्य भारतीय विद्वानों की अद्भुत सृजनशीलता का परिचायक है। वैदिक साहित्य का सृजन लगभग 1500 - 200 ई० पू० के मध्य किया गया। वैदिक साहित्य के अंतर्गत वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद, आरण्यक और सूत्र साहित्य आता है।

##### 2.3.2.1.1.1 वेद

भारतीय साहित्य की प्राचीनतम कृति वेद हैं। वेद संख्या में चार हैं -

ऋग्वेद - सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद है। ऋग्वेद की रचना 1500 - 1000 ई० पू० के मध्य हुई। ऋग्वेद में 10 मण्डल, 1028 सूक्त तथा 10,580 ऋचाएँ हैं। ऋग्वेद के 2 - 9 तक के मंडल प्राचीन तथा 1 और 10 वाँ मण्डल नवीन हैं। ऋग्वेद से प्राचीन आर्यों के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन की विस्तृत जानकारी मिलती है।

सामवेद -सामवेद ऐसा वेद है, जिसके मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते हुए गाये जाते थे। यह ग्रंथ तत्कालीन भारत की गायन विद्या का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है। सामवेद में 1549 ऋचाएँ हैं। सामवेद 75 ऋचाएँ ही मौलिक है, शेष ऋग्वेद से ली गई हैं।

यजुर्वेद - यजुः का अर्थ है, यज्ञ। इस वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ - विधियों का वर्णन किया गया है। इसीलिए इसे 'यजुर्वेद' कहा गया। यजुर्वेद में यज्ञों को करने की विधियाँ बतायी गयी है।

अथर्ववेद -इस वेद की रचना अथर्वा ऋषि ने की थी, इसीलिए इसे 'अथर्ववेद' कहते हैं। इसकी रचना लगभग 800 ई. पू. में हुई। 'अथर्ववेद' में 20 मण्डल, 731 सूक्त तथा 5849 ऋचाएँ हैं। 'अथर्ववेद' में 1200 ऋचाएँ ऋग्वेद से ली गई हैं। 'अथर्ववेद' से उत्तर वैदिक कालीन भारत की पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की विस्तृत जानकारी मिलती है।

### 2.3.2.1.1.2 ब्राह्मण ग्रंथ

ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हमारे ऋषियों ने वैदिक मंत्रों के अर्थ बताने के लिए की गयी थी, ताकि यज्ञों को संपन्न करने में कठिनाई नहीं आये। ब्राह्मण ग्रंथ यज्ञों के मंत्रों का अर्थ बताते हुए उनके अनुष्ठान की विधि बताते हैं। प्रत्येक ब्राह्मण ग्रंथ एक संहिता (वेद) से संबंधित है। जैसे, ऋग्वेद से ऐतरेय और कौषीतकी ब्राह्मण, सामवेद से ताण्डस, जैमनीय ब्राह्मण, यजुर्वेद से शतपथ ब्राह्मण, अथर्ववेद से गोपथ ब्राह्मण संबंधित हैं। इन ब्राह्मण ग्रंथों से तत्कालीन लोगों की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन की जानकारी प्राप्त होती है।

### 2.3.2.1.1.3 आरण्यक ग्रंथ

आरण्यक शब्द की उत्पत्ति 'अरण्य' से हुई है, जिसका अर्थ 'वन' होता है। आरण्यक ऐसे ग्रंथों को कहा जाता है, जिनका अध्ययन वन में किया जा सके। आरण्यक ग्रंथों में हमारे ऋषियों ने महान् ज्ञान प्रधान विचारधारा का सृजन किया है। आरण्यक ग्रंथ सात बताये गये हैं - ऐतरेय, शांखायन् तैत्तरीय, मैत्रायणी, याध्यन्दिन एवं तल्वकार आरण्यक।

### 2.3.2.1.1.4 उपनिषद्

'उप' का अर्थ 'समीप' तथा 'निषद्' का अर्थ बैठना होता है अर्थात् वह रहस्य विद्या जिसका ज्ञान गुरु के समीप बैठकर किया जाता था, उसे 'उपनिषद्' कहा जाता था। उपनिषदों में भारत की महान् दार्शनिक ज्ञान की संपदा निहित है। अधिकांश विद्वान उपनिषदों की संख्या 108 बताते हैं। इनमें बारह उपनिषद् प्रमुख हैं, ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वर, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कौशीतकी। उपनिषदों का रचना काल 800 - 500 ई. पू. माना गया है।

### 2.3.2.1.1.5 वेदांग

वेदांग की रचना वेदों के अर्थ और विषय को समझने के लिए की गई थी, इसलिए इन्हें 'वेदांग' कहते हैं। छः वेदांग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष है।

### 2.3.2.1.1.6 स्मृतियाँ

स्मृतियाँ वैदिक आर्यों के कानून संबंधी ग्रंथ है। वैदिक आर्यों के दैनिक जीवन के विषय में नियम व उपनियम आदि का वर्णन है। मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति प्रमुख है। नारद, पारासर आदि स्मृतियाँ भी वैदिक आर्यों के सामाजिक एवं धार्मिक पक्ष को प्रकट कर रही है।

### 2.3.2.1.1.7 महाकाव्य

महाकाव्यों के अंतर्गत रामायण और महाभारत आते हैं। रामायण के रचयिता बाल्मीकी हैं इसमें सातकाण्ड है। बाल्मीकि रामायण में मूलतः 6000 श्लोक थे जो बढ़कर 12000 और अन्ततः 24000 श्लोक हो गए। वास्तव में रामायण को आर्यों की अनार्यों पर विजय का प्रतीक मान सकते हैं। इस महाकाव्य में आर्य संस्कृति के सूदूर दक्षिण और श्रीलंका तक प्रसार का वर्णन मिलता है। महर्षि व्यास कृत महाभारत मूलरूप से भरत वंश के दो वंशजों कौरव और पाण्डवों के युद्ध का वर्णन है। महाभारत में एक लाख श्लोक है। इसीलिए इसे 'शतसाहस्री संहिता' कहते हैं।

### 2.3.2.1.1.8 पुराण

पुराण का शाब्दिक अर्थ 'प्राचीन' है। पुराण प्राचीन धर्म, संस्कृति एवं राजवंशों के बारे में विस्तृत सूचना देते हैं। पुराणों की संख्या 18 है, जिनमें ब्रह्म, मत्स्य, विष्णु, भागवत, मार्कण्डेय, गरुड, शिव, अग्नि और ब्रह्माण्ड पुराण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पुराणों का वर्तमान रूप सम्भवतः तीसरी और चौथी शताब्दी ई. में आया।

### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. उपनिषदों का रचना काल क्या माना गया है।

(क) 300 - 500 ई. पू. (ख) 800 - 500 ई. पू.

(ग) 100 - 800 ई. पू. (घ) इनमें से कोई नहीं

2. पुराणों कितने हैं?

- |        |        |
|--------|--------|
| (क) 10 | (ख) 12 |
| (ग) 26 | (घ) 18 |
3. वेदांगों की संख्या कितनी हैं?
- |       |        |
|-------|--------|
| (क) 5 | (ख) 10 |
| (ग) 6 | (घ) 12 |
4. पुराण का शाब्दिक अर्थ हैं?
- |              |                       |
|--------------|-----------------------|
| (क) नया      | (ख) प्राचीन           |
| (ग) प्रशस्ति | (घ) इनमें से कोई नहीं |
5. सबसे प्राचीन वेद कौनसा हैं?
- |              |              |
|--------------|--------------|
| (क) ऋग्वेद   | (ख) सामवेद   |
| (ग) यजुर्वेद | (घ) अथर्ववेद |

### 2.3.2.1 बौद्ध साहित्य

बौद्ध साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत है। बौद्ध साहित्य से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साँस्कृतिक पहलुओं पर व्यापक जानकारी प्राप्त होती है। बौद्ध साहित्य की प्रमुख रचनाएँ हैं, विनयपिटक - विनय पिटक में बौद्ध भिक्षुओं - भिक्षुणियों के आचरण संबंधित नियमों का वर्णन मिलता है। सुत्तपिटक - महात्मा बुद्ध के उपदेशों का सार संग्रहित है। अभिधम्मपिटक - इसमें महात्मा बुद्ध के उपदेशों की दार्शनिक रूप में व्याख्या है। तीनों पिटक 'पाली' भाषा में लिखे गये हैं। जातक - जातक कथाओं में महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों का विवरण है। संख्या में 550 जातक कथाएँ उपलब्ध हैं। ये जातक 500 - 200 ई. पू. की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर बहुमूल्य प्रकाश डालती हैं। मिलिन्दपन्हो - इसमें यूनानी राजा मिनांडर और बौद्ध भिक्षु नागसेन का दार्शनिक वार्तालाप है। इसमें तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक एवं साँस्कृतिक प्रश्नों पर विचार किया गया है। महावंश एवं दीपवंश - महावंश एवं दीपवंश श्रीलंका की रचनाएँ हैं। किन्तु इनसे मौर्यकालीन राजनीतिक एवं साँस्कृतिक पहलुओं पर व्यापक जानकारी प्रदान करती है। इनके साथ ही, महावंश एवं दीपवंश श्रीलंका के राजवंशों पर व्यापक जानकारी प्रदान करती है। ये चौथी या पाँचवी शताब्दी ई. की रचना है। ललितविस्तर - इसमें महायान समुदाय की

विचारधारा के अनुसार बुद्ध के जीवन की कथा का वर्णन है। गान्धार कला एवं जावा के बोरोबुदुर के मंदिर (इण्डोनेशिया) की अनेक स्थापत्य कृतियाँ ललितविस्तर पर आधारित हैं। बुद्धचरित एवं सौन्दरानन्द - अश्वघोष की रचनाएँ 'बुद्धचरित एवं सौन्दरानन्द', तत्कालीन धर्म और राजनीति पर व्यापक जानकारी प्रदान करती हैं। दिव्यावदान - दिव्यावदान मौर्य कालीन राजनीतिक पहलुओं पर व्यापक जानकारी प्रदान करती हैं। इसने अशोक के उत्तराधिकारियों का उल्लेख करते हुए, पुष्य मित्र शुंग तक का वर्णन किया है।

### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. बौद्ध भिक्षुओं - भिक्षुणियों के आचरण संबंधित नियमों का वर्णन किस पिटक में मिलता है?

- |                 |                       |
|-----------------|-----------------------|
| (क) विनय पिटक   | (ख) सुत्तपिटक         |
| (ग) अभिधम्मपिटक | (घ) इनमें से कोई नहीं |

2. महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों का विवरण किस में मिलता है?

- |                     |                       |
|---------------------|-----------------------|
| (क) अभिधम्मपिटक में | (ख) दिव्यावदान में    |
| (ग) जातक कथाओं में  | (घ) इनमें से कोई नहीं |

3. महावंश एवं दीपवंश किस देश की रचनाएँ हैं?

- |          |                       |
|----------|-----------------------|
| (क) भारत | (ख) श्रीलंका की       |
| (ग) चीन  | (घ) इनमें से कोई नहीं |

4. बुद्धचरित एवं सौन्दरानन्द किसकी रचनाएँ हैं?

- |                |                       |
|----------------|-----------------------|
| (क) अश्वघोष की | (ख) कौटिल्य की        |
| (ग) सोमदेव की  | (घ) इनमें से कोई नहीं |

5. ललितविस्तर किस समुदाय की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है?

- |               |               |
|---------------|---------------|
| (क) महायान का | (ख) हीनयान का |
|---------------|---------------|

(ग) दोनों का (घ) इनमें से कोई नहीं

### 2.3.2.2 जैन साहित्य

जैन साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत है। जैन साहित्य से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर व्यापक जानकारी प्राप्त होती है। जैन साहित्य की प्रमुख रचनाएँ हैं, जैन साहित्य में आगम साहित्य का स्थान सर्वोपरि है, इसमें 12 अंग, 12 उपांग, 10 प्रकीर्ण, 6 छंदसूत्र, नन्दिसूत्र, अनुयोगद्वार और मूल सूत्र सम्मिलित हैं। वस्तुतः इसकी रचना 400 ई. पू. से 600 ई. के मध्य हुई। जिनको वर्तमान रूप 512 -13 ई. की बल्लभी में आयोजित संगीति में दिया गया। आगम साहित्य जैन धर्म से संबंधित सूचनाओं के महत्वपूर्ण स्रोत है। आचारांग सूत्र - आचारांग सूत्र में जैन भिक्षुओं के आचरण और नियमों का वर्णन है। भगवती सूत्र - महावीर स्वामी के जीवन के विषय में तथा छठी शताब्दी ई. पू. के उत्तर भारत के महाजनपदों का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विवरण देता है। औपपातिक सूत्र और आवश्यक सूत्र - औपपातिक सूत्र और आवश्यक सूत्र में अजातशत्रु के धार्मिक विचारों का विवरण मिलता है। भद्रबाहु चरित्र - भद्रबाहु चरित्र में चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल की घटनाओं का वर्णन मिलता है। टीकाएँ - जैन धर्म ग्रंथों के टीकाकारों की टीकाएँ धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें हरिभद्र सूरि (705 -77 ई.), शीलांक (832 ई. के लगभग), नेमिचन्द्र सूरि (11वीं शताब्दी), अभयदेव सूरि (11वीं शताब्दी), और मलयगिरि (13 वीं शताब्दी) की टीकाएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। ये टीकाएँ धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथा राजनीति पर प्रकाश डालती हैं।

#### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

- जैन भिक्षुओं के आचरण संबंधित नियमों का वर्णन किस ग्रंथ में मिलता है?
 

(क) आचारांग सूत्र में (ख) औपपातिक सूत्र

(ग) भगवती सूत्र (घ) इनमें से कोई नहीं
- उत्तर भारत के महाजनपदों की सूचना मिलती है?
 

(क) आचारांग सूत्र में (ख) औपपातिक सूत्र

(ग) भगवती सूत्र (घ) इनमें से कोई नहीं
- चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल की घटनाओं का वर्णन किस में मिलता है?

- (क) भद्रबाहु चरित्र में (ख) औपपातिक सूत्र में  
(ग) भगवती सूत्र में (घ) इनमें से कोई नहीं

4. अजातशत्रु के धार्मिक विचारों का विवरण किसमें मिलता है?

- (क) भद्रबाहु चरित्र में (ख) औपपातिक सूत्र और आवश्यक सूत्र में  
(ग) भगवती सूत्र में (घ) इनमें से कोई नहीं

### 2.3.3 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक भारतीय साहित्यिक स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक साहित्यिक ग्रंथ प्रचूर मात्रा में स्रोत सामग्री उपलब्ध कराते है। ये ग्रंथ तत्कालीन जन - जीवन, भौतिक संस्कृति, प्रशासन एवं राजनीति पर व्यापक जानकारी देते है। अर्थशास्त्र - चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा लिखित अर्थशास्त्र मौर्यकालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं राजव्यवस्था का याथोचित ज्ञान करता है। नीतिसार - कामन्दक द्वारा लिखित इस ग्रन्थ से गुप्त कालीन राज्यतंत्र पर प्रकाश पड़ता है। मुद्राराक्षस - विशाखदत्त द्वारा लिखित इस नाटक से चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा नंद वंश के विनाश के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। मालविकाग्निमित्र - कालीदास द्वारा रचित इस नाटक से पुष्यमित्र, शुंग और यवनों के मध्य हुए युद्ध के विषय में जानकारी मिलती है। हर्षचरित - वाणभट्ट रचित इस ग्रन्थ से हर्षवर्धन की उपलब्धियों पर प्रकाश पड़ता है। अष्टाध्यायी - पाणिनी की अष्टाध्यायी से मौर्यकाल से पहले के भारत की राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक दशा की जानकारी मिलती है। गार्गी संहिता - इसमें यवन आक्रमणों का उल्लेख किया गया है। महाभाष्य - पतंजलि द्वारा लिखित महाभाष्य से शुंग - वंश के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। वृहत्कथामंजरी - क्षेमेन्द्र द्वारा लिखित वृहत्कथामंजरी से मौर्यकाल की घटनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। राजतरंगिणी: - कल्हण द्वारा 12 वीं शताब्दी में रचित इस ग्रन्थ से कश्मीर के इतिहास के बारे में सूचना मिलती है। गौडवहो - वाक्पति द्वारा लिखित इस ग्रंथ से कन्नौज के राजा यशोवर्मा की उपलब्धियों के विषय में जानकारी मिलती है। पृथ्वीराज विजय - जयानक के इस ग्रंथ से पृथ्वीराज चौहान की उपलब्धियों की जानकारी मिलती है। पृथ्वीराजरासो - चन्द्रवरदाई द्वारा लिखित इस ग्रंथ से पृथ्वीराज चौहान के विषय में जानकारी मिलती है। नवसाहसांक चरित - परिमलगुप्त द्वारा लिखित इस ग्रंथ से परमार वंश की घटनाओं की जानकारी मिलती है। विक्रमांकदेवचरित - विल्हण द्वारा लिखित इस ग्रंथ से चालुक्य वंश के इतिहास की जानकारी मिलती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. अर्थशास्त्र नामक ग्रंथ किसने लिखा है?
 

(क) कौटिल्य ने	(ख) चन्द्रवरदाई ने
(ग) विल्हण ने	(घ) कल्हण
2. पृथ्वीराजरासों नामक ग्रंथ किसने लिखा है?
 

(क) कौटिल्य ने	(ख) चन्द्रवरदाई ने
(ग) विल्हण ने	(घ) कल्हण
3. राजतरंगिणी नामक ग्रंथ किसने लिखा है?
 

(क) कौटिल्य ने	(ख) चन्द्रवरदाई ने
(ग) विल्हण ने	(घ) कल्हण
4. विक्रमांकदेवचरित नामक ग्रंथ किसने लिखा है?
 

(क) कौटिल्य ने	(ख) चन्द्रवरदाई ने
(ग) विल्हण ने	(घ) कल्हण
5. शंग - वंश के इतिहास की जानकारी किससे मिलती है?
 

(क) विक्रमांकदेवचरित से	(ख) राजतरंगिणी से
(ग) पृथ्वीराजरासों से	(घ) महाभाष्य से

### 2.3.4 विदेशी लेखकों के ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत

भारतीय इतिहास के अनुशीलन से विदित है कि प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रयोजनों से प्रेरित होकर भारत भूमि के भ्रमण हेतु अनेक विदेशी यात्री आये, जिनमें से कई विदेशी आक्रान्ताओं के साथ, कई विदेशी राजदूतों के रूप में, कई व्यापारी के रूप में, कई पर्यटक के रूप में तथा कई अपनी ज्ञान पिपासा को मिटाने भारत यात्रा पर आये और उन्होंने अपने अनुभव एवं संस्मरणों को लिपिबद्ध किया, जोकि भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश डालते हैं।

### 2.3.5 यूनानी लेखकों का साहित्य

यूनानी लेखकों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत सामग्री उपलब्ध करायी है। यूनानी लेखकों के लेखन से भारतीय इतिहास की तिथि निर्धारण में बहुत सहयोग मिला है। स्काईलैक्स (छठी शताब्दी ई. पू.) -

स्काईलैक्स यह पर्शिया (ईरान) नरेश दारा प्रथम (डेरियस प्रथम) का यूनानी सेनापति था। भारत के बारे में स्काईलैक्स की जानकारी सिन्धु - घाटी तक सीमित है। हेरोडोटस (पाँचवी शताब्दी ई. पू.) - 'इतिहास का पिता' यूनानी विद्वान हेरोडोटस ने 476 ई. पू. के लगभग अपने ग्रंथ

‘हिस्टोरिका’ में भारत के उत्तर - पश्चिम क्षेत्र तथा पारसिक साम्राज्य के भारत में अधिकार, व्यापारिक संबंधों आदि के बारे में सूचना दी है। निआर्कस (327 - 26 ई० पू०) - यह सिकंदर के जहाजी बेड़े का कप्तान था। स्ट्रैबो और एरियन की पुस्तकों में निआर्कस के लेखों की जानकारी संग्रहित है। एरिस्टीब्यूलस (327 - 26 ई० पू०) - सिकंदर के साथ भारत आए इस यूनानी विद्वान ने ‘हिस्ट्री ऑफ द वार’ में भारत का विवरण दिया। एरियन और प्लूटार्क की पुस्तकों में एरिस्टीब्यूलस के लेखों की जानकारी संग्रहित है। मेगास्थनीज (305 - 297 ई० पू०) - यूनानी सम्राट सेल्यूकस का राजदूत, चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में 9 वर्ष रहा। उसने अपनी पुस्तक ‘इण्डिका’ में चंद्रगुप्त मौर्य के प्रशासन, राजनीति, तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं का महत्वपूर्ण विवरण दिया है।

डीमेकस या डाइमेकस (298-273 ई० पू०) - सीरिया नरेश अंतिओकस - प्रथम का राजदूत, बिन्दुसार के दरबार में कई बार आया। स्ट्रैबो के लेखों में डीमेकस या डाइमेकस द्वारा दी गयी सूचना मिलती है। डायोनिसियस (284-262 ई० पू०) - मिस्र नरेश टॉलमी फिलाडेल्फस का राजदूत, मौर्य सम्राट बिन्दुसार के दरबार में आया था। स्ट्रैबो आदि परिवर्ती यूनानी लेखकों ने तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं पर इसके उद्धरणों का प्रयोग किया है। स्ट्रैबो (ईसा की प्रथम शताब्दी) - यूनानी यात्री स्ट्रैबो ने अनेक देशों की यात्रा की जिसमें सम्भवतः भारत भी सम्मिलित था ने अपने ग्रंथ ‘ज्योग्राफी’ में मौर्यकालीन इतिहास पर प्रकाश डाला है। प्लिनी (77 - 78 ई०) ईसा की प्रथम शताब्दी में भारत का भ्रमण करने वाले इस यूनानी लेखकने अपनी पुस्तक ‘नेचुरल हिस्ट्री’ में भारत और रोम के समृद्ध व्यापार का वर्णन किया है। वह लिखता है कि “भारत के साथ व्यापार में रोम का स्वर्ण भण्डार कम होता जा रहा है।”

पेरिप्लस का अज्ञात लेखक (लगभग 80 - 115 ई०) - ‘पेरीप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी’ का अज्ञात यूनानी लेखक, जो प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी के मध्य हिन्द महासागर की यात्रा पर निकला था। उसके ग्रंथ में भारत के बन्दरगाहों, भारत, रोम, चीन आदि के व्यापार का वर्णन मिलता है। टॉलमी (दूसरी शताब्दी ई०) - प्रसिद्ध रोमन भूगोलवेत्ता टॉलमी यद्यपि भारत नहीं आया था , तथापि उसकी ‘ज्योग्राफी’ में भारत विषयक महत्वपूर्ण भौगोलिक विवरण मिलता है। एरियन (दूसरी शताब्दी ई०) - यूनानी लेखक एरियन ने ‘इण्डिका’ और ‘सिकंदर का आक्रमण’ में सिकंदर के समकालीन लेखकों और मेगास्थनीज के विवरणों पर भारत का इतिहास लिखा।

### 2.3.6 चीनी लेखकों का साहित्य

चीनी लेखकों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत सामग्री उपलब्ध करायी है। चीनी लेखकों में बहुत सारे लेखकों ने धार्मिक ज्ञान पिपासा को मिटाने भारत यात्रा की तथा भारत भूमि के भ्रमण किया। चीनी लेखकों ने धार्मिक ग्रंथों

का चीनी भाषा में अनुवाद करके धार्मिक भारतीय ज्ञान को चिरस्थायी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। चीनी लेखकों का विवरण भारतीय इतिहास लेखन में बहुत महत्व रखता है। सुमाचीन - 'चीनी इतिहास का जन्मदाता' सुमाचीन ने ई० पू० प्रथम शताब्दी में लिखे इतिहास ग्रंथ में भारतवर्ष के संबंध में उल्लेख किया है। फाह्यान (399 - 414 ई०) - फाह्यान 399 ई० में चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में भारत आया और 15 - 16 वर्षों तक भारत में रहा। इसका विवरण तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि पर तत्कालीन भारत का चित्रण करता है। ह्वेनसांग (629 - 643 ई०) - यह चीनी बौद्ध यात्री सम्राट हर्षवर्द्धन के काल में 629 ई० में आया और 13 वर्षों तक भारत भ्रमण किया। इसका विवरण तत्कालीन धार्मिक, राजनीति, समाज, दंड - विधान आदि पर प्रकाश डालता है। इत्सिंग (675 - 695 ई०) - यह चीनी बौद्ध यात्री कई वर्षों तक नालन्दा एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय में अध्ययनरत रहा। इसने भारत और मलाया द्वीपों में प्रचलित बौद्ध धर्म का विवरण अपने ग्रंथ में किया है। तारानाथ (बारहवीं शताब्दी ई०) - तिब्बती लामा तारानाथ के ग्रंथ 'तंग्यूर' और 'कंग्यूर' भारत पर प्रकाश डालते

### 2.3.7 अरबी लेखकों का साहित्य

अरबी लेखकों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत सामग्री उपलब्ध करायी है। अरबी लेखकों में बहुत सारे लेखक आक्रमकारियों के भारत यात्रा पर आये और बहुत से बाद में भारत में ही वश गये। अरबी लेखकों का विवरण प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में बहुत महत्व रखता है। सुलेमान (नवीं शताब्दी ई०) - इस अरबी यात्री ने फारस की खाड़ी से होकर भारत व चीन की यात्राएँ की थी। इसने अपने यात्रा वृत्तान्त में राष्ट्रकूट, पालवंश एवं प्रतिहार जैसे राजपूत राज्यों का वर्णन किया है। इब्ने खुर्दादब (नवीं शताब्दी ई०) - इस अरबी यात्री ने अपने ग्रन्थ 'किताबुल-मसालक-वल-मामलिक' में तत्कालीन भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक दशा का विस्तार से वर्णन किया है। अलबिला दुरी (नवीं शताब्दी ई०) - इस अरबी यात्री ने अपने ग्रन्थ 'फुतूहल-बुल्दान' में भारत पर अरब आक्रमण एवं उसके प्रभाव का वर्णन किया है। अलबरुनी (1000 - 1030 ई०) - यह महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। 'तहकीके-हिन्द' में तत्कालीन भारत के विषय में व्यापक जानकारी दी है। अलबरुनी का सभी अरबी लेखकों में सबसे महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय है। अल इदरीसी (ग्यारहवीं शताब्दी ई०) - यह अरब यात्री अपने भारत भ्रमण वृत्तान्त 'नुज्जुल-मुश्ताक' में राष्ट्रकूट, चोल, चालुक्य राज्यों तथा भारत के चीन एवं फारस के साथ व्यापारिक संबंधों पर महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. 'तंग्यूर' और 'कंग्यूर' नामक ग्रंथ किसने लिखे हैं?  
 (क) अलबरूनी ने (ख) इत्सिंग ने  
 (ग) तारानाथ ने (घ) कल्हण
2. तहकीके-हिन्द नामक ग्रंथ किसने लिखा है?  
 (क) अलबरूनी ने (ख) अल इदरीसी ने  
 (ग) सुलेमान ने (घ) इब्ने खुर्दादब
3. 'इण्डिका' नामक ग्रंथ किसने लिखा है?  
 (क) कौटिल्य ने (ख) एरियन ने  
 (ग) प्लूटार्क ने (घ) मेगास्थनीज ने
4. 'नेचुरल हिस्ट्री' नामक ग्रंथ किसने लिखा है?  
 (क) मेगास्थनीज ने (ख) प्लिनी ने  
 (ग) एरियन ने (घ) प्लूटार्क ने
5. फाह्यान किसके काल में भारत आया था?  
 (क) चंद्रगुप्त मौर्य के (ख) बिन्दुसार के  
 (ग) चन्द्रगुप्त द्वितीय के (घ) हर्षवर्द्धन के

## 2.4 सारांश

इस प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत प्रचूर मात्रा में पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्रोतों के रूप में उपलब्ध है। जो प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। पुरातात्विक स्रोत सामग्री के अंतर्गत अभिलेख, मुद्राएँ, स्मारक भवन, मूर्तियाँ, तथा पुरातात्विक अवशेषों से प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में बड़ी भूमिका का निर्वहन किया है। प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्यिक स्रोत ब्राह्मण अथवा वैदिक साहित्य, बौद्ध साहित्य एवं जैन साहित्य ने प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में उपयोगी भूमिका निभायी है। प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक साहित्यिक ग्रंथों ने प्रचूर मात्रा में स्रोत सामग्री उपलब्ध कराके महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसके साथ ही, विदेशी लेखकों ने भी प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत सामग्री उपलब्ध करायी है। यूनानी लेखकों के लेखन से भारतीय इतिहास की तिथि निर्धारण में बहुत ही उपयोगी भूमिका निभायी है। चीनी एवं अरबी विदेशी लेखकों के वृत्तांतों ने तत्कालीन धर्म, संस्कृति एवं सामाजिक दशा पर बहुत अच्छा प्रभाव डाला है।

## 2.5 तकनीकी शब्दावली

प्राकार:	चहार - दीवार
पात्र :	घड़े
मुद्राएँ:	सिक्के
टैराकोट:	मिट्टी की वस्तुएँ
मृद्भाण्ड:	मिट्टी के घड़े
कृति:	रचना
पिटक:	टोकरी
वार्तालाप:	बातचीत
संगीति:	सम्मेलन

## 2.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 2.3.1.1 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.3.1.1 अभिलेख
2. देखिए 2.3.1.1 अभिलेख
3. देखिए 2.3.1.1 अभिलेख
4. देखिए 2.3.1.2 मुद्राएँ
5. देखिए 2.3.1.3 स्मारक

इकाई 2.3.2.1.1.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.3.2.1.1.4 उपनिषद
2. देखिए 2.3.2.1.1.8 पुराण
3. देखिए 2.3.2.1.1.5 वेदांग
4. देखिए 2.3.2.1.1.8 पुराण
5. देखिए 2.3.2.1.1.1 वेद

इकाई 2.3.2.1.2 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.3.2.1.2 बौद्ध साहित्य
2. देखिए 2.3.2.1.2 बौद्ध साहित्य
3. देखिए 2.3.2.1.2 बौद्ध साहित्य

4. देखिए 2.3.2.1.2 बौद्ध साहित्य

5. देखिए 2.3.2.1.2 बौद्ध साहित्य

इकाई 2.3.2.1.3 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.3.2.1.3 जैन साहित्य

2. देखिए 2.3.2.1.3 जैन साहित्य

3. देखिए 2.3.2.1.3 जैन साहित्य

4. देखिए 2.3.2.1.3 जैन साहित्य

इकाई 2.3.2.2 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.3.2.2 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत

2. देखिए 2.3.2.2 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत

3. देखिए 2.3.2.2 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत

4. देखिए 2.3.2.2 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत

5. देखिए 2.3.2.2 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत

इकाई 2.3.2.3.2 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.3.2.3.2 चीनी लेखकों का साहित्यिक

2. देखिए 2.3.2.3.3 अरबी लेखकों का साहित्यिक

3. देखिए 2.3.2.3.1 यूनानी लेखकों का साहित्यिक

4. देखिए 2.3.2.3.1 यूनानी लेखकों का साहित्यिक

5. देखिए 2.3.2.3.2 चीनी लेखकों का साहित्यिक

## 2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओमप्रकाश - प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 1986
2. ओमप्रकाश - प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1986
3. बाशम, ए. एल. - अद्भुत भारत, आगरा, 1987
4. झा एवं श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 2000
5. मिश्र, जयशंकर - प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 2006
6. मजूमदार, रायचौधरी, दत्त - भारत का बृहत्, इतिहास, खण्ड 1, नई दिल्ली, 1970
7. मजूमदार, रमेशचन्द्र - प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973
8. महाजन, विद्याधर - प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008

9. पाण्डेय, विमल चन्द्र - प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग1, इलाहाबाद, 1998,
10. शुक्ल, डॉ0 गिरीश चंद्र एवं पाण्डेय, डॉ0 विमलेश कुमार - प्राक् एवं प्रागैतिहासिक भारतीय पुरातत्व, नई दिल्ली, 2002
11. शर्मा, रामशरण - प्रारंभिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
12. त्रिपाठी, आर० ए०- प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998

---

## 2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

1. दुबे, सत्यनारायण - भारत का राजनीतिक इतिहास, प्रारंभ से 1761 ई. तक, इन्दौर, 1994
2. मित्तल, डॉ0 ए० के० - यूनीफाइड इतिहास, आगरा, 2006
3. श्रीवास्तव, के० सी० - प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहबाद, 2007
4. शर्मा, आनन्द कुमार - भारतीय संस्कृति एवं कला, नई दिल्ली, 2011
5. शर्मा, आनन्द कुमार - दक्षिण भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2011

---

## 2.9 निबंधात्मक प्रश्न

---

- प्रश्न 1. प्राचीन भारतीय इतिहास के पुरातात्विक स्रोतों का विवरण दीजिये?
- प्रश्न 2. प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक स्रोतों का विवरण दीजिये?
- प्रश्न 3. लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक भारतीय साहित्यिक स्रोतों का विवरण दीजिये?
- प्रश्न 4. विदेशी लेखकों के ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोतों का विवरण दीजिये?

## इकाई तीन - प्राचीन भारत में वर्ण-व्यवस्था , आश्रम व्यवस्था , पुरूषार्थ , जाति व्यवस्था

- 
- 3.1 प्रस्तावना
  - 3.2 उद्देश्य
  - 3.3 वर्ण व्यवस्था
    - 3.3.1 वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के सिद्धान्त
      - 3.3.3.1 दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त
      - 3.3.3.2 गुण का सिद्धान्त
      - 3.3.3.3 रंग से उत्पत्ति का सिद्धान्त
      - 3.3.3.4 कर्म का सिद्धान्त
      - 3.3.3.5 जन्म का सिद्धान्त
  - 3.4 आश्रम व्यवस्था
    - 3.4.1 ब्रह्मचर्य आश्रम
    - 3.4.2 गृहस्थ आश्रम
    - 3.4.3 वानप्रस्थ आश्रम
    - 3.4.4 सन्यास आश्रम
  - 3.5 पुरूषार्थ
    - 3.5.1 धर्म
    - 3.5.2 अर्थ
    - 3.5.3 काम
    - 3.5.4 मोक्ष
  - 3.6 जाति-व्यवस्था
    - 3.6.1 जाति व्यवस्था की विशेषताएँ
      - 3.6.1.1 वैवाहिक प्रतिबंध
      - 3.6.1.2 व्यवसाय पर प्रतिबंध
      - 3.6.1.3 भोजन और खान-पान पर नियंत्रण
      - 3.6.1.4 जातियों की सामाजिक धार्मिक विशेषाधिकार एवं निर्योग्यताएँ
      - 3.6.1.5 संस्तरण
  - 3.9 सारांशं
  - 3.10 पारिभाषिक शब्दावली
  - 3.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
  - 3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
  - 3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
  - 3.14 निबंधात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय समाज की आधारभूत एवं भौतिक व्यवस्था थी। प्राचीन भारतीय समाज की आधारशिला के रूप में वर्ण व्यवस्था ने कार्य किया है। भारतीय ऋषि मुनियों एवं विद्वानों के मस्तिष्क की यह अद्भुत उपज थी जो विश्व में अपने प्रकार की भौतिक एवं अनोखी व्यवस्था थी। कार्य विभाजन पर आधारित यह व्यवस्था व्यक्ति एवं समाज में विकास के भूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित थी। यह एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसमें वर्ग सहयोग की भावना निहित थी, तथा जिसमें समाज का सम्पूर्ण कार्य सुचारू रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चतुर्वर्णों में विभाजित था। इस व्यवस्था में चारों वर्णों के कार्य एवं कर्तव्य पारिभाषित एवं व्याख्यायित किये गये थे। कार्य विभाजन पर आधारित होने के बावजूद वर्ण व्यवस्था में चारों वर्णों के लिए अन्यान्याश्रितता का सिद्धान्त भी निहित था।

आश्रम व्यवस्था की उत्पत्ति किसी न किसी रूप में वैदिक काल में हो गयी थी, अन्तर वैदिक कालीन अनेक अंको से आश्रम व्यवस्था के होने से संकेत मिलते हैं। तैत्तरीय संहिता, शतपथ ब्राह्मण, एतरेय ब्राह्मण आदि में आश्रम व्यवस्था की विद्यमानता के प्रमाण निहित हैं। छांदोग्य उपनिषद् में गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा ब्रह्मचर्य तीन आश्रमों का उल्लेख हुआ है।

भारतीय धर्मशास्त्रों, उपनिषदों, भगवद्गीता एवं स्मृतियों में मनुष्य के जीवन के मूल कर्तव्यों में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थों का वर्णन है। जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति के लिए पुरुषार्थों की प्राप्ति को आवश्यक बताया गया है। जीवन के अन्तिम उद्देश्य 'मोक्ष' अर्थात् जन्म-मरण के बंधन से मुक्त परब्रह्म परमात्मा में समा जाने के लिए धर्म, अर्थ और काम को सफलतापूर्वक प्राप्त करना आवश्यक है।

'जाति व्यवस्था' जन्म पर आधारित व्यवस्था है, जिसमें विवाह, खान-पान, ऊँच-नीच, जैसे प्रतिबंध जाति के सदस्यों पर रहते हैं। तात्पर्य यह है कि एक जाति का सदस्य, दूसरी जाति में विवाह नहीं कर सकता, दूसरी जाति के व्यवसाय को नहीं अपना सकता, ऊँची जाति के लोग नीची जाति के लोगों के साथ भोजन नहीं कर सकते हैं और एक जाति के सदस्य पर ये नियम कठोरता से लागू होते हैं, इनके उल्लंघन पर जाति से बहिष्कार का दण्ड दिया जा सकता है।

### 3.2 उद्देश्य

इस पाठ/इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारत में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ, जाति व्यवस्था के ज्ञान से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रकृत के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था
2. प्राचीन काल में आश्रम व्यवस्था
3. प्राचीन काल में पुरुषार्थ
4. प्राचीन काल में जाति व्यवस्था

### 3.3 वर्ण व्यवस्था

वर्ण शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की वृ, वृत, वरी या वरी धातु से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ चुनना या वरण करना है। वस्तुतः वर्ण से तात्पर्य वृत्ति अर्थात् व्यवसाय का चुनाव करने से है। इस प्रकार वर्ण के शाब्दिक अर्थ से स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति अपनी पसंद के व्यवसाय चुनाव का सकता था और व्यवसाय के चुनाव के साथ ही व्यक्ति का वर्ण निश्चित हो जाता था। सर्वप्रथम वर्ण शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में रंग के अर्थ में हुआ है। ऋग्वेद में आर्यों को श्वेत (गोरा) वर्ण (रंग) तथा अनार्यों (दास, दस्यु) को श्याम (काला, कृष्ण) वर्ण (रंग) का कहा गया है। ऋग्वेद में आर्यों और अनार्यों के बीच अनेक शारीरिक एवं सांस्कृतिक अंतरों का वर्णन किया गया है अतः स्पष्ट है कि ऋग्वेद काल में रंग के आधार पर वर्ण निश्चित होता था।

प्रारम्भिक वैदिक काल (1500-1000 ई0प0) अर्थात् ऋग्वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था नामक सामाजिक व्यवस्था नहीं थी। आर्यों और अनार्यों को क्रमशः श्वेत और श्याम रंग के साथ ही, प्रजातीय एवं सांस्कृतिक आधार पर स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया था। ऋग्वेद में ब्रह्म, क्षत्र और विश तीन शब्दों का प्रयोग क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं जन साधारण वर्ग के लिए हुआ है। शूद्र शब्द का प्रयोग पूरे ऋग्वेद में मात्र दशवें मण्डल में हुआ है। इस प्रकार पूर्व वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था स्थापित नहीं थी और समाज में किसी प्रकार का सामाजिक और आर्थिक भेदभाव तथा प्रतिबंध नहीं था।

उत्तर वैदिक काल (1000-500 ई0प0) अर्थात् यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं महाकाव्यों (रामायण-महाभारत) के काल में वर्ण व्यवस्था समाज में पूर्णतः स्थापित हो गयी थी। समाज में स्तरीकरण का सिद्धान्त स्थापित हो चुका था, चारों वर्णों के अधिकार और कर्तव्य सुनिश्चित हो चुके थे और वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित हो चुकी थी। किन्तु सब कुछ स्पष्ट रूप से परिभाषित होने के बावजूद आसानी से वर्ण परिवर्तन किया जा सकता था ऊँच-नीच का कठोर बंधन अभी कायम नहीं हुआ था।

सूत्र काल (600-300 ई0प0) अर्थात् श्रौतसूत्र, गृहसूत्र एवं धर्मसूत्र के रचनाकाल में वर्ण व्यवस्था समाज में कठोरता से स्थापित हो चुकी थी। वर्ण व्यवस्था को पूर्णतः जन्म पर आधारित कर

दिया गया था। समाज में खानपान, व्यवसाय ऊँच-नीच का भेदभाव स्थापित हो चुका था। इस काल में ब्राह्मणों और क्षत्रियों की स्थिति मजबूत हुई। वैश्यों से शिक्षा का अधिकार छीन लिया गया। उनकी स्थिति में गिरावट आनी प्रारंभ हो गयी। वहीं शूद्रों की स्थिति अत्यंत निम्न स्तर की हो गयी थी, उनसे शैक्षणिक और धार्मिक अधिकार छीन लिये गये थे।

बौद्ध काल में वर्ण व्यवस्था को जन्म के स्थान पर कर्म की प्रधानता प्रदान की गयी। बौद्ध ग्रंथों में वर्ण व्यवस्था, उसकी ऊँच-नीच की भावना आदि की कठोर शब्दों में निंदा की गयी। कर्म की प्रधानता ने ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को समाप्त कर दिया। बौद्ध ग्रंथों में क्षत्रियों को ब्राह्मणों से श्रेष्ठ बताया गया है। क्षत्रियों की स्थिति बौद्ध काल में अत्यन्त शक्तिशाली हो गयी थी। पहले की तुलना में वैश्यों की स्थिति में सुधार हुआ। शूद्रों की स्थिति में भी कुछ सुधार हुआ उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनाया प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु फिर भी बहुसंख्यक शूद्रों की स्थिति में विशेष कोई फर्क नहीं पड़ा। तृतीय शताब्दी ईशा पूर्व से बारहवीं शताब्दी ईशा तक के काल में वर्ण व्यवस्था पूर्णतः जन्म पर आधारित हो गयी। अभिलेखों एवं साहित्यिक साक्ष्यों में उल्लेखित है कि राजा वर्णाश्रम धर्म को समाज में प्रतिष्ठित करने के लिये संकल्पित रहे। वर्ण व्यवस्था अत्यंत कठोर हो गयी थी। किसी को भी अपने निर्धारित अधिकार और कर्तव्यों की सीमा को लांघने की छूट नहीं थी।

अतः हम कह सकते हैं कि ऋग्वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के बीज समाज में पड़े, उत्तरवैदिक में यह अंकुरित होकर पौधा बना, सूत्रकाल में यह वृक्ष बनकर फली-फूली एवं 12 वी शताब्दी तक यह वर्ण व्यवस्था का यह वृक्ष सशक्त होकर वट-वृक्ष बन गया। जिसे हिलाना कठिन तो नहीं पर असंभव हो गया था।

### 3.3.1 वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के सिद्धान्त

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के संबंध में अनेक तर्क दिये गये हैं जो निम्न लिखित है:-

#### 3.3.3.1 दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त में वर्णों की उत्पत्ति दैवी (ईश्वरी) मानी गयी है अर्थात् इसका सीधा अर्थ यह है कि वर्ण व्यवस्था देव कृपा से उत्पन्न हुई है या देवताओं ने वर्णों को निर्मित किया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (10.90.12) में सर्वप्रथम वर्ण व्यवस्था को देवकृत बताया गया है जहां उल्लेखित है -

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

उरूदत्तस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

अतः ऋग्वेद में वर्णित है कि विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उर (पेट) से वैश्य तथा पद (पैर) से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार मत्स्य पुराण, वायु पुराण, विष्णु पुराण,

ब्रह्मांड पुराण, महाभारत एवं गीता में भी ईश्वर (देव) से वर्णों की उत्पत्ति बतायी गयी है। बहुत संभव है वर्ण व्यवस्था को दैवी उत्पत्ति से इसी लिए जोड़ा गया हो ताकि कोई इस नियम व्यवस्था का उल्लंघन न करे।

### 3.3.3.2 गुण का सिद्धान्त

गुण के सिद्धान्त को मानने वाले विद्वानों का मानना है कि वर्ण व्यवस्था में वर्णों का निर्धारण गुण के आधार पर हुआ है और गुणों के आधार पर ही चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई है। गीता और सांख्य दर्शन स्पष्ट कहते हैं कि प्रकृति का विकास त्रि-गुणों - सत्व, रज, तम से हुआ है। भगवत गीता, मनुस्मृति, विष्णु पुराण आदि में सत्व गुण से ब्राह्मण की रजोगुण से क्षत्रिय, रज एवं तम गुण से वैश्य की तथा तम गुण से शूद्र की उत्पत्ति बतायी है। सत्व गुण ज्ञान- विज्ञान, वेदज्ञ, धर्मज्ञ, शुद्ध आचरण युक्त, रज गुण, शौर्य, शक्ति प्रदर्शन, रक्षा कार्य, तथा तम गुण लोभ, प्रमादयुक्त, अज्ञानयुक्त होता था। अतः जो व्यक्ति जिस गुण का होता था, उस गुण के साथ ही उसका वर्ण निर्धारित हो जाता था।

### 3.3.3.3 रंग से उत्पत्ति का सिद्धान्त

रंग से वर्ण की उत्पत्ति के सिद्धान्त से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का रंग के आधार वर्ण निर्धारित होता था। रंग के सिद्धान्त की जड़ें सर्वप्रथम ऋग्वेद में ही मिलती हैं। जहाँ श्वेत वर्ण आर्यों का तथा कृष्ण वर्ण अनार्यों (दास) का बताया गया। इसके साथ ही आर्यों और अनार्यों की शारीरिक, प्रजातीय एवं सांस्कृतिक भिन्नताओं का भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के शान्ति पर्व में रंग से उत्पत्ति के सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या की गयी है कि ब्रह्मा ने चारों वर्णों की उत्पत्ति की है, जिसमें ब्राह्मण का श्वेत रंग, क्षत्रिय का लाल रंग, वैश्य का पीला रंग तथा शूद्र का काला है। -

ब्रह्मणानां हु सितो क्षतियाणां तु लोहितः।

वैश्यानां पीतको वर्ण शूद्राणामसितस्तथा ॥

### 3.3.3.4 कर्म का सिद्धान्त

कर्म के सिद्धान्त से वर्ण की उत्पत्ति से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही फल अर्थात् वर्ण मिलेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति जितना अधिक सद्कर्म करेगा, उसे उतना ही अच्छा वर्ण अगले जन्म में मिलेगा। कर्म के सिद्धान्त में अपने वर्ण के लिए निर्धारित कर्तव्यों के व्यवस्थित ढंग से कार्य करते रहने की शिक्षा भी निहित है और इसे ही वर्ण धर्म की संज्ञा भी दी गयी है। महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित है कि पहले सिर्फ ब्राह्मण की ही उत्पत्ति हुई थी, बाद में कर्मानुसार विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति हुई। छांदोग्य, बृहदारण्यक उपनिषदों, ब्राह्माण्ड पुराण, वायु

पुराण आदि में कर्मफल के अनुसार पुनर्जन्म की बात कही गयी है। अतः कर्म का सिद्धान्त व्यक्ति के कर्मों के अनुसार वर्ण के निर्धारण की बात करता है।

### 3.3.3.5 जन्म का सिद्धान्त

जन्म से वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के सिद्धान्त से तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति का जन्म, जिस कुल या वर्ण में हुआ है, वह जीवन पर्यन्त उसी वर्ण का कहलायेगा, चाहे उसके कर्म कैसे भी हो, कुछ भी हो। अर्थात् ब्राह्मण कुल में जन्मा व्यक्ति कर्मों से चाहे अज्ञानी या अधम हो ब्राह्मण ही रहेगा और शूद्र या अन्य वर्ण का कोई भी व्यक्ति चाहे कितना भी ज्ञानी या धार्मिक हो ब्राह्मण नहीं बन सकता। इस के ज्वलंत उदाहरण द्रोणाचार्य, कृपाचार्य अश्वत्थामा, परशुराम आदि हैं, जिन्होंने अपने क्षत्रिय कर्म से पृथ्वीलोक में मिसाल कायम की थी, किन्तु वे सदैव ब्राह्मण ही कहलाये और विश्वामित्र कठोर तप और अपार ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी क्षत्रिय से ब्राह्मण कभी नहीं बन पाये। महाभारत में वर्णित कर्ण महाबली, महादानी और श्रेष्ठ क्षत्रिय कर्म करने के बाद भी सूत पुत्र ही कहा गया। अतः स्पष्ट है कि वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित हो चुकी थी।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए

1. वर्तमान में जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित व्यवस्था है
2. ऋग्वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था नामक सामाजिक व्यवस्था नहीं थी
3. सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति का विकास त्रि-रंगों - सफेद, लाल और काले से हुआ है।

## 3.4 आश्रम व्यवस्था

भारतीय संस्कृति की आश्रम व्यवस्था विश्व के सामाजिक इतिहास एवं संस्कृति के लिए अदभुत एवं अभूतपूर्व देन है। भारतीय मनीषियों ने अपने मौलिक चिंतन से आश्रम व्यवस्था के रूप में एक ऐसी व्यवस्था का सृजन किया, जिसमें व्यक्ति के जीवन का वैज्ञानिक विभाजन करके जीवन के प्रत्येक भाग का समुचित एवं सुनियोजित उपयोग का मूलमंत्र निहित था। भारतीय मनीषियों की इस चिंतनशील व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य व्यक्ति का आध्यात्मिक उत्थान करना था। भारतीय मनीषियों ने बड़ी समझबूझ और योग्यता से व्यक्ति के जीवन का प्रबंधन किया तथा 100 वर्षों का जीवनकाल मानकर 25-25 वर्षों के चार भागों (आश्रमों) में विभाजित किया। इस विभाजन की पृष्ठभूमि में प्रत्येक भाग की विशिष्ट उपयोगिता एवं विशेषता थी, जिसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ समाज को मिलना था। जैसा कि डॉ. जयशंकर मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि “आश्रम व्यवस्था का

दर्शन प्राचीन व्यवस्थाकारों के अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। उन्होंने जीवन की वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए ज्ञान, कर्तव्य, त्याग और आध्यात्म के आधार पर मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास नामक चार आश्रमों में विभाजित किया है, जिसका अन्तिम लक्ष्य था मोक्ष की प्राप्ति।“

आश्रम शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की ‘श्रम’ धातु से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ परिश्रम करना है। इस प्रकार आश्रम मनुष्य को जीवन यात्रा के वह पड़ाव या विश्राम स्थल, जहाँ मनुष्य धर्मानुसार सामाजिक दायित्वों को पूर्ण करके अगले आश्रम की तैयारी करता है और अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की ओर बढ़ता है। इसीलिए महाभारत में शान्तिपूर्व में ठीक ही कहा गया है कि आश्रम ब्रह्मलोक तक पहुँचने के मार्ग की चार सीढ़ियाँ हैं।

आश्रम व्यवस्था की उत्पत्ति किसी न किसी रूप में वैदिक काल में हो गयी थी, अन्तर्गत वैदिक कालीन अनेक अंकों से आश्रम व्यवस्था के होने से संकेत मिलते हैं। तैत्तिरीय संहिता, शतपथ ब्राह्मण, एतरेय ब्राह्मण आदि में आश्रम व्यवस्था की विद्यमानता के प्रमाण निहित हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा ब्रह्मचर्य तीन आश्रमों का उल्लेख हुआ है।

### 3.4.1 ब्रह्मचर्य आश्रम

व्यक्ति के शैक्षणिक विकास और ज्ञानमय उत्कर्ष की आधार शिला के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम का विधान किया गया था। ब्रह्मचर्य आश्रम में बालक घर से दूर गुरु के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करता था, यह शिक्षा धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक रूप से बालक का उत्थान करती थी। ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों ब्रह्म और चर्य से मिलकर बना है, जिनका शाब्दिक अर्थ क्रमशः वेद या ब्रह्म का विचरण करना या अनुसरण करना है, इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ महान मार्ग का अनुसरण करना है। बालक का ब्रह्मचर्य जीवन, उपनयन संस्कार के बाद प्रारम्भ होता था। मनु के अनुसार ब्राह्मण बालक 8 वर्ष की आयु में क्षत्रिय बालक 11 वर्ष की आयु में तथा वैश्य बालक 12 वें वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता था। ब्रह्मचर्य आश्रम में बालक गुरु के आश्रम में कठोर अनुशासन, धर्मानुसार नियमित दिनचर्या, संयम और शुद्ध आचरण की प्रबन्धित जीवन शैली के आध्यात्मिक आचरण में शिक्षा ग्रहण करता था। ब्रह्मचर्य आश्रम का मूल उद्देश्य भी बालक का शैक्षणिक उत्थान करना था। 25 वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य जीवन में रहने के बाद युवा बालक गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता था।

### 3.4.2 गृहस्थ आश्रम

गृहस्थ आश्रम को आश्रम व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु माना जाता है क्योंकि सारे आश्रमों को पोषण करने का दायित्व गृहस्थ आश्रम पर ही है, इसके साथ ही समाज के आध्यात्मिक एवं

सामाजिक उत्थान के लिए एक स्तंभ के रूप में गृहस्थ आश्रम कार्य करता था। व्यक्ति 25 वर्ष की आयु में विवाह संस्कार पूर्ण कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। हिन्दू धर्मशास्त्रों में गृहस्थ आश्रम में सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्यों का विस्तृत विवरण दिया गया है। गृहस्थ आश्रम में ही षोडस संस्कारों की संपन्नता, पंच महायज्ञों ( ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ) की संपन्नता, ऋणों (देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण) से मुक्ति तथा पुरुषार्थों की संपादन करता था। मनुस्मृति में कहा गया है कि, लौकिक और पारलौकिक सुख समृद्धि की कामना रखने वाले व्यक्ति को गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों और दायित्वों का लगन और परिश्रम से पालन करना चाहिए। व्यक्ति का गृहस्थ आश्रम 25 से 50 वर्ष की आयु का होता था। इसके बाद व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। यह आश्रम व्यक्ति के जीवन की कर्मभूमि होता है।

### 3.4.3 वानप्रस्थ आश्रम

गृहस्थ आश्रम की समाप्ति और 50 वर्ष की आयु पूर्ण होने के बाद व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। वानप्रस्थ आश्रम को वैखानस आश्रम भी कहा जाता था। मनु ने गृहस्थ आश्रम से वानप्रस्थ आश्रम में जाने के प्रतीकों का वर्णन करते हुए कहा है कि जब मनुष्य के सिर के बाल सफेद होने लगें, शरीर की त्वचा शिथिल होकर झुर्रियां देने लगे तथा उसके पौत्र हो जाये तो उसे वानप्रस्थी (जंगल की ओर प्रस्थान) हो जाना चाहिए। वानप्रस्थ में व्यक्ति को संयमित, त्यागमय, विरक्त एवं कठोर धर्मानुसार अनुशासन में बद्ध जीवन यापन करने का सुझाव शास्त्र देते हैं। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति सांसारिक भौतिक सुखों को परित्याग कर शरीर पर मृगचर्म धारण कर, वनों से प्राप्त खाद्य पदार्थों से ही अपना भरण पोषण कर धर्म कर्मों तप-जप, पूजापाठ, अध्ययन-अध्यापन में अपना समय व्यतीत करता था। व्यक्ति 50 से 75 वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम में रहता था, वानप्रस्थ आश्रम के दौरान वह पत्नी के साथ रह सकता था और समय-समय पर उसके परिवार के सदस्य उससे मिलने भी आ सकते थे और वह समाज से एक प्रकार से जुड़ा रहता था।

### 3.4.4 सन्यास आश्रम

जब व्यक्ति 75 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेता था तब वह सन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। सन्यास का शाब्दिक अर्थ 'पूर्ण त्याग' है, अर्थात् सन्यास आश्रम में व्यक्ति पूर्णतः भौतिक संसार से दूर एवं जितेन्द्रिय की स्थिति प्राप्त कर लेता था। हिन्दू धर्मशास्त्रों में भिक्षुक, यति, परिव्राजक, परिवार आदि शब्द सन्यासी के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हैं। हिन्दू धर्मशास्त्र में सन्यासी के लिए अनेक नियम बताये गये हैं, सन्यासी को सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, जितेन्द्रिय, देशाटन आदि का अनुशासन के साथ पालन करते हुए जीवन के अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति के लिए साधना में लीन रहना चाहिए।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए

1. मनु के अनुसार ब्राह्मण बालक 8 वर्ष , क्षत्रिय बालक 11 वर्ष तथा वैश्य बालक 12 वें वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता था
2. व्यक्ति 20 वर्ष की आयु में गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था
3. व्यक्ति 75 वर्ष की आयु में सन्यास आश्रम में प्रवेश करता था

### 3.5 पुरुषार्थ

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने अपनी गहन चिंतनशील प्रवृत्ति से व्यक्ति के भौतिक जीवन को इस प्रकार से प्रबन्धित किया कि, व्यक्ति भौतिक संसार के सुखों को भोगकर अंत में जीवन के परम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त कर सके और इसी चिंतनशील प्रवृत्ति ने पुरुषार्थ की अवधारणा को जन्म दिया। भारतीय मनीषियों ने सांसारिक इच्छाओं और आध्यात्मिक जीवन में अद्भुत सामंजस्य स्थापित करते हुए पुरुषार्थ सिद्धान्त का सृजन किया। विद्वानों का मत है कि, तन, मन, ज्ञान (बुद्धि) एवं आत्मा के संयोजन से 'पुरुष', बनता है और पुरुष इन चारों की संतुष्टि या पूर्णता के लिए जो उद्यम या कार्य करता है, वही पुरुष का पुरुषार्थ कहलाता है। पुरुषार्थ शब्द का शाब्दिक अर्थ प्रयत्न करने, कार्य करने या उद्यम करने से है। पुरुषार्थ के बारे में कहा जाता है कि, पुरुषैरथ्यते पुरुषार्थः अर्थात् अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न (कार्य) करना पुरुषार्थ कहलाता है। पुरुषार्थ का अभीष्ट लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में मनुष्य के जीवन का अन्तिम एवं सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति को माना है और मनुष्य के समस्त प्रयत्न जीवन पर्यन्त मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्मानुसार जीवन में कार्य करते रहना है। धर्मशास्त्रों में भौतिक संसार में मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ, काम नामक कर्तव्यों का विधान किया है, इन तीनों का सफलतापूर्वक जीवन भर निर्वहन करते रहना ही पुरुषार्थ है।

भारतीय धर्मशास्त्रों, उपनिषदों, भगवद्गीता एवं स्मृतियों में मनुष्य के जीवन के मूल कर्तव्यों में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थों का वर्णन है। जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति के लिए पुरुषार्थों की प्राप्ति को आवश्यक बताया गया है। जीवन के अन्तिम उद्देश्य मोक्ष अर्थात् जन्म-मरण के बंधन से मुक्त परब्रह्म परमात्मा में समा जाने के लिए धर्म, अर्थ और काम को सफलतापूर्वक प्राप्त करना आवश्यक है। पुरुषार्थों में मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्मानुसार अर्थ और काम को पूर्ण करने का निर्देश दिया गया है। धर्म यह बताता है कि, अर्थ और काम साधन मात्र है।

पुरुषार्थ का सिद्धान्त चार पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उल्लेख करता है जो इस प्रकार है -

### 3.5.1 धर्म

पुरुषार्थ सिद्धान्त का प्रथम चरण धर्म है, जो व्यक्ति को उचित और अनुचित में भेद बताकर, सद्मार्ग और सद्कर्म पर चलने की प्रेरणा देता है ताकि मनुष्य का लोक और परलोक में कल्याण हो सके। धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'धृ' धातु से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ धारण करना, पुष्ट करना, बनाये रखना है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में धारण करने को ही धर्म कहा है। यहाँ धारण करने से तात्पर्य सद्कर्मों, सदाचारों एवं सद्व्यवहार से है अर्थात् ऐसा सदाचार जो धर्मानुसार हो और जिसे सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त हो, 'धर्म' कहलाता है। इस प्रकार धर्म ऐसे आचरण की सलाह देता है, जो सामाजिक व्यवहार के स्वीकृत ढाँचे का पालन करता हो। अतः भारतीय धर्म एक प्रकार की आचरण संहिता है, जो व्यक्ति के जीवन को प्रबंधित एवं व्यवस्थित करते हुए व्यक्ति के कर्तव्यों और अधिकारों को समाज की नैतिक एवं आध्यात्मिक नियमावली के दायरे में कार्य करने की बात करती है। बाल गंगाधर तिलक ने धर्म को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, 'धर्म' शब्द का अर्थ व्यावहारिक, सामाजिक और नैतिक धर्म समझना चाहिये। महर्षि कणाद ने कणाद सूत्र में लिखा है कि, जिससे इस लोक में उन्नति और परलोक में कल्याण की प्राप्ति हो, वही धर्म है। पी.वी. काणे धर्म को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि, धर्म जीवन की आचरण संहिता है, जो एक व्यक्ति के, समाज के सदस्य के रूप में और एक व्यक्ति के रूप में, कार्य और क्रियाओं को नियंत्रित करता है और जो व्यक्ति के क्रमिक विकास की दृष्टि से किया जाता है और जो उसे मानक अस्तित्व के उद्देश्य तक पहुंचाने में सहायता करता है। इस प्रकार धर्म जीवन की एक ऐसी आचरण संहिता है, जिसका पालन करने से मनुष्य का भौतिक संसार में उत्थान और पारलौकिक संसार में परमसुख (मोक्ष) प्राप्त होता है। साथ ही, धर्म ही यह बताता है कि, धर्म की निर्धारित आचरण संहिता पर चलकर ही अर्थ और काम को प्राप्त करना चाहिए, तभी मोक्ष संभव है।

### 3.5.2 अर्थ

अर्थ, व्यक्ति के जीवन का दूसरा प्रमुख पुरुषार्थ है। अर्थ का शाब्दिक अभिप्राय वस्तु, चीज, पदार्थ है। अतः समस्त सांसारिक भौतिक वस्तुएं अर्थ के दायरे में आती हैं। वैसे, अर्थ से तात्पर्य धन-सम्पदा के साथ-साथ भौतिक वस्तुओं एवं भौतिक साधनों से है, जो मनुष्य की सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति एवं सुख प्रदान करने में सहायक होती हैं। भौतिक संसार में जीवन-यापन के लिए अर्थ की बहुत आवश्यकता होती, पारिवारिक जीवन के संचालन, सामाजिक कार्यों में सहभागिता एवं धर्म-कर्म के कार्यों, तथा भौतिक सुख-सुविधाओं की पूर्ति आदि के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। भारतीय हिन्दू धर्मशास्त्र धर्मोचित विधान से अर्थाजन की अनुमति प्रदान करते

हैं अर्थात् समस्त भौतिक वस्तुओं और धन-सम्पदा का अर्जन धर्मानुसार सद्मार्ग से करना चाहिए। तभी जीवन के अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' की ओर बढ़ा जा सकता है। तभी तो मनु ने कहा कि, अर्थ यदि धर्मानुसार न हो तो उसे त्याग देना चाहिए। महाभारत में सर्वोच्च धर्म, अर्थ को कहा गया है, क्योंकि सभी सांसारिक वस्तुएं एवं सुख सुविधाएं अर्थ पर निर्भर हैं। किन्तु शास्त्र धर्म की निहित परिभाषा के दायरे में अर्थोपार्जन करने की सलाह देते हैं। इसीलिए सुख के लिए प्रयास करना व्यक्ति की स्वाभाविक इच्छा है, किन्तु यदि वह मोक्ष की कामना करता है, तो उसे सद्मार्ग या सही तरीके से अर्थार्जन करना चाहिए।

### 3.5.3 काम

मनुष्य के जीवन का तीसरा पुरुषार्थ काम है। 'काम' से तात्पर्य भोग-वासना, इन्द्रिय-सुख के साथ ही, मनुष्य की समस्त इच्छाओं (कामनाओं) से भी है। इस प्रकार काम पुरुषार्थ में यौन इच्छाओं का तत्त्व होने के साथ ही, सांसारिक दृष्टि से जीवन के आनन्द का उपभोग भी समाहित है। महाभारत के शान्तिपर्व में काम को धर्म का सार मानते हुए धर्म और अर्थ का स्रोत मानने के साथ ही, काम को धर्म की विहित नियमावली और दायरे में संयम से करने की सलाह भी दी गयी है। मत्स्य पुराण में भी धर्मानुसार काम को ही उचित माना गया है। महाभारत के उद्योगपर्व में कहा गया है कि, धर्महीन काम बुद्धि को नष्ट कर देता है। अतः शास्त्र धर्मानुसार आचरण के साथ काम की पूर्ति की अनुमति प्रदान करते हैं। काम अर्थात् यौन इच्छाओं की पूर्ति से व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से संतुष्ट होता है और संतानोत्पत्ति करके परिवार और समाज के विकास में सहायक होता है। अतः काम इच्छाओं की पूर्ति मानसिक संतुष्टि प्रदान कर मनुष्य को पूर्णानन्द प्रदान करती है, तभी तो वात्सायन ने काम सुख को परमानन्द की पदवी प्रदान की है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिए काम पुरुषार्थ की पूर्ति धर्म की नैतिक संहिता के तहत करना चाहिए।

### 3.5.4 मोक्ष

भारतीय धर्मानुसार मनुष्य के जीवन का अन्तिम एवं परम लक्ष्य 'मोक्ष' है। मोक्ष अर्थात् सांसारिक बंधनों एवं जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति। मोक्ष शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की मुक्त धातु से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ मुक्त करना या स्वतन्त्र करना है। इस प्रकार मोक्ष का अर्थ 'आत्मा' की मुक्ति से है। गीता में कहा गया है कि, मोक्ष व्यक्ति की आत्मा का परमब्रह्म से साक्षात्कार कर परमब्रह्म या परमात्मा में विलीन हो जाना है। मनुष्य को मोक्ष भौतिक संसार में समस्त कर्तव्यों एवं दायित्वों की धर्मानुसार पूर्ति और धर्म, अर्थ, काम की पूर्णतः के साथ ही संभव है। मनु के मनुस्मृति में कहा है कि, त्रि-ऋणों से मुक्ति धर्मानुसार धर्म एवं सांसारिक कर्तव्यों का निर्वहन एवं तीनों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम) के समन्वय से 'मोक्ष' प्राप्ति संभव बतायी है। शास्त्रों में अज्ञानता के बंधनों से मुक्त हो ज्ञान प्राप्त कर लेना मोक्ष का साधन बताया गया है। भगवद्गीता में कहा गया है कि

काम, क्रोध से मुक्त, अज्ञानता से मुक्त, परमब्रह्म से मुक्त, परमब्रह्म को जानने वाले ज्ञानी पुरुष को 'मोक्ष' स्वतः प्राप्त हो जाता है।

### 3.6 जाति-व्यवस्था

भारतीय समाज की 'जाति-व्यवस्था', अपने आप में एक विशिष्ट 'सामाजिक-व्यवस्था' है, जो अपनी मूलभूत विशेषताओं के साथ प्राचीन काल से अब तक अस्तित्व में है। प्राचीन काल में भारतीय समाज में 'वर्ण-व्यवस्था' सामाजिक स्तरीकरण के रूप में विद्यमान थी, जिसका कालान्तर में अनेक परिवर्तनों के साथ जाति-व्यवस्था में रूपांतरण हो गया। इस प्रकार पहले भारतीय समाज कर्म के आधार पर वर्णों में विभाजित था और बाद में जन्म के आधार पर जातियों में विभाजित हो गया। जाति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'जन' धातु से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'जन्म', 'भेद', 'प्रजाति' से हैं। वैसे, जाति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'कास्ट' का हिन्दी अनुवाद है। 'कास्ट' शब्द की उत्पत्ति पुर्तगाली भाषा के (कास्ट) शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ प्रजाति, नस्ल या जन्म से संबंधित है। भारतीय साहित्य में जाति शब्द का प्रयोग उत्तर वैदिक कालीन साहित्य (1000 ई.पू.-500 ई.पू) से मिलना प्रारंभ हो जाता है, जहाँ जाति शब्द को 'जन समुदाय' या जनसमूह के लिए प्रयोग किया गया है। जाति शब्द का जाति के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग 'निरुक्त' (12.13) में 'कृष्ण जाति' के लिए किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् (1.4.12) में स्पष्ट रूप से 'जाति' शब्द का प्रयोग करते हुए वैश्य जाति का उल्लेख किया गया है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' एवं पतंजलि के 'महाभाष्य' में भी जाति शब्द का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। शास्त्रों में एक ही जाति के लोगों के लिए बंधु शब्द का प्रयोग किया गया है।

जाति को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। डॉ. वी. ए. स्मिथ का कथन है कि, "जाति परिवारों के समूह को कहते हैं, जो धार्मिक संस्कारों और विशेषकर भोजन और विवाह संबंधी रीतियों की पवित्रता के लिए एकत्र होते हैं।" सामाजिक प्रतिबंध को ही जाति कहते हैं।

इस प्रकार, 'जाति व्यवस्था' जन्म पर आधारित व्यवस्था है, जिसमें विवाह, खान-पान, ऊँच-नीच, जैसे प्रतिबंध जाति के सदस्यों पर रहते हैं। तात्पर्य यह है कि एक जाति का सदस्य, दूसरी जाति में विवाह नहीं कर सकता, दूसरी जाति के व्यवसाय को नहीं अपना सकता, ऊँची जाति के लोग नीची जाति के लोगों के साथ भोजन नहीं कर सकते हैं और एक जाति के सदस्य पर ये नियम कठोरता से लागू होते हैं, इनके उल्लंघन पर जाति से बहिष्कार का दण्ड दिया जा सकता है।

### 3.6.1 जाति व्यवस्था की विशेषताएँ

जाति व्यवस्था एक विशिष्ट कठोर सामाजिक ढांचे का निर्माण करती हैं, इसकी अपनी विशिष्टताएँ एवं नियोग्यताएँ हैं। जाति अपने सदस्यों पर कठोर सामाजिक प्रतिबंध लगाकर अपनी जाति एवं सदस्यों के विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास करती है। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि जाति एक गतिशील व्यवस्था है, जिसमें समय के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं, जैसे वर्तमान समय में जाति व्यवस्था के विद्यमान रहने के साथ ही खानपान और व्यवस्था संबंधी जाति व्यवस्था के कठोर नियमों में पूर्णतः शिथिलता आ चुकी हैं। जाति व्यवस्था की विशेषताएँ निम्नलिखित है -

#### 3.6.1.1 वैवाहिक प्रतिबंध

वैवाहिक प्रतिबंध जाति व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है। एक जाति के सदस्य दूसरी जाति में विवाह नहीं कर सकते हैं, अर्थात् ब्राह्मण जाति के सदस्य ब्राह्मणों में ही विवाह कर सकते हैं, किसी और जाति में नहीं। यदि कोई ब्राह्मण दूसरी जाति में विवाह करता है, तो उस पर सामाजिक प्रतिबंध लगाकर जाति से बहिष्कार कर दिया जायेगा। जाति पर कठोरता से प्रतिबंध लगाने कारण यह है कि प्रत्येक जाति अपनी विशेषताओं और सुविधाओं को समाज में बनाये रखना चाहती हैं, ताकि समाज में उसकी पृथक पहचान बनी रहे। जाति व्यवस्था में एक जाति अनेक उपजातियों में विभाजित रहती है और इनमें आपस में वैवाहिक संबंध होते रहते हैं।

#### 3.6.1.2 व्यवसाय पर प्रतिबंध

जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था में परंपरागत वंशानुगत व्यवसाय को एक जाति, पीढ़ी-दर-पीढ़ी करती रहती है, अर्थात् तात्पर्य यह है कि, बालक का जन्म जिस परिवार या जाति में हुआ है, वह बालक अपने ही परिवार या जाति के व्यवसाय को करेगा दूसरी जाति के व्यवसाय को नहीं कर सकता है। यदि वह दूसरी जाति के व्यवसाय को अपनाने का प्रयास करता है, तो जाति के लोग उस पर कठोरता से सामाजिक प्रतिबंध लगा देते हैं। जाति व्यवस्था में ब्राह्मण का कार्य शिक्षा-दीक्षा देना एवं पौरोहित्य, क्षत्रिय का शासन, प्रशासन एवं सैन्य, वैश्यों का कृषि, पशुपालन एवं व्यापार - वाणिज्य, तथा शूद्र का सभी ऊँची जातियों की सेवा करना रहा है। जाति व्यवस्था में पेशे पर प्रतिबंध का नियंत्रण न केवल व्यक्ति की स्वयं की जाति के लोग आरोपित करते हैं बल्कि दूसरी जाति के लोग भी नियंत्रित करते हैं। जैसे, ब्राह्मण के पौरोहित्य के कार्य को यदि कोई शूद्र अपनाने का प्रयास करता है, तो सबसे पहले तो उसी की जाति को लोग इसका जोरदार विरोध करेंगे और फिर ब्राह्मण जाति के लोग उसका विरोध करेंगे साथ ही, क्षत्रिय एवं वैश्य जाति के लोग भी इसका विरोध करेंगे। वह इसलिए कि जाति की निर्धारित व्यवस्था बनी रहे और लोगों में व्यवसाय की खींचतान से भी बचा जा सके।

### 3.6.1.3 भोजन और खान-पान पर नियंत्रण

जाति-व्यवस्था में भोजन और खानपान पर कठोरता से नियंत्रण स्थापित होता है। भोजन और खानपान की नियंत्रित व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वे तीनों जातियाँ शूद्रों के यहाँ का भोजन और पानी दोनों ग्रहण नहीं करती हैं, खानपान की कठोरता का आलम यह है कि, कुछ ब्राह्मण अपने ही ब्राह्मण बंधुओं के यहाँ पानी तो पी लेते हैं किन्तु उनके घर का 'कच्चा खाना' (दाल, रोटी, चावल, आदि) ग्रहण नहीं करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रियों और वैश्यों के यहाँ पक्का भोजन (पूड़ी, सब्जी आदि) ग्रहण करते हैं। किन्तु शूद्र के यहाँ खाना-पीना दोनों नहीं करते हैं, जबकि ब्राह्मण के यहाँ सभी जातियाँ कच्चा-पक्का भोजन ग्रहण कर लेती हैं।

### 3.6.1.4 जातियों की सामाजिक धार्मिक विशेषाधिकार एवं निर्योग्यताएँ

जाति व्यवस्था में कुछ जातियों को सामाजिक-धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त हैं जबकि कुछ अन्यजातियों पर सामाजिक-धार्मिक रूप से अनेक प्रतिबंध लगे होते हैं। जाति व्यवस्था में ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, उन्हें अनेक सामाजिक-धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त हैं। जाति व्यवस्था में ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय एवं वैश्यों को क्रमशः कम होते विशेषाधिकार प्राप्त हैं किन्तु शूद्रों को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है, उन पर अनेक निर्योग्यताएँ डाल दी गयी हैं। सामाजिक रूप से शूद्र सार्वजनिक स्थलों पर नहीं जा सकते थे, कुएँ या तालाब से पानी नहीं ले सकते थे तथा अपना व्यवसाय छोड़कर ऊँची जातियों का व्यवसाय नहीं अपना सकते थे। दक्षिण भारत में शूद्रों स्थिति और खराब थी, उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया जाता था, उनकी शक्ल देखना तक अपशुन माना जाता था, शूद्रों की छाया और स्पर्श दोनों का निषेध था।

### 3.6.1.5 संस्तरण

संस्तरण से तात्पर्य ऊँच-नीच या ऊपर-नीचे से है। जाति व्यवस्था में जन्म पर आधारित संस्तरण विद्यमान है, जिसमें क्रमशः ब्राह्मण से शूद्र तक ऊँपर से नीचे स्तर का विधान है अर्थात् संस्तरण में ब्राह्मण सबसे ऊपर और शूद्र सबसे नीचे हैं। यह व्यवस्था जाति व्यवस्था में व्यक्ति के जन्म के साथ ही निर्धारित हो जाती है। ऊँच-नीच की इस कठोर व्यवस्था को ही संस्तरण कहते हैं। इस व्यवस्था में कोई नीची जाति ऊपर उठने की कोशिश करती है, तो उसे उठने नहीं दिया जाता है।

खण्डों में विभाजन: - खण्ड विभाजन से तात्पर्य, जाति व्यवस्था में समाज के लोगों की भावना संपूर्ण समाज के कल्याण में न होकर अपनी ही जाति विशेष तक सीमित रहती हैं। व्यक्ति का कर्तव्य और दायित्व जाति विशेष तक सीमित रहते हैं। व्यक्ति अपनी जाति की प्रगति एवं कल्याण के लिए कार्य करता है। व्यक्ति अपनी जाति के प्रति अपने उत्तरदायित्वों और निर्देषों से अपना जुड़ाव रखता है। इस

प्रकार जाति के खण्डात्मक विभाजन में व्यक्ति समाज और समुदाय के प्रति जवाबदेह न होकर अपनी जाति के प्रति समर्पित रहता है।

### 3.7 सारांश

प्रारम्भिक वैदिक काल (1500-1000 ई0प0) अर्थात् ऋग्वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था नामक सामाजिक व्यवस्था नहीं थी।

कार्य विभाजन पर आधारित यह व्यवस्था व्यक्ति एवं समाज में विकास के भूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित थी। यह एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसमें वर्ग सहयोग की भावना निहित थी, तथा जिसमें समाज का सम्पूर्ण कार्य सुचारू रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चतुर्वर्णों में विभाजित था। “आश्रम व्यवस्था का दर्शन प्राचीन व्यवस्थाकारों के अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। उन्होंने जीवन की वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए ज्ञान, कर्तव्य, त्याग और आध्यात्म के आधार पर मानव जीवन को ब्रह्मचर्म, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास नामक चार आश्रमों में विभाजित किया है, जिसका अन्तिम लक्ष्य था मोक्ष की प्राप्ति। पुरुषार्थ का अभीष्ट लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में मनुष्य के जीवन का अन्तिम एवं सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति को माना है और मनुष्य के समस्त प्रयत्न जीवन पर्यन्त मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्मानुसार जीवन में कार्य करते रहना है। धर्मशास्त्रों में भौतिक संसार में मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ, काम नामक कर्तव्यों का विधान किया है, इन तीनों का सफलतापूर्वक जीवन भर निर्वहन करते रहना ही ‘पुरुषार्थ’ है। जाति को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। डॉ.वी0ए0स्मिथ का कथन है कि, “जाति परिवारों के समूह को कहते हैं, जो धार्मिक संस्कारों और विशेषकर भोजन और विवाह संबंधी रीतियों की पवित्रता के लिए एकत्र होते हैं।” सामाजिक प्रतिबंध को ही जाति कहते हैं।

### 3.8 पारिभाषिक शब्दावली

सूत्रकाल- जिस काल में श्रौतसूत्र, गृहसूत्र एवं धर्मसूत्र की रचना हुई

मृगचर्म – हिरन की खाल

जितेन्द्रिय – जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया।

### 3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 3.3 के प्रश्न 1 का उत्तर – सत्य

इकाई 3.3 के प्रश्न 2 का उत्तर – सत्य

इकाई 3.3 के प्रश्न 3 का उत्तर – असत्य

इकाई 3.4 के प्रश्न 1 का उत्तर – सत्य

इकाई 3.4 के प्रश्न 2 का उत्तर – असत्य

इकाई 3.4 के प्रश्न 3 का उत्तर – सत्य

---

### 3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

1. रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010
2. वी.डी. महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
3. ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984
4. ए.एल. बाशम: अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972

---

### 3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

- Chattopadhyaya, K.C.: Studies in Vedic and Indo-Iranian Literature, Vol.-  
2, Bhartiya Vidya Bhawan, Varanasi, 1978.
- Dange, S.A.: Cultural Sources from the Vedas, Bhartiya Vidya  
Bhawan, Bombay, 1977.
- Ghurye, G.S.: Vedic India, Popular Prakashan, Bombay, 1979.
- Sharma, R.S: Material Culture and Social Formation in Ancient India,  
Macmillan, Delhi, 1983
- Tripathi, Vibha : The Painted Grey Ware: an Iron Culture of Northern India,  
Concept Publishing, Delhi, 1976.

---

### 3.12 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. प्राचीन भारतीय वर्ण व्यवस्था पर एक लेख लिखिए।
2. पुरुषार्थ से आप क्या समझते हैं
3. आश्रम व्यवस्था पर एक निबंध लिखिए

## इकाई चार - संस्कार तथा उनके प्रकार एवं महत्व, विवाह तथा उनके प्रकार एवं महत्व

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 संस्कार से अभिप्राय एवं अवधारणा
- 4.4 संस्कार के प्रकार
  - 4.4.1 गर्भाधान संस्कार
  - 4.4.2 पुंसवन संस्कार
  - 4.4.3 सीमान्तोन्नयन संस्कार
  - 4.4.4 जातक संस्कार
  - 4.4.5 नामकरण संस्कार
  - 4.4.6 निष्क्रमण संस्कार
  - 4.4.7 अन्नप्राशन संस्कार
  - 4.4.8 चूड़ाकरण संस्कार
  - 4.4.9 कर्णवेध संस्कार
  - 4.4.10 विद्यारम्भ संस्कार
  - 4.4.11 उपनयन संस्कार
  - 4.4.12 वेदारम्भ संस्कार
  - 4.4.13 केशान्त संस्कार
  - 4.4.14 समावर्तन संस्कार
  - 4.4.15 विवाह संस्कार
  - 4.4.16 अंत्येष्टि संस्कार
- 4.5 संस्कार का महत्व
- 4.6 विवाह से अभिप्राय एवं अवधारणा
- 4.7 विवाह के प्रकार
  - 4.7.1 ब्राह्म विवाह
  - 4.7.2 दैव विवाह
  - 4.7.3 आर्ष विवाह
  - 4.7.4 प्रजापत्य विवाह
  - 4.7.5 असुर विवाह
  - 4.7.6 गान्धर्व विवाह
  - 4.7.7 राक्षस विवाह
  - 4.7.8 पैशाच विवाह
- 4.8 विवाह का महत्व
- 4.9 सारांश
- 4.10 तकनीकी शब्दावली
- 4.11 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 4.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 4.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.15 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

संस्कार और विवाह व्यक्ति के जीवन को व्यवस्थित और संगठित करके व्यक्ति के जीवन का नैतिक और सामाजिक रूप से समाज में उत्कर्ष करते थे। संस्कार व्यक्ति को नैतिक, व्यक्तिगत और आध्यात्मिक गुणों से अलंकृत करते थे। सोलह संस्कार व्यक्ति के जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के बाद तक व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक सुख समृद्धि की कामना करते थे। संस्कार व्यक्ति के जीवन को परिष्कृत करके उसे सुयोग्य एवं सभ्य नागरिक बनाते थे। संस्कारों के द्वारा व्यक्ति और समाज के बीच उत्तम समन्वय स्थापित हो जाता था, इससे व्यक्ति का न केवल समाजीकरण होता था, बल्कि व्यक्ति समाज का अभिन्न उपयोगी सदस्य भी बन जाता था।

विवाह एक सार्वभौमिक संस्था हैं, यह सभी स्थानों एवं समाजों में पायी जाती है। हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार हैं। हिन्दू विवाह पूरे धार्मिक विधि - विधान से अग्नि को साक्षी मानकर संपन्न होता हैं। हिन्दू - विवाह जन्म - जन्मांतर का पवित्र अटूट बंधन माना जाता है, जिसको तोड़ना धार्मिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोण वर्जित माना जाता है। विवाह के बाद व्यक्ति को यौन संबंधों की धार्मिक एवं सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है।

इस इकाई में आपको संस्कार का अर्थ एवं अवधारणा की जानकारी प्राप्त होगी। इस इकाई में आपको संस्कार के प्रकार एवं महत्व की भी जानकारी प्राप्त होगी। इस इकाई में आपको विवाह का अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणा की जानकारी प्राप्त होगी। इस इकाई में आपको विवाह के प्रकार एवं महत्व की भी जानकारी प्राप्त होगी।

## 4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी संस्कारों के अर्थ और अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. विद्यार्थी संस्कारों के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
3. विद्यार्थी संस्कारों के महत्व एवं आवश्यकता को समझेंगे।
4. विद्यार्थी विवाह के अर्थ और अवधारणा को समझ सकेंगे।
5. विद्यार्थी विवाह के प्रकारों को जान सकेंगे।
6. विद्यार्थी विवाह की उपयोगिता एवं महत्व को समझेंगे।

### 4.3 संस्कार से अभिप्राय एवं अवधारणा

भारतीयों के सामाजिक एवं साँस्कृतिक लौकिक विकास के लिए संस्कारों का सृजन प्राचीन हिन्दू मनीषियों ने किया। संस्कार मनुष्य के जीवन को सुसंस्कृत करते थे, जिससे मनुष्य का व्यक्तित्व निखर कर नैतिक एवं आध्यात्मिक रूप से उन्नति प्राप्त करके समाज का विकसित, अनुशासित जागरूक एवं योग्य नागरिक बनता था। प्राचीन हिन्दू ऋषि - मुनियों ने मनुष्य को कुसंस्कारों एवं अशुभ शक्तियों से मुक्त करने तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों का विकास करके मनुष्यों के व्यक्तित्व का अच्छे संस्कारों से गढ़ने के लिए संस्कारों का विधान किया था। संस्कार, समाज के लिए एक ऐसी सामाजिक एवं साँस्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्माण करते थे, जो मनुष्य के लौकिक एवं अलौकिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करते थे। इस प्रकार संस्कार मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास करके सुसभ्य समाज की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। संस्कार शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'कृअ' धातु में 'ध' प्रत्यय को जोड़कर हुई है, जिसका अर्थ 'शुद्धता या पवित्रता' है। इस प्रकार संस्कार शब्द की जननी संस्कृत भाषा है। अंग्रेजी भाषा में संस्कार के लिए 'सैक्रामेंट' शब्द प्रयोग किया जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'धार्मिक विधान' होता है। संस्कार वे धार्मिक विधि - विधान है, जो मनुष्य के जीवन को शुद्ध करके उन उच्च विचारों की शिक्षा - प्रशिक्षण प्रदान करते थे, जिनसे मनुष्य समाज के लिए एक उपयोगी तत्व बन जाता था और समाज को सुदृढ़ता प्रदान करता था। संस्कारवान बनकर मनुष्य अशुभ - अमंगलकारी तत्वों पर विजय प्राप्त कर शुभ और मंगलकारी जीवन का निर्माण करता था।

#### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) संस्कार का शाब्दिक अर्थ।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
  - (1) सभ्य समाज के निर्माण में संस्कारों की क्या भूमिका है?

#### 4.3.1 संस्कार के प्रकार

संस्कार चिरकाल से हिन्दू धार्मिक सामाजिक जीवन में सुचिता का समावेश कर रहे हैं। वैदिक काल से ही संस्कार मानव को संस्कारवान बना रहे हैं। किन्तु यह तथ्य सत्य है कि, वैदिक साहित्य में संस्कारों का उल्लेख नहीं मिलता है। संस्कारों का विस्तृत वर्णन 'सूत्र' और 'स्मृति ग्रंथों' में मिलता है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के बाद तक संस्कारों की विस्तृत श्रृंखला दी है। मनु ने तेरह, बैखानस ने अठारह तथा गौतम ने चालीस संस्कारों का उल्लेख किया है। किन्तु,

प्रायः सभी विद्वान और धर्मशास्त्रकार सर्वसम्मत रूप से सोलह (षोड्स) संस्कार मानते हैं, जो इस प्रकार हैं -

#### 4.3.1.1 गर्भाधान संस्कार

षोड्स (सोलह) संस्कारों की आधारशिला गर्भाधान संस्कार, संस्कारों में सर्वप्रथम हैं। गर्भाधान संस्कार को 'निषेक' (ऋतुसंगम) तथा 'चतुर्थी होम' (चतुर्थी कर्म) के नाम से भी जाना जाता है। गर्भाधान संस्कार में विवाहित पुरुष, स्त्री (अपनी पत्नी) के गर्भ में यौन - क्रिया के माध्यम से अपने शुक्राणु स्थापित करता था अर्थात् पुरुष, स्त्री को गर्भवती बनाता था और स्त्री गर्भधारण करती थी। इस प्रजनन क्रिया का मूल उद्देश्य स्वस्थ, सुशील और संस्कारवान संतान को उत्पन्न करना होता था, जो भविष्य में हिन्दू धर्म से संबंधित क्रियाओं को संपादित करें।

#### 4.3.1.2 पुंसवन संस्कार

पुंसवन संस्कार पुत्र प्राप्ति के लिए संपन्न किया जाता था। पुंसवन का शाब्दिक अर्थ 'पुत्र संतान को जन्म' देने से है। गर्भाधारण के तीसरे महीने में चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र में होने पर पुंसवन संस्कार संपन्न किया जाता था।

#### 4.3.1.3 सीमान्तोन्नयन संस्कार

यह संस्कार गर्भाधान के चौथे महीने में संपन्न किया जाता था। सीमान्तोन्नयन दो शब्दों 'सीमान्त' (केश, बाल) और 'उन्नयन' (ऊपर) से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ केशों (बालों) को ऊपर उठाना है। सीमान्तोन्नयन संस्कार में गर्भवती महिला के सिर के बालों को ऊपर इसी लिए उठाया जाता था, ताकि दुष्ट आसुरी शक्तियों की विघ्न बाधाओं से उसके गर्भ की रक्षा हो सके और स्वस्थ, सुंदर और वीर पुत्र की कामना पूर्ण हो सके। सीमान्तोन्नयन संस्कार मातृ पूजा, नान्दीमुख श्राद्ध पूजा और प्रजापत्य को अग्नि में आहूति देने के साथ प्रारंभ होता था और पुत्र प्राप्ति की कामना से निमित्त हो, ब्राह्मण भोज के साथ समाप्त होता था।

#### 4.3.1.4 जातक संस्कार

जातकर्म संस्कार पुत्र के जन्म के तुरंत बाद और नाभिछेदन (नाल काटना) से पहले संपन्न किया जाता था। इस संस्कार में पुत्र का पिता विधि - विधान से स्नान कर नियमानुसार पूजन कर, मंत्रोच्चारण के साथ, शुभ आशीर्वादों की कामना के साथ, सोने की शलाका से घी और शहद चटाता था और उसके बाद नाभिछेदन के बाद पुत्र को माँ का स्तनपान कराया जाता था।

#### 4.3.1.5 नामकरण संस्कार

नामकरण संस्कार संतान के जन्म के दशवें दिन से लेकर एक महीने के बीच में कभी भी सुविधानुसार किया जाता था। नामकरण संस्कार में बच्चे का नाम रखा जाता था। नामकरण संस्कार शुभ मुहूर्त, शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र में संपन्न किया जाता था। मनु ने ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक, क्षत्रिय का नाम बल सूचक, वैश्य का नाम धन सूचक तथा शूद्र का नाम निन्दा सूचक शब्द वाला रखने की सलाह दी है। नामकरण संस्कार को 'नामधेय संस्कार' भी कहा जाता था।

#### 4.3.1.6 निष्क्रमण संस्कार

निष्क्रमण का शाब्दिक 'बाहर निकालना या बाहर लाना' है। निष्क्रमण संस्कार में बच्चे को प्रथम घर से बाहर निकाला जाता था। यह संस्कार शिशु के जन्म के बारहवें दिन से चौथे महीने के बीच कभी भी सुविधानुसार किया जाता था। निष्क्रमण संस्कार शुभ मुहूर्त में धार्मिक विधि - विधान के साथ शिशु को नहलाके, नये वस्त्र पहनाकर प्रारंभ होता था और फिर माँ संतान को गोद में लेकर बाहर आती थी और संतान को सूर्य - दर्शन कराती थी।

#### 4.3.1.7 अन्नप्राशन संस्कार

अन्नप्राशन दो शब्दों 'अन्न' और 'प्राशन' से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'अन्न का भोजन करना' है। बच्चे के जन्म के पाँचवे से छठवें महीने में अन्नप्राशन संस्कार कराया जाता था। मंत्रोच्चारण के साथ शहद, घी, दही तथा चावल का भोजन बालक को खिलाया जाता था।

#### 4.3.1.8 चूड़ाकरण संस्कार

चूड़ाकरण संस्कार बच्चे के जन्म के प्रथम वर्ष के अंत से तीसरे वर्ष की समाप्ति के पहले संपन्न किया जाता था। इसे 'मुंडन संस्कार' भी कहते हैं। चूड़ाकरण संस्कार शुभ मुहूर्त में घर, मंदिर (धार्मिक स्थल) या पवित्र नदी के किनारे किया जाता था, इस संस्कार में चूड़ा (शिखा) को छोड़कर बच्चे के गर्भ के सारे बाल काट दिये जाते थे और बच्चे का मुंडन कर दिया जाता था।

#### 4.3.1.9 कर्णवेध संस्कार

कर्णवेध दो शब्दों कर्ण (कान) और वेध (छेदन) से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'कानों को छेदना' होता है। बच्चे के जन्म के सातवें महीने से लेकर पाँचवे वर्ष के मध्य कभी भी यह संस्कार संपन्न किया जाता था। इस संस्कार में बालक का कान छेदकर बाली या कुण्डल पहना दिया जाता था।

#### 4.3.1.10 विद्यारम्भ संस्कार

बच्चे के जन्म के पाँचवे वर्ष में या उपनयन संस्कार के बाद यह संस्कार संपन्न किया जाता था। किसी भी शुभ मुहूर्त में बच्चे को नवीन वस्त्राभूषण पहनाकर, गणेश, सरस्वती, गृहदेवता के पूजन के बाद गुरु (शिक्षक) बच्चे की पट्टी (वर्तमान स्लेट) पर 'ओम्', स्वास्तिक आदि लिखवाकर विद्यारम्भ करवाता था।

#### 4.3.1.11 उपनयन संस्कार

उपनयन संस्कार, हिन्दू धर्म में शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरुकुल में जाने के समय किया जाता था। आपस्तम्ब और भारद्वाज उपनयन का अर्थ 'शिक्षा ग्रहण करना बताते' हैं। उपनयन, दो शब्दों 'उप और नयन' से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'समीप ले जाना।' अर्थात् गुरु के पास ले जाना है। शास्त्रों में उपनयन को 'यज्ञोपवीत' भी कहा गया है। अथर्ववेद में उपनयन का अर्थ 'ब्रह्मचारी को ग्रहण करना' बताया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'गुरु द्वारा ब्रह्मचारी को वेद शिक्षा के लिए अपने पास रखना है।' शास्त्रों में ब्राह्मण बालक का आयु के आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष, वैश्य का बारहवें वर्ष 'उपनयन संस्कार' करना बताया गया है। उपनयन संस्कार के बाद बालक 'द्विज' कहा जाने लगता था। शूद्रों के लिए उपनयन संस्कार वर्जित था। उपनयन संस्कार पूरे धार्मिक विधि - विधान से शुभ मुहूर्त में देवी - देवताओं को साक्षी मानकर किया जाता था। बालक को हाथ में दण्ड और ऊँगली में पवित्री पहनायी जाती थी। फिर गुरु बालक को सावित्री मंत्र का उपदेश देता था। उपनयन संस्कार शिक्षा प्राप्ति के निमित्त संपन्न किया जाता था। इससे ज्ञान प्राप्ति के साथ अनुशासन, त्याग, और चरित्र निर्माण जैसे आधाभूत गुणों का विकास बालक में होता था और बालक शिक्षा प्राप्त करके नैतिक एवं साँस्कृतिक रूप से सभ्य सामाजिक प्राणी बन जाता था।

#### 4.3.1.12 वेदारम्भ संस्कार

यह संस्कार वेदों का अध्ययन करने से पूर्व किया जाता था। वेदारम्भ दो शब्दों 'वेद' और 'आरम्भ' से मिलकर बना है, जिनका शाब्दिक अर्थ वेदों का अध्ययन प्रारंभ करना है। मनु ने छात्र को वेदाध्ययन के प्रारंभ और अंत में 'ऊँ' का उच्चारण अनिवार्य बताया है, ताकि वेद ज्ञान स्थायी रह सके। वेदारम्भ संस्कार शुभ मुहूर्त में सारे विधि - विधानों के साथ गायत्री मंत्र से शुरू किया जाता था। इसका उद्देश्य शिष्य का शैक्षणिक, आध्यात्मिक एवं साँस्कृतिक उत्थान करना होता था। वेदारम्भ संस्कार का सबसे पहले वर्णन 'व्यास स्मृति' में हुआ है।

#### 4.3.1.13 केशान्त संस्कार

यह संस्कार बालक के युवा होने पर सर्वप्रथम बालों को काटने पर संपन्न किया जाता था। केशान्त दो शब्दों 'केश' अर्थात् 'बाल' और 'अन्त' अर्थात् 'समाप्त करना' से मिलकर बना है। इस प्रकार केशान्त का शाब्दिक अर्थ 'बालों का अंत करना' (काटना) होता है। केशान्त संस्कार बालक के युवा अवस्था में प्रवेश होने का संदेश देता था। केशान्त संस्कार में सर्वप्रथम बालक के युवा होने पर दाड़ी, मूछों को काटने का विधान था। मनु ने ब्राह्मण बालक की आयु के सोलहवें वर्ष, क्षत्रिय के बाइसवें वर्ष तथा वैश्य के चौबीसवें वर्ष का होने पर केशान्त संस्कार को करने का नियम बताया है। केशान्त संस्कार में ब्राह्मण गुरु को शिष्य द्वारा 'गाय' दान देने के कारण केशान्त संस्कार को 'गोदान संस्कार' के नाम से भी जाना जाता था।

#### 4.3.1.14 समावर्तन संस्कार

गुरुकुल से शिक्षा समाप्ति के बाद छात्र जब अपने घर जाता था, तब समावर्तन संस्कार संपन्न किया जाता था। यह संस्कार आयु के 24 वें वर्ष में संपन्न होता था। समावर्तन का शाब्दिक अर्थ भी गुरु आश्रम से 'शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अपने घर वापस आना' है। समावर्तन संस्कार शुभ मुहूर्त में संपूर्ण धार्मिक विधि - विधान से शिष्य को स्नानादि कराके, गुरु द्वारा नवीन वस्त्रादी आदि प्रदान कराके संपन्न कराया जाता था। इस संस्कार के बाद विद्यार्थी गुरु आशीर्वाद से शिक्षा की आधिकारिक रूप से उपाधि को प्राप्त करके अपने घर को वापस लौट जाता था।

#### 4.3.1.15 विवाह संस्कार

विवाह संस्कार, हिन्दू धर्म संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि यह संस्कार हिन्दू धर्म क्रियाकलापों, विधि - विधानों की आधारभूमि प्रदान करता है। विवाह के बाद व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है और गृहस्थाश्रम धार्मिक एवं सामाजिक क्रियाकलापों का केन्द्रीय बिन्दु होता है। विवाह का शाब्दिक अर्थ 'वधू को वर के घर ले जाना है।' हिन्दू धर्म में विवाह एक धार्मिक संस्कार एवं जन्म जन्मान्तर का बंधन माना जाता है। हिन्दू धर्म में विवाह संस्कार शुभ मुहूर्त में पूर्ण धार्मिक विधि - विधान से अग्नि सहित गणेशादि देवताओं को साक्षी मानकर संपन्न किया जाता है। पी. वी. काणे के अनुसार, विवाह संस्कार में 39 अनुष्ठान संपन्न किये जाते हैं। विवाहोंपरांत, वर कन्या को उसके पिता के घर से अपने घर ले आता है। आज भी हिन्दूओं विवाह संस्कार प्रचलित हैं।

### 4.3.1.16 अंत्येष्टि संस्कार

व्यक्ति की मृत्यु के बाद मृत देह को अग्नि द्वारा जलाने की क्रिया की जाती है, इसे 'अंत्येष्टि संस्कार' कहते हैं। अंत्येष्टि संस्कार पूरे धार्मिक विधि - विधान से मंत्रोच्चारण द्वारा संपन्न कराया जाता है। मृत्यु के बाद मृत देह को स्नान कराकर, मृत देह को बाँस की अर्थी पर रखकर शमशान घाट ले जाया जाता है, फिर मृत देह को लकड़ी की चिता पर रखकर अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है। उसके बाद तीसरे या चौथे दिन मृतक के हड्डी अवशेष और राख आदि को नदी में प्रभावित कर दिया जाता है। दाह - क्रिया के तेरहवें दिन ब्राह्मण भोजनादि क्रियाएँ होती हैं, इसी बीच अशौच, पिंड दान, श्राद्ध आदि धार्मिक क्रियाकलाप भी होते हैं, तब इस संस्कार को पूर्ण माना जाता है। अंत्येष्टि संस्कार में मृत आत्मा की स्वर्ग प्राप्ति और शान्ति की कामना निहित है।

#### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) समावर्तन का शाब्दिक अर्थ।  
(ख) केशान्त का शाब्दिक अर्थ।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:  
(I) उपनयन संस्कार से आप क्या समझते हैं?  
(II) अंत्येष्टि संस्कार क्या है?

## 4.4 संस्कार का महत्व

संस्कारों का सामाजिक, धार्मिक एवं साँस्कृतिक महत्व है, ये मनुष्य को अच्छे गुणों से अलंकृत कर योग्य संस्कारवान बनाते थे। संस्कार मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय बनाते थे। इनमें मनुष्य के जीवन के सर्वांगीण विकास की धारणानिहित होती थी। संस्कार, व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास क्रमिक रूप से जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु तक करते थे। संस्कार मनुष्य को योग्य बनाकर उसे कर्तव्यों के प्रति सचेत एवं जागरूक नागरिक बनाते थे। संस्कार मनुष्य को आचरणवान और चरित्रवान बनाते थे। संस्कार मनुष्य जीवन को परिष्कार एवं शुद्धि प्रदान करते थे तथा मनुष्य को पवित्रता प्रदान करके व्यक्तित्व को निखारते थे।

संस्कार मनुष्यों को सामाजिक एवं आध्यात्मिक नागरिक बनाने में सहयोग करते थे। संस्कार मानव के समाजीकरण में सहयोगी होते थे। संस्कार क्रमिक रूप से समाज के यम - नियमों से व्यक्ति को परिचित कराते थे, जिससे मनुष्य धीरे - धीरे समाज में अपने आप ढलने लगता था। संस्कार मनुष्य के सामाजिक दायित्वों से भी उसे परिचित कराते थे। जिससे मनुष्य सामाजिक

दायित्वों का सफलता के साथ निर्वहन करने लगता था तथा मनुष्य के सामाजिककरण की प्रक्रिया पूर्ण होने पर वह सामाजिक कठिनाईयों एवं समस्याओं का सामना करने के लिए अपने आप को प्रशिक्षित पाता था।

संस्कार व्यक्ति को एक प्रकार से शिक्षित करते थे, व्यक्ति को प्रशिक्षित करके योग्य और उपयोगी नागरिक बनाते थे, जिससे व्यक्ति सामाजिक जटिलताओं और चुनौतियों का सामना करने में सफल रहता था। संस्कार व्यक्ति को लौकिक विधि - विधानों से सुसंपन्न करके सामाजिक एवं साँस्कृतिक रूप से सक्षम बनाते थे।

संस्कारों का हिन्दू सामाजिक एवं धार्मिक जन - जीवन में इसीलिए महत्व और बढ़ जाता था क्योंकि, ये व्यक्ति को नैतिक एवं साँस्कृतिक तत्वों से अभीभूत करते थे। संस्कार व्यक्ति को धार्मिक रीति - रिवाजों, परंपराओं एवं आचार - विचारों से परिचित कराते थे, इससे न केवल व्यक्ति का अपितु समाज का भी नैतिक एवं साँस्कृतिक रूप से उत्कर्ष होने का मार्ग प्रशस्त होता था।

संस्कार व्यक्ति को आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाते थे। ये व्यक्ति के ज्ञान चक्षु खोलकर वास्तविकता का ज्ञान कराते थे। मनुष्य को अज्ञानता से ज्ञान की ओर ले जाने का कार्य संस्कार करते थे। संस्कार व्यक्ति को धार्मिक बनाकर उसके मनोबल को भी ऊँचा उठाने का कार्य करते थे। आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति समाज को सही दिशा में ले जाने का कार्य करते थे।

इस प्रकार संस्कार मनुष्य, समाज एवं देश को संस्कारवान बनाकर मानव सभ्यता को सुखमय बनाने का प्रयास करते थे। संस्कार व्यक्ति और समाज का उत्थान एवं उत्कर्ष करते थे, यही इनका अंतिम और वास्तविक महत्व था।

### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

- (क) संस्कार मनुष्य को .....बनाते थे।
- (ख) संस्कार मनुष्य के ..... से लेकर ..... तक संपन्न होते थे।
- (ग) संस्कारों में मनुष्य के जीवन के ..... विकास की धारणा निहित थी।

## 4.5 विवाह से अभिप्राय एवं अवधारणा

विवाह एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जो सर्वव्यापी और सार्वभौमिक हैं। संसार के सभी देशों एवं सभ्यताओं में विवाह संस्था का अस्तित्व है और सभी सभ्यताओं में इसे कुछ यम - नियमों

द्वारा सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हैं। हिन्दू धर्म में विवाह संस्था को सामाजिक - धार्मिक मान्यता का मजबूत आधार प्राप्त है। हिन्दू धर्म में विवाह को जीवन का आवश्यक अंग माना गया है। हिन्दू धर्म में विवाह को धार्मिक संस्कार माना जाता है। हिन्दू धर्म के समस्त धार्मिक क्रियाकलाप गृहस्थ जीवन के ईद - गिर्द घूमते हैं। विवाह के बाद व्यक्ति गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है और विवाह करने के बाद ही व्यक्ति पूर्ण बनता है, क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में पत्नी को 'अर्द्धांगिनी' कहा गया है। हिन्दू धर्मशास्त्र पुरुष की पूर्णता के लिए पत्नी, संतान तथा स्वयं पुरुष, इन तीनों को आवश्यक मानता है, इन तीनों से ही मिलकर व्यक्ति पूर्ण पुरुष बनता है।

विवाह संस्कार की संपन्नता के साथ ही, व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। हिन्दू धर्म शास्त्रों के अनुसार गृहस्थाश्रम सभी धार्मिक विधि - विधानों एवं क्रियाकलापों की आधारभूमि प्रदान करता है। मनु कहते हैं कि, सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर है। पुरुषार्थों की प्राप्ति, ऋणों से मुक्ति एवं यज्ञादि धार्मिक विधि - विधान विवाह के बाद ही हो सकते हैं। इस प्रकार हिन्दू - विवाह, धर्म - संस्कार प्रधान होने के कारण स्वस्थ समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रति - आनन्द पर धर्म - संस्कार की प्रधानता व्यक्ति को सदाचारी और कर्तव्यपरायण बनाता है।

विवाह का शाब्दिक अर्थ 'वधु को वर के घर ले जाना' है। हिन्दू विवाह धार्मिक अनुष्ठानों के साथ अग्नि को साक्षी मानकर संपन्न होता है। पी० वी० काणे के अनुसार, विवाह संस्कार में 39 अनुष्ठान संपन्न किये जाते हैं। हिन्दू - विवाह जन्म - जन्मातर का पवित्र अटूट बंधन माना जाता है, जिसको तोड़ना धार्मिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोण वर्जित माना गया है। हिन्दू विवाह को परिभाषित करते हुए डॉ० के० एम० कपाड़िया ने 'इसे धार्मिक संस्कार' कहा है। रघुनन्दन ने विवाह को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'जिस क्रिया विधि से स्त्री पत्नी बनती है, वही विवाह है।' इस प्रकार धार्मिक विधि - विधान से अग्नि को साक्षी मानकर स्त्री को पत्नी बनाना तथा दोनों के संबंधों को सामाजिक - धार्मिक स्वीकृति मिलना हिन्दू - विवाह कहलाता है।

हिन्दू विवाह के धर्म, प्रजा और रति तीन प्रमुख उद्देश्य माने गये हैं। हिन्दू विवाह का प्रधान उद्देश्य धर्म का पालन करना है। हिन्दू धर्म में यज्ञादि कार्य एवं लौकिक और पारलौकिक सुख शांति के लिए विवाह संस्कार आवश्यक माना गया है, क्योंकि बिना पत्नी के कोई धार्मिक कार्य पूर्ण नहीं माना जाता है। पंचमहायज्ञों एवं पुरुषार्थों की संपन्नता विवाह के बाद ही संभव है। ऋग्वेद स्पष्ट रूप से कहता है कि, 'विवाह से मनुष्य गृहस्थ बनता है तथा यज्ञादि करने की योग्यता प्राप्त करता है।' तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कहा गया है कि, 'व्यक्ति बिना पत्नी के यज्ञ नहीं कर सकता है।' डॉ० के० एम० कपाड़िया ने भी ठीक ही कहा है कि, 'हिन्दू विवाह का प्रथम एवं सर्वोच्च उद्देश्य

धार्मिक कर्तव्यों का पालन करना है।' अतः धार्मिक क्रियाकलापों के पालन के लिए विवाह संस्कार आवश्यक हैं।

विवाह का दूसरा प्रमुख उद्देश्य संतान (पुत्र) उत्पत्ति है। वंश की वृद्धि और निरंतरता तथा धार्मिक कार्यों का संपादन पुत्र से ही संभव है। पुत्र, पितरों को तर्पण एवं पिण्ड दान करके मोक्ष प्रदान करता है। मनु संहिता एवं महाभारत में उल्लेखित है कि, पुत्र, पिता को 'पुत' नामक नरक से बचाता है। ऋणों से मुक्ति के लिए भी पुत्रोत्पत्ति आवश्यक है, अतः लौकिक एवं पारलौकिक सुख शांति और मोक्ष के लिए पुत्र संतान की आवश्यकता होती है।

विवाह का तृतीय उद्देश्य धर्मशास्त्रों में 'रति - सुख' बताया गया है। धार्मिक एवं सामाजिक रूप से स्वीकृत नियमों द्वारा 'रति - सुख' प्राप्ति को मान्यता प्रदान की गयी है। रति - सुख, व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक संतुष्टि प्रदान कर समाज का सदाचारी नागरिक बनाता है। उपनिषदों में रति - आनन्द को सर्वोच्च आनन्द बताया गया है। अतः स्वीकृत धर्म नियमों द्वारा रति - सुख प्राप्त करना धर्मशास्त्रों ने उचित माना है।

#### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) विवाह का शाब्दिक अर्थ।  
(ख) विवाह के बाद कौनसा आश्रम प्रारंभ होता है?
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:  
(1) हिन्दू विवाह के उद्देश्य क्या है?

## 4.6 विवाह के प्रकार

हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने बड़ी विद्वता का परिचय देते हुए और समाज की परिस्थितियों को देखते हुए विवाह के आठ प्रकारों का वर्णन किया है, ताकि विधिवत् रूप से विवाह संपन्न हो सके और उससे उत्पन्न संतानों को सामाजिक एवं वैधानिक स्वीकृति मिल सके। धर्मशास्त्रकारों द्वारा उल्लेखित हिन्दू विवाह के आठ प्रकार निम्नलिखित हैं:-

### 4.6.1 ब्राह्म विवाह

ब्राह्म विवाह, विवाहों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इस विवाह में पिता अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर तलाश (खोज) कर विवाह करता था। शास्त्रों में वर्णित है कि, पिता वेदों में परंगत, आचरणवान, अच्छे कुल के स्वस्थ वर को अपने घर बुलाकर, अपनी कन्या को वस्त्राभूषण से

सुसज्जित करके दान करता है। हिन्दुओं में आज भी यह विवाह सबसे अधिक सर्वमान्य रूप से प्रचलित है।

#### 4.6.2 दैव विवाह

दैव विवाह में पिता अपनी पुत्री को उस पुरोहित को दान में देता था, जो निर्धारित यज्ञ को सफलतापूर्वक संपन्न करा देता था। देवताओं के लिए यज्ञ के अवसर पर यह विवाह होता था, इस कारण इसे 'दैव विवाह' कहा जाता है।

#### 4.6.3 आर्ष विवाह

विवाह की इच्छा रखने वाले ऋषि (पुरोहित) द्वारा कन्या के पिता को गाय और बैल या गाय - बैल का जोड़ा दान देने पर संपन्न होता था। आर्ष विवाह कन्या मूल्य नहीं था, बल्कि धार्मिक प्रयोजनवश गाय - बैल दान में दिये जाने की परंपरा थी। चूँकि, यह विवाह ऋषियों से संबंधित होता था, इसीलिए ऐसा विवाह 'आर्ष विवाह' कहलाता था।

#### 4.6.4 प्राजापत्य विवाह

प्राजापत्य विवाह भी ब्राह्म विवाह के समान है। प्राजापत्य विवाह में कन्या का पिता नव दम्पति (वर - वधू) को संबोधित करते हुए आदेश देता था - 'तुम दोनों मिलकर आजीवन धर्माचरण करो।' कन्या के पिता का यह आदेश ही ब्राह्म और प्राजापत्य विवाह में एक मात्र अंतर है।

#### 4.6.5 असुर विवाह

ऐसा विवाह जिसमें कन्या अथवा उसके माता - पिता या संबंधी वर से धन लेकर विवाह करते थे, तब वह विवाह 'असुर विवाह' कहलाता था। असुर विवाह में कन्या मूल्य प्राप्त किया जाता था। बौधायन तो मूल्य चुकाकर खरीदी गयी स्त्री को पत्नी तक मानने को तैयार नहीं हैं। डॉ. ए. एस. अल्टेकर का मानना है कि, 'प्राचीनकाल में यह परंपरा असीरियनों में प्रचलित थी।' अतः बहुत संभव है कि 'असुर' शब्द असीरियनों से प्रभावित हों।

#### 4.6.6 गान्धर्व विवाह

जब कोई लड़का (पुरुष) - लड़की (स्त्री) एक दूसरे के प्रेम कामवासना में डूबकर संभोग क्रिया कर लेते थे और उसके बाद में विवाह कर लेते थे। तब ऐसे विवाह को गान्धर्व विवाह की संज्ञा दी जाती थी। मनु ने लड़का - लड़की के स्वेच्छा से कामवासना में लिप्त होने को 'गान्धर्व विवाह' माना है। महाभारत और वात्स्यायन इसे 'सर्वोत्तम विवाह' मानते हैं। दुष्यन्त और शकुन्तला का विवाह 'गान्धर्व' विवाह की श्रेणी में आता है।

#### 4.6.7 राक्षस विवाह

बलपूर्वक, छल कपट, युद्ध एवं संघर्ष के द्वारा कन्या का अपहरण करके जोर - जबरदस्ती से किया गया विवाह, 'राक्षस विवाह' कहलाता था। महाभारत में क्षत्रियों के लिए यह विवाह उत्तम बताया गया है। अर्जुन का सुभद्रा से तथा कृष्ण का रूक्मिणी से विवाह राक्षस विवाह के अंतर्गत आता है। इसी प्रकार पृथ्वीराज चौहान एवं संयोगिता का विवाह भी राक्षस विवाह की श्रेणी में आता है।

#### 4.6.8 पैशाच विवाह

लड़की (स्त्री) की सहमति के बिना उसके साथ छल - कपट से या अचेतन अवस्था में संभोग करने (बलात्कार करने) के बाद विवाह करना 'पैशाच विवाह' कहलाता था। चूँकि बलात्कारी, बलात्कार या संभोग के बाद कन्या के साथ ससम्मान विवाह कर लेता था, इसीलिए धर्मशास्त्रकारों ने इसे विवाह की श्रेणी में स्थान दिया है, ताकि समाज में विकृति पैदा न हो तथा समाज में स्त्री के सम्मान की रक्षा भी हो सके।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में प्रथम चार प्रकार ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य को धर्मानुसार श्रेष्ठ एवं असुर, गांधर्व, राक्षस, पैशाच को अधार्मिक एवं निकृष्ट श्रेणी का माना गया है। दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में ब्राह्म विवाह को 'सर्वश्रेष्ठ', दैव एवं प्राजापत्य को 'मध्यम श्रेणी' का, आर्ष, असुर एवं गांधर्व को 'निम्न श्रेणी' का तथा राक्षस और पैशाच विवाह को 'महाभ्रष्ट श्रेणी' का बताया है। हिन्दू धर्मशास्त्रों इन विवाहों के अतिरिक्त स्वयंवर, अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों का भी बड़ी तत्परता से उल्लेख किया है। स्वयंवर विवाह में एक समारोह में कन्या स्वयं की इच्छा से वर का चयन करती थी। रामायण काल में सीता का स्वयंवर तथा महाभारत काल में द्रौपदी का स्वयंवर, स्वयंवर विवाह के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। अनुलोम विवाह में उच्च वर्ण का पुरुष तथा निम्न वर्ण की स्त्री होती थी। ब्राह्मण ऋषि च्यवन का विषत्रय राजकुमारी सुकन्या तथा ब्राह्मण ऋषि अगस्त का लोपामुद्रा से विवाह अनुलोम विवाह के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। प्रतिलोम विवाह में उच्च वर्ण की कन्या तथा निम्न वर्ण का पुरुष होता था। ब्राह्मण कन्या अंगिरसी का भावयव्य (क्षत्रिय) तथा शुक्राचार्य की कन्या देवयानी का ययाति से विवाह, प्रतिलोम विवाह के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

#### स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह।  
(ख) स्वयंवर विवाह।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:  
(I) दैव विवाह किसे कहते हैं?

(II) ब्राह्म और प्रजापत्य विवाह में क्या अंतर है?

## 4.7 विवाह का महत्व

विवाह का व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए बहुत महत्व है। विवाह के बाद व्यक्ति का जीवन संगठित हो जाता है। व्यक्ति अपना जीवन सामाजिक रूप से व्यवस्थित होकर जीने लगता है, वह सामाजिक रीति - रिवाजों एवं परंपराओं का पालन करने लगता है। विवाह के बाद व्यक्ति का परिवार बन जाता है, व्यक्ति परिवार की आवश्यकताओं एवं समाज में परिवार की स्थिति के अनुसार अपने आप को व्यवस्थित करने लगता है, वह समाज में परिवार की प्रतिष्ठा एवं उचित स्थान के लिए कार्य करने लगता है। विवाह का एक सबसे बड़ा महत्व यह भी है कि, यह व्यक्ति पर सामाजिक नियंत्रण स्थापित करता है। विवाह के बाद व्यक्ति समाज के प्रचलित नियमों का कठोरता से पालन करता है तथा वह अपने आचार - विचार सामाजिक मान्यताओं के दायरे में रखता है।

भारतीय समाज का सबसे बड़ा महत्व धर्मानुसार जीवन यापन करना है। विवाह के बाद व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि, वह निर्धारित धार्मिक संस्कारों का पालन करेगा। विवाह के बाद व्यक्ति गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है और गृहस्थ जीवन में ही सोलह संस्कारों को पूर्ण भी करता है। इसके साथ ही, पंचमहायज्ञों - ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, नृयज्ञ को सपत्निक संपन्न करके अपने धार्मिक दायित्वों की पूर्ति करता है। विवाह के बाद गृहस्थ जीवन में त्रि - ऋणों - देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण से मुक्ति प्राप्त करता है। विवाह के बाद ही व्यक्ति पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की कामना कर सकता है, अतः पुरुषार्थों की पूर्ति हेतु विवाह का बड़ा महत्व है।

विवाह के बाद ही व्यक्ति के परिवार का गठन होता है और परिवारिक कर्तव्यों एवं दायित्वों की पूर्ति करता है वह संतान का भरण - पोषण एवं संस्कारित शिक्षा की व्यवस्था करता है। विवाह के बाद व्यक्ति सामंजस्य का जीवन जीना प्रारंभ कर देता है। विवाह के बाद व्यक्ति संतान उत्पत्ति करके समाज एवं परिवार को आगे बढ़ाता है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में पुत्र संतान को बड़ा महत्व दिया गया है, अतः व्यक्ति से पुत्र संतान उत्पन्न करने की इच्छा की जाती है। पुत्र सामाजिक - धार्मिक कार्यों में परिवार एवं पिता का भविष्य में प्रतिनिधित्व भी करता है। साथ ही, पुत्र को पिता एवं कुल का उद्धारक भी माना जाता है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार, विवाह का प्रमुख उद्देश्य 'यौन इच्छाओं की संतुष्टि' होता है। यौन क्रियाएँ व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। विवाह के बाद यौन क्रियाओं को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है और व्यक्ति सामाजिक - धार्मिक दायरे में अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति के लिए स्वतंत्र हो जाता है, इससे सामाजिक अव्यवस्थाओं पर भी

नियंत्रण स्थापित होता है, यदि सामाजिक स्वीकृति और दायरे में यौन क्रियाएँ पूरी न हों, तो सामाजिक रूप से अपसंस्कृति के फैलने लगती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

- (क) विवाह के बाद यौन क्रियाओं को सामाजिक ..... प्राप्त हो जाती है।
- (ख) हिन्दू धर्मशास्त्रों में ..... संतान को बड़ा महत्व दिया गया है।
- (ग) विवाह के बाद व्यक्ति का जीवन ..... हो जाता है।

## 4.8 सारांश

संस्कार मनुष्य के जीवन को आदि से अंत तक प्रबंधित करते थे, ताकि मनुष्य सामाजिक कठिनाईयों एवं चुनौतियों का बिना किसी बिघ्न के सामना कर सके। संस्कार व्यक्ति के जीवन को निखार कर, उसे सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से प्रशिक्षित करते थे। संस्कार, संसार में मनुष्य के लिए अस्त्र-शस्त्रों के समान थे, जिनसे सुस्सजित होकर व्यक्ति सामाजिक धरातल पर अपनी सफल भूमिका का निर्वहन करता था।

विवाह समाज में व्यक्ति को सम्मानित स्थान प्रदान करने के साथ ही, सामाजिक दायित्वों और कर्तव्यों के निर्वाह करने की प्रेरणा देता है। हिन्दु विवाह एक धार्मिक संस्कार हैं, जो व्यक्ति को धर्मानुसार रति - आनंद की पूर्ति करने एवं धार्मिक क्रियायों को संपन्न करने की स्वीकृति भी प्रदान करता है। साथ ही, विवाह स्त्री - पुरुष के यौन संबंधों को सामाजिक स्वीकृति भी प्रदान करता है।

## 4.9 तकनीकी शब्दावली

द्विज	:	दुबारा जन्म लेना
कन्यादान	:	पिता द्वारा नियमपूर्वक वर को कन्या का समर्पण
देव ऋण	:	देवताओं का ऋण, जिसे पाठ - पुजा करके चुकाया जाता है।
ऋषि ऋण	:	स्वाध्याय द्वारा करके चुकाया जाता है।
पितृ ऋण	:	संतान उत्पन्न करके चुकाया जाता है।
नृयज्ञ	:	अतिथि का सत्कार करना।
लौकिक	:	इस लोक का अर्थात् पृथ्वी लोक का
पारलौकिक	:	ईश्वर का लोक अर्थात् स्वर्ग

अर्द्धांगिनी	:	विवाहित पत्नी
पवित्री	:	अंगूठी
मनीषी	:	विद्वान, ऋषि - मुनि

## 4.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

### इकाई 4.3

1. (क) देखिए 4.3 संस्कार का शाब्दिक अर्थ।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:
  - (I) देखिए 4.3 संस्कार से अभिप्राय एवं अवधारणा

### इकाई 4.4

1. (क) देखिए 4.4.14 समावर्तन  
(ख) देखिए 4.4.13 केशान्त
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:
  - (I) देखिए 4.4.11 उपनयन संस्कार
  - (II) देखिए 4.4.16 अंत्येष्टि संस्कार

### इकाई 4.5

रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए देखिए 4.5

### इकाई 4.6 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 4.6 विवाह से अभिप्राय एवं अवधारणा  
(ख) देखिए 4.6 विवाह से अभिप्राय एवं अवधारणा
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:
  - (I) देखिए 4.6 विवाह से अभिप्राय एवं अवधारणा

### इकाई 4.7

1. (क) देखिए 4.7.7 के नीचे का पैराग्राफ में अनुलोम एवं प्रतिलाम विवाह।  
(ख) देखिए 4.7.7 के नीचे का पैराग्राफ में स्वयंवर विवाह।
2. (I) देखिए 4.7.2 दैव विवाह  
(II) देखिए 4.7.1 एवं 4.7.4 ब्राह्म और प्रजापत्य विवाह

इकाई 4.8 रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए देखिए 4.8

### 4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओमप्रकाश - प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 1986
2. बाशम, ए. एल. - अद्भुत भारत, आगरा, 1987
3. दिनकर, रामधारी सिंह - संस्कृति के चार अध्याय, पटना, 1956
4. कर्वे, इरावती - हिन्दू सोसायटी: एन इन्टरप्रेशन, पूना, 1961
5. कपाडिया, के. एम. - मैरिज एण्ड फेमिली इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, 1958
6. काणे, पी. वी. - धर्मशास्त्र का इतिहास, पाँच जिल्द, पूना, 1930 - 53
7. मिश्र, जयशंकर - प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 2006
8. प्रभु, पी. एन. - हिन्दू सोशल ऑर्गेनाइजेशन, बम्बई, 1958

### 4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मजूमदार, डी. एन. - रेस एण्ड कल्चरस ऑफ इण्डिया, बम्बई, 1958
2. थापर, रोमिला - एशियन्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, 1983
3. श्रीवास्तव, के. सी. - प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहबाद, 2007
4. शर्मा, आनन्द कुमार - भारतीय संस्कृति एवं कला, नई दिल्ली, 2011

### 4.13 निबंधात्मक प्रश्न

- प्रश्न 1. संस्कारों से आपका क्या अभिप्राय है? संस्कारों के महत्व पर प्रकाश डालिये।
- प्रश्न 2. विवाह से आपका क्या अभिप्राय है? विवाह के महत्व पर प्रकाश डालिये।
- प्रश्न 3. विवाह कितने प्रकार के होते हैं? विस्तृत रूप से विवरण दीजिये?
- प्रश्न 4. संस्कार कितने प्रकार के होते हैं? सविस्तार वर्णन कीजिये?

---

## इकाई एक : महावीर स्वामी : दार्शनिक विचारधारा, त्रिरत्न, जैन साहित्य एवं स्थापत्य कला

---

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 महावीर स्वामी

1.3 दार्शनिक विचारधारा

1.4 त्रिरत्न

1.5 जैन साहित्य

1.6 स्थापत्य कला

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 1.0 प्रस्तावना

जैन धर्म भारत का एक प्राचीन धर्म है। जैनियों के अनुसार उनके धर्म का आरम्भ पहले जैन तीर्थंकर ऋषभ के साथ हुआ था जिनका उल्लेख विष्णु और भागवत पुराणों में हुआ है। ऐसा माना जाता है कि जैन शब्द की उत्पत्ति 'जिन' से हुई है। 'जिन' का अर्थ है विजेता। 'जिन' ऐसा विजेता होता है, जो सभी प्रकार की मोहमाया के बन्धनों से मुक्त होता है। जैन दर्शन के मुताबिक प्रत्येक प्राणी में एक आत्मा होती है और मनुष्य के जीवन का मुख्य उद्देश्य मोहमाया से मुक्त होकर आत्मा को शुद्ध करना है। शुद्ध होने के बाद आत्मा सांसारिकता से मुक्त हो जाती है। जैन धर्म मानता है कि प्रत्येक आत्मा शुद्ध हो सकती है, लेकिन उसके लिए उसे तीर्थंकर के बताए हुए रास्ते का अनुसरण करना होगा।

प्राचीन भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई०पू० नए धार्मिक विचारों के उद्भव और विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काल था। इसी समय गंगा की उपजाऊ घाटी में नगरों का दूसरी बार उदय हुआ। कृषि के तरीकों में सुधार विशेष रूप से धान को रोपने आदि के तरीकों के कारण अनाज की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई इसके अतिरिक्त उपज ने नगरों के विस्तार में प्रत्यक्ष मदद की। इसी दौर में व्यापार और वाणिज्य का विकास हुआ और समाज में नए वर्गों के उदय के कारण सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव आए। इस दौर में व्यापार के विकास का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष धातु की बनी मुद्राओं का उपयोग था और इस प्रकार मुद्रा अर्थव्यवस्था का आरम्भ हुआ। मुद्रा अर्थव्यवस्था ने वस्तुओं के विनिमय में मदद की और इससे व्यापार का विस्तार हुआ। अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों से सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को भी दूर तक प्रभावित किया। नगरीकरण, व्यापार और वाणिज्य ने नये सामाजिक समूहों की वृद्धि की और सामाजिक श्रेणीबद्धता की दृष्टि से समाज और अधिक जटिल बन गया। नगरीकरण और व्यापार की वृद्धि के परिणामस्वरूप क्षत्रियों और वैश्यों के बढ़ते महत्व ने ब्राह्मणों के सामाजिक और अनुष्ठान सम्बन्धी वर्चस्व के लिए चुनौती खड़ी कर दी। विद्यमान ब्राह्मणवादी विचारधारा और अनुष्ठान के नये उभरते सामाजिक समूहों की अपेक्षाओं के पूर्णतः विपरीत थे। इस दौर की बदलती सामाजिक-आर्थिक संस्कृति ने काफी हद तक नये धार्मिक विचारों के उदय के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

क्षत्रिय वर्ग ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता के साथ-साथ उनके धर्म और अनुष्ठानों को भी चुनौती दी। नई शहरी संस्कृति की जरूरतों के फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म की परिधि के बाहर नए धार्मिक विचारों की खोज शुरू हो गई। छठी शताब्दी ई०पू० में मकखली गोशाल और पूरन कश्यप जैसे कई श्रमण शिक्षक और उपदेशक सामने आए जिन्होंने भारतीय धार्मिक परम्परा को नए रूप में ढाला। वैदिक ग्रन्थों में सभी गैर धार्मिक ब्राह्मण पद्धतियों को श्रमण कहा गया है जिसमें आजीविक, जैन, बौद्ध

आदि शामिल हैं। इन सभी श्रमण उपदेशकों की धार्मिक विचारधारा में कुछ सामान्य विशेषताएं मिलती हैं जो इस प्रकार हैं:

- उपदेश और रीति-रिवाज पुरोहित प्रधान वैदिक धर्म के विरुद्ध थे,
- सामाजिक ऊँच-नीच और धार्मिक पद का ख्याल न करते हुए समुदाय के सब लोग समान सदस्य के रूप में स्वीकार्य थे,
- कतिपय नैतिक सिद्धान्तों के पालन पर बल,
- आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म में आस्था,
- प्रेरक और निर्धारक शक्ति के रूप में कर्म के दर्शन में विश्वास,
- तपस्या और वैराग्य पर बला।

## 1.1. उद्देश्य

पिछले खण्डों में आपको हड़प्पा संस्कृति तथा आर्यों के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गयी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। इस इकाई का उद्देश्य आपको महावीर स्वामी तथा उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म और समसामयिक भारत से संबंधित अन्य तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हुये सामाजिक परिवर्तन
2. महावीर के उपदेश
3. जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में भाषा (अर्द्धमागधी) के योगदान।

## 1.2 महावीर स्वामी

जैन धर्म के 24वें और अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर (599 ई0पू0-527 ई0पू0) का जन्म वैशाली के निकट कुंडग्राम में हुआ था, जो पटना से 27 मील उत्तर में स्थित है। जैन परम्परा के अनुसार 24 तीर्थंकर हुए हैं। ऋषभ पहले तीर्थंकर थे और उनके बाद समय-समय पर 23 और तीर्थंकर हुए। 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वे महावीर के पहले 250 वर्ष तक विद्यमान थे। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था, जो उस क्षेत्र के राजा थे और मां त्रिशला का सम्बन्ध लिच्छवी राज परिवार से था। 30 वर्ष की उम्र में महावीर सबकुछ छोड़कर आध्यात्मिक खोज में निकल पड़े और 12 वर्षों तक कठिन तपस्या और उपासना करते रहे, तब जाकर उन्हें 'कैवल्य', अर्थात् ज्ञानोदय की प्राप्ति हुई। उन्होंने 30 वर्षों तक जैन धर्म का प्रचार किया और भिक्षुओं से लेकर गृहस्थ तक बड़ी संख्या में लोग उनके शिष्य बने। 527 ई0पू0 में 72 वर्ष की उम्र में

बिहार में राजगृह के निकट पावापुरी में उनका देहांत हुआ और उनका स्थान उनके शिष्य इन्द्रभूति ने लिया। जैन भिक्षुओं के कठिन और तपस्वी जीवन से शासक वर्ग और व्यापारी समुदाय काफी प्रभावित हुआ। कई राज्य वंशों के शासकों ने भी इस धर्म को अपना संरक्षण एवं सहयोग प्रदान किया जिनमें चन्द्रगुप्त मौर्य, कलिंग के राजा खारवेल और दक्षिण के कई राजवंश जिनमें गंग, कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूट जैन धर्म के संरक्षक बने। पूर्वी और उत्तरी भारत से जैन धर्म का प्रभाव पश्चिम और भारत के दक्षिणी हिस्सों में फैला। कहा जाता है कि उत्तरी भारत में आए अकाल के कारण भिक्षुओं का एक दल भद्रबाहु के नेतृत्व में दक्षिण भारत गया और फिर बाद में यह जैन संगठन के बंटने का एक कारण भी बना।

### 1.3 दार्शनिक विचारधारा

जैन धर्म के अनुसार यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड दो मूलभूत और स्वतन्त्र वर्गों यानी जीव (आत्मा) और अजीव (अनात्मा) में बंटा हुआ है। जैन धर्म जीव और अजीव की प्रकृति और अंतःक्रिया पर आधारित है और यह माना जाता है कि इन दोनों की अंतःक्रिया के कारण ही इस ब्रह्मांड में इतनी अनेकरूपता और बहुरूपता दिखाई पड़ती है। जैन धर्म के अनुसार आत्मा में बदलते रहने की क्षमता है परन्तु यह परिस्थितियों और कर्म की प्रकृति पर निर्भर है। जैन मत के अनुसार प्रत्येक जीवित प्राणी में आत्मा का निवास होता है। जीवन का मुख्य उद्देश्य अपनी इच्छाओं का दमन कर आत्मा को शुद्ध करना है और जब आत्मा अपने अजीव बंधन से मुक्त हो जाती है तो फिर आत्मा संसार के इस चक्र से मोक्ष पा जाती है। जीवन का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है ताकि जीवन और मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिल सके। जैन धर्म के अनुयायी ब्रह्मांड और जीवन के रहस्यों की व्याख्या को ईश्वर के अस्तित्व से नहीं जोड़ते। उनके अनुसार यह ब्रह्मांड छह वस्तुओं या तत्वों से बना है। ये हैं: आत्मा, पदार्थ के कण, देश, काल, गति और विराम। ये सब चीजें हमेशा मौजूद होती हैं और जो चीजें हमेशा मौजूद रहती हैं उनका सृजन नहीं किया जा सकता। इसलिए जैन मत के अनुसार न इस विश्व का कभी सृजन हुआ है और न इसका कोई सर्जक है। जैन धर्म तर्क पद्धति और कार्य-कारण सम्बन्ध का सहारा लेता है और जीव तथा अजीव से जुड़े यथार्थ को व्याख्यायित करता है।

जैन धर्म इस अर्थ में ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह ईश्वर को इस दुनिया का सर्जक और शासक नहीं मानता। जैन दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में ईश्वर बनने की सम्भावना निहित है। वह वस्तुतः आत्मा की ऐसी दशा है जो भौतिक बन्धनों से मुक्त होती है। जैन मत के अनुसार, पूर्ण आत्मा या मुक्त आत्मा (तीर्थंकर) ही परमात्मा है। मुक्त आत्मा को ईश्वर माना जाता है और जैनी उसकी पूजा करते हैं। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक आत्मा कर्म के विधान के अनुसार नीचे से ऊपर की ओर विकसित है। अतीत के जीवन में कर्म पूरा नहीं हो पाता है तो आत्मा चोला बदलकर नए शरीर में प्रविष्ट होती है। उपासना, तपस्या और अपनी आकांक्षाओं पर

विजय प्राप्त कर आत्मा मोक्ष की प्राप्ति करती है। प्रत्येक आत्मा ज्ञान का शुद्ध आगार है और इसमें अनन्त सम्भावनाएं निहित हैं। जैन धर्म भी अन्य भारतीय धर्मों के समान मोक्ष की अवधारणा को स्वीकार करता है परन्तु इसमें मोक्ष प्राप्ति के लिए स्वयं प्रयत्न करने पर बल दिया गया है। यह ईश्वर की कृपा नहीं बल्कि अपने प्रयत्न पर निर्भर करता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए सही आस्था, सही ज्ञान और सही आचरण का होना जरूरी है।

जैन दर्शन में कर्म की स्थिति का विशेष महत्व है। जैन धर्म में कर्म की नई व्याख्या की गई है। 'कर्म' पद का मतलब है कार्य और भारतीय दर्शन में कर्म की अवधारणा का विशिष्ट स्थान है। जैन धर्म में कर्म के सिद्धान्त को निम्नलिखित तरीके से व्याख्यायित किया गया है।

यह आत्मा हमेशा परिष्कृत तत्व यानी कर्म से आच्छादित होती है। जब भी आत्मा असंतुलन की स्थिति में होती है तो कर्म आत्मा में प्रवेश कर जाता है। जब भी मनुष्य के शरीर, हृदय या वाणी में अनैतिकता, मोह यानी इच्छा, घमंड, लालच, छल-कपट आदि का समावेश होता है तो कर्म आत्मा में प्रवेश कर जाता है।

कर्म ही हमारे वर्तमान और भविष्य के सौभाग्य और दुर्भाग्य को तय करता है। अपने कर्मों के अनुसार जीव एक के बाद एक विभिन्न शरीरों में कैद होते जाते हैं। जैन साहित्य में कर्म की कई कोटियां और उपकोटियां बताई गयी हैं। जैन धर्म में कर्म के सिद्धान्त में विश्वास के कारण ही नैतिक संहिता पर विशेष बल दिया गया है। जहाँ तक इसके व्यवहार का सम्बन्ध है यह नैतिक संहिता भिक्षुओं की अपेक्षा गृहस्थों के लिए कम कड़ी है। एक गृहस्थ के लिए पाँच नियम लागू किए गए हैं:

- अहिंसा, किसी भी जीव या प्राणी के प्रति अहिंसा,
- सत्य, सच बोलना,
- अस्तेय, चोरी न करना,
- ब्रह्मचर्य,
- अपरिग्रह, भौतिक इच्छाओं पर नियन्त्रण।

इन्हें अणुव्रत के नाम से जाना जाता है और जब भिक्षु इन नियमों और प्रतिज्ञाओं का पालन पूरी कड़ाई से करते हैं, तो उन्हें महाव्रत कहा जाता है। इसके अलावा सात प्रतिज्ञाएं और हैं जो आत्म संयम, आत्म निषेध और सन्यास जैसे गुणों के विकास में मदद करती हैं। भिक्षुओं को अपने शरीर, वाणी और मस्तिष्क की गतिविधियों के प्रति विशेष सावधानी रखने का निर्देश दिया जाता है क्योंकि इन पर कड़ा नियंत्रण स्थापित करके ही कर्म को नष्ट किया जा सकता है जिसमें आत्मा लिप्त होती है। आत्मा और कर्म इच्छा के कारण एक दूसरे में लिप्त होते हैं इसलिए 'क्षमा, नम्रता, स्पष्टवादिता, संयम, सच्चाई, तपस्या, शुद्धता, पवित्रता और आत्म त्याग' जैसे सद्गुणों के विकास पर बल दिया

जाता है। जैन धर्म में भिक्षुओं के लिए 28 आधारभूत गुण बताए गए हैं और इन सदुणों के विकास द्वारा ही आत्मा में कर्म के प्रवेश को रोका जा सकता है। केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए 14 आध्यात्मिक चरणों से गुजरना पड़ता है। जैन धर्म में ज्ञान प्राप्ति से ही मोक्ष का द्वार खुलता है।

स्यादवाद का सिद्धान्त जैन धर्म का एक प्रमुख सिद्धान्त है। ज्ञान का लक्ष्य बहुत ही जटिल होता है। जैन धर्म के अनुसार यथार्थ कई विरोधाभासी परिस्थितियों से युक्त होता है। इसमें अस्मिता और भिन्नता, स्थायित्व और रूपांतरण के कई आयाम होते हैं। यथार्थ अनेकात्मक होता है और इसके कई रूप होते हैं। जैन दर्शन में किसी भी प्रकार के अन्तिम अनुमान को नकारा गया है और यथार्थ के बारे में साथ प्रकार के अनुमानों की चर्चा की गई है। जैन धर्म के अनुसार अन्तिम निष्कर्ष ही नहीं सकता इसलिए इसमें तुलनात्मक निष्कर्ष की ही बात की गई है। प्रत्येक ढंग की व्याख्या में शायद या 'स्याद' का समावेश होता है। इस विविधता के बीच कुछ भी निश्चिंता या अविवादित नहीं है। किसी भी चीज की व्याख्या करने के साथ ढंग हो सकते हैं:

- यह है,
- यह नहीं है,
- यह है, और नहीं है,
- यह अवर्णनीय है,
- यह है और अवर्णनीय है,
- यह नहीं है और अवर्णनीय है,
- यह है, यह नहीं है और अवर्णनीय है।

इसे निम्नलिखित ढंग से समझा जा सकता है:

एक पुरुष पिता है, और पिता नहीं है और दोनों है - यदि कोई इन वक्तव्यों के अवलोकन बिन्दु को समझ जाए तो इसका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगा। किसी खास बच्चे का तो वह पिता है लेकिन किसी दूसरे बच्चे का वह पिता नहीं है; यदि दोनों बच्चों के सन्दर्भ में बात की जाए तो वह पिता है भी और नहीं भी है। यदि एक ही साथ शब्दों में दोनों विचार प्रस्तुत नहीं किए जा सकते तो वे अवर्णनीय हैं।

स्यादवाद के सिद्धान्त में सकारात्मकता और नकारात्मकता के बीच के परस्पर सम्बन्ध पर बल दिया जाता है। जैन धर्म ज्ञान की वस्तु के स्वरूप के सन्दर्भ में न्याय के सापेक्षिक या सशर्त स्वरूप पर बल देता है। इस दृष्टिकोण के कारण जैन दर्शन यथार्थ को विभिन्न कोणों से देखने की मुक्त दृष्टि प्रदान करता है।

## 1.4 त्रिरत्न

जैन धर्म में सम्यक् (सही) आस्था, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण से क्या तात्पर्य है। जैन धर्म में इस बात पर बल दिया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति की वास्तविकता को, अपने आपको, धार्मिक लक्ष्य और मार्ग को जानने और पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यक्ति को तीर्थंकर के उपदेशों और जैन धर्म के ग्रन्थों पर पूर्ण आस्था होनी चाहिए। सम्यक् ज्ञान का मतलब है यथार्थ और उपयुक्त तत्वों का समुचित और प्रासंगिक ज्ञान। व्यक्ति को छह सार्वभौमिक तत्वों का ज्ञान होना चाहिए - आत्मा, पदार्थ, गति, विराम, देश और काल; और सात तत्व या सिद्धान्त हैं:

- जीव (आत्मा),
- अजीव (अनात्मा),
- आस्रव (आत्मा में कार्मिक पदार्थ की बहुलता),
- बंध (कार्मिक पदार्थों द्वारा आत्मा का बंधन),
- सम्बर (आस्रव का रोकना),
- निर्जर (कार्मिक पदार्थों से धीरे-धीरे मुक्ति),
- मोक्ष (निर्वाण की प्राप्ति),

सम्यक् ज्ञान में संदेह, मोह और अनिश्चितता के लिए कोई स्थान नहीं है। जिस आत्मा को सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आस्था प्राप्त होती है, वह सम्यक् आचरण करने लगता है। व्यक्ति को पसंद और नापसंद की सीमा से ऊपर उठकर सभी आकांक्षाओं और इच्छा से मुक्त होकर पाँच शपथ लेनी चाहिए; अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अनासक्ति और ब्रह्मचर्य। सम्यक् आस्था, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् आचरण, ये तीनों सफल जीवन और मोक्ष के पक्ष पर अग्रसर होने के लिए अनिवार्य हैं।

महावीर की मृत्यु के बाद जैन धर्म के अनुयायी मुख्य रूप से दो प्रमुख पंथों यानी श्वेताम्बर और दिगम्बर में बंट गए। दोनों ही पंथों की उत्पत्ति के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। श्वेताम्बरों की उत्पत्ति के बारे में दिगम्बरों का यह मानना है कि उत्तर भारत में आए अकाल के कारण जैन भिक्षुओं का एक दल दक्षिण भारत गया। दक्षिण भारत में जो जैन बच गए उन्होंने अपने आचरण के नियमों में कुछ परिवर्तन किया और श्वेत वस्त्र पहनने लगे। परन्तु श्वेताम्बरों का अपनी उत्पत्ति के बारे में कहना है कि 'शिवभूति नामक एक श्वेताम्बर ने भिक्षु धर्म ग्रहण किया क्योंकि उसकी सास ने एक रात उसे कोठरी में बन्द कर दिया था। इसके बाद उन्होंने महावीर के पथ पर चलने की प्रतिज्ञा ली और मठ के कपड़े त्याग दिये।' हालांकि अन्य प्रमाणों से यह पता चलता है कि कपड़े पहनने और न पहनने को लेकर जैन धर्म के अनुयायी दो पंथों यानी श्वेताम्बर और दिगम्बर में एक लम्बे समय में

विभक्त हुए। महावीर और उनके अनुयायी नग्न भिक्षु थे और श्वेताम्बर रूप में वस्त्र धारण कई शताब्दियों बाद हुआ। प्रथम शताब्दी ई० में यह मतभेद सामने आने लगा था और पांचवीं शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध में वल्लभी में हुए परिषद के समय यह भेद स्पष्ट हो चुका था। इन दो पंथों के बीच मुख्य रूप से विवाद धर्म सिद्धांत, मिथकीय विवरणों और सन्यासी जीवन बिताने को लेकर था। दिगम्बर परम्परा के अनुसार एक भिक्षु को गर्व और शर्म जैसे सामाजिक मानदण्डों की चिंता नहीं करनी चाहिए और अपनी सभी वस्तुएं त्याग देनी चाहिए। एक दिगम्बर भिक्षु के पास मोरपंख से बना झाड़न और धोने के लिए और पानी रखने के लिए एक कमंडल होना चाहिए। दिगम्बर सन्यासिनी उजली साड़ी पहनती हैं। दिगम्बर परम्परा में महिलाएं मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकती हैं। इसके लिए उन्हें पहले पुरुष के रूप में जन्म लेना होगा। श्वेताम्बर भिक्षु और सन्यासिनी सफेद कपड़े तीन टुकड़ों में पहनती हैं और उनके पास भिक्षा मांगने का एक पात्र होता है और कीड़े मकोड़ों से बचने के लिए एक छोटा सा ऊन से बना झाड़न होता है। इसे बाद कई उपपंथ भी सामने आए जैसे मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापंथी। ये सब श्वेताम्बर समूह के अन्तर्गत ही आते हैं। असल में, जैन धर्म के अनुयायियों ने तीर्थकरों के उपदेशों को जिस प्रकार व्याख्यायित किया, उससे अलग-अलग लोग सहमत और असहमत होते हुए विभिन्न पंथों और उपपंथों से जुड़ते चले गए। जैन धर्म ग्रन्थों की वैधता को स्वीकार करने के सन्दर्भ में भी उनमें अन्तर है।

## 1.5 जैन साहित्य

जैन धर्म ग्रन्थ किसी एक खास अवधि में नहीं लिखे गए। इनमें समय-समय पर कई संशोधन हुए। गांधार कहे जाने वाले महावीर के उपदेश जो उन्होंने अपने प्रमुख शिष्यों को प्रदान किए थे - को पहले चौदह पूर्वों में संकलित किया गया। ऐसा कहा जाता है कि चौथी शताब्दी ई० में स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में एक महापरिषद बुलाई और जैन सिद्धान्तों को बारह अंगों में पुनर्संरचनाकृत किया। बाद में वल्लभी में पांचवीं शताब्दी ई० में हुई परिषद में मौजूदा ग्रंथों को संरचनाकृत किया गया और उन्हें लिखा गया। ये ग्रन्थ अर्धमागधी और शौरसेनी में लिखे गए। श्वेताम्बरों ने इन ग्रन्थों को स्वीकार किया और उन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया:

12 अंग

12 उपांग

10 प्रकीर्ण

6 छेदसूत्र

2 सूत्र

#### 4 मूलसूत्र

इन सभी धार्मिक ग्रन्थों में आचार संहिता, विभिन्न अनुश्रुतियों, जैन सिद्धांतों और अधिभौतिक तत्वों की चर्चा की गई है।

दिगम्बर का मानना है कि अधिकांश मौलिक 'पूर्व' खो चुके हैं। इस प्रकार श्वेताम्बर द्वारा स्वीकृत मौजूदा जैन ग्रन्थों को दिगम्बर स्वीकार नहीं करते। महावीर के मौलिक उपदेशों पर आधारित ग्रन्थों का लेखन महान आचार्यों ने किया। दिगम्बर उन्हीं के आधार पर अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। कुछ दिगम्बर ग्रन्थों को शटखंड-आगम, कषाय-पाहुद, प्रथम-अनुयोग, चरण-अनुयोग, करण-अनुयोग, द्रव्य-अनुयोग के नाम से जाना जाता है। ये सभी साहित्य मिलकर जैन धर्म को एक बृहद धार्मिक व्यवस्था बनाते हैं।

### 1.6 स्थापत्य कला

स्थापत्य कला के क्षेत्र में जैनियों का महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी कलात्मक कृतियाँ स्मारक, स्तूप, मूर्तियाँ, मन्दिर, मठ और गुफाओं के रूप में हैं। बराबर व नागार्जुनी पहाड़ियों पर स्थित गुफाएँ प्राचीनतम जैन गुफाएँ हैं। उड़ीसा के पुरी, उदयगिरि और खण्डगिरि नामक स्थानों पर जैन गुफाएँ हैं, जिनके सबसे अधिक आकर्षक अंग खम्भों के ऊपर अंकित ब्रैकेट (ठतंबामजे) हैं, जो पेड़-पौधों के रूप में बने हुए हैं। उदयगिरि की रानीगुफा और गणेशगुफा सबसे अधिक सुन्दर हैं। एलोरा में प्राप्त होती हैं, जिसमें इन्द्रसभा नामक दो मंजिली गुफा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसकी ऊपर की मंजिल में जैन तीर्थकारों की मूर्तियाँ हैं और नीचे की मंजिल की दीवारों तथा स्तम्भों पर बहुत सुन्दर चित्र खनित हैं। इनके अतिरिक्त राजगिरि की सोन भण्डार, जूनागढ़ की बाब प्यारा मठ के समीप की गुफाएँ, प्रयाग तथा कौशाम्बी के पास की पभोसा की गुफाएँ, बादामी की जैन गुफा आदि प्रसिद्ध जैन गुफाएँ हैं।

प्राचीनतम जैन मन्दिरों में प्राप्त जैन मन्दिरों में एहोल का नेघुटी मन्दिर उल्लेखनीय है। इसके अवशेष उसकी वास्तुकला का परिचय देते हैं। यह मन्दिर गुप्त व चालुक्य काल की स्थापत्य शैली का परिचायक है इसमें जो कलात्मकता और अलंकरण हैं, वह तत्कालीन मन्दिरों में अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। मध्य भारत में 10वीं और 12वीं शताब्दी में निर्मित पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ और आदिनाथ नामक मन्दिर खजुराहो में प्राप्त होते हैं, जिनकी कार्निशों पर हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इन मंदिरों में पार्श्वनाथ का मन्दिर सबसे विशाल है तथा इसकी बाह्य भित्तियों पर अंकित अप्सराओं की मूर्तियाँ अत्यन्त सजीव हैं। शान्तिनाथ मन्दिर में तीर्थकर शान्तिनाथ की 15 फुट ऊँची विशाल प्रतिमा है। देवगढ़ नामक स्थान 31 जैन-मन्दिर प्राप्त हुए हैं। जैन-मन्दिर का सर्वोत्कृष्ट कलात्मक रूप आबू पर्वत पर दिलवाड़ा नामक स्थान पर स्थित मन्दिरों में दिखायी पड़ता है। इन मन्दिरों में दो विशेष रूप

से उल्लेखनीय है, जिनकी निर्माण विमलशाह तथा वस्तुपाल एवं तेजपाल ने 1032 और 1232 ई0 में कराया था। ये दोनों मन्दिर श्वेत संगमरमर से निर्मित हैं। उनके रंगमण्डप, गूढ, मण्डप, गर्भगृह तथा स्तम्भ का अलंकरण दर्शनीय है। गिरनार (काठियावाड़, पालीताना, पहाड़ियों पर रानपुर (जोधपुर) और श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) में भी जैन मन्दिरों के समूह प्राप्त होते हैं।

मथुरा से प्राप्त जैन मूर्तियों में वासुदेव के समय की आदिनाथ की मूर्ति उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त यहाँ से पार्श्वनाथ तथा नेमिनाथ की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। राजगिरि के वैभार पर्वत की नेमिनाथ की मूर्ति, विदिशा के समीप उदयगिरि की गुफा में उत्कीर्ण पार्श्वनाथ की मूर्ति, कहाऊँ (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त चार तीर्थंकरों सहित पार्श्वनाथ की मूर्ति, वेसनगर, बूढ़ी चन्देरी तथा देवगढ़ से प्राप्त जैन मूर्तियाँ गुप्तकालीन जैन मूर्तिकला का परिचय प्रदान करने वाली प्रसिद्ध मूर्तियाँ हैं।

जैन चित्रकला के प्राचीनतम उदाहरण तमिल प्रदेश के तंजोर की सित्तान्नवासल गुफा में प्राप्त होते हैं। इस गुफा की समस्त भित्तियाँ व छत चित्रित थी। अधिकांश चित्र अब नष्ट हो चुके हैं, किन्तु शेष चित्रों से उसके अलंकरण का अनुमान किया जा सकता है। आकाश में मेघों के बीच नृत्य करती हुई अप्सरा, कमल तोड़ते स्त्री-पुरुष की युगल आकृति, क्रीड़ा करते हसंयुगल आदि सुन्दर चित्र हैं। एलोरा के कैलाश मन्दिर में एक दिग्म्बर मुनि की यात्रा का चित्रण है। एलोरा के श्रवणबेलगोला के जैनमठ में अंकित भित्ति-चित्र भी आकर्षक हैं।

## 1.7 सारांश

जैन धर्म कई वर्षों में एक धार्मिक परम्परा के रूप में विकसित हुआ। इस दौर में लोगों के भौतिक जीवन में परिवर्तन आया। चारागाही समाज कृषि समाज बना। व्यापार और वाणिज्य का विस्तार हुआ। अनुष्ठानों और पुरोहितों के वर्चस्व के खिलाफ प्रतिक्रिया हुई। नये धार्मिक आन्दोलनों का उदय हुआ। छठी शताब्दी ई0पू0 में भारत में दो महत्वपूर्ण धार्मिक परम्पराएं जैन धर्म और बौद्ध धर्म विकसित हुईं। जैनों का मानना है कि कुल मिलाकर चौबीस तीर्थंकर हुए और महावीर उनमें अन्तिम तीर्थंकर हैं। ऐसा माना जाता है कि मुख्य रूप से महावीर और उनके पूर्वज पार्श्वनाथ ने जैन धर्म को आकार दिया था। जैन धर्म के अनुसार यह ब्रह्मांड शाश्वत है और उसके निर्माण में ईश्वर का कोई योग नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार इस विश्व को जीव और अजीव में विभक्त किया जाता है। जैन धर्म का मानना है कि अनन्त काल से आत्मा कर्म के बन्धनों में जकड़ी हुई है। इस ब्रह्मांड की प्रत्येक परिघटना कार्मिक ऊर्जा का ही प्रतिफलन है। जैन दर्शन में विभिन्न प्रकार के कार्मिक पदार्थों और कामों की चर्चा की गई है। संग्रहीत कार्मिक पदार्थ ज्ञान और प्रसन्नता के मार्ग में बाधक होते हैं। सम्यक् आस्था, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् आचरण व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन को पाने के लिए और मोक्ष की प्राप्ति के लिए नियम बनाए गए हैं। गृहस्थ या सन्यासी के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का पालन करना अनिवार्य है। इसका पालन

करके ही आत्मा एक उच्च आदर्श पर पहुँचती है और उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। जैन धर्म अनेकांतवाद या यथार्थ के अनेक पहलुओं पर विश्वास रखता है। इसके अनुसार इस दुनिया में कई विरोधी दृष्टिकोण उपस्थित हैं। इन सबों को मिलाकर एक समग्र दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए।

## 1.8 शब्दावली

1. आस्रव : आस्रव का अर्थ 'बहना' पुद्गलरूपी कर्म का जीवन की ओर आकृष्ट होना आस्रव है।
2. निर्जरा : निर्जरा भी सात तत्वों में से एक तत्व है। पहले से प्राप्त कर्मों के त्याग को निर्जरा कहा जाता है।
3. सम्बर : नए कर्मों को आत्मा में प्रवेश करने और रोकने की प्रक्रिया को सम्बर बोलते हैं। यह अपनी इच्छा पर विजय प्राप्त कर तपस्या, संयम, ध्यान और प्रार्थना से सम्भव होता है।
4. अचेलक : पार्श्वनाथ के शिष्य।
5. संल्लेखना : उपवास द्वारा मृत्यु।
6. बसदि : जैन मठ।

## 1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेहता, मोहन लाल, जैन धर्म दर्शन, बैंगलूर, 1999
2. जैन, हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, 1962
3. जैन, जगदीश चन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, वाराणसी, 1965
4. जैन, भालचन्द्र, जैन संस्कृति कोश I, II, III वाराणसी, 2002
5. जैन, बलभद्र, जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, दिल्ली, वि०सं०, 2500

## 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. छठी शताब्दी ईसा पूर्व की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. महावीर की शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए।
3. जैन धर्म के स्यादवाद की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए?
4. जैन धर्म में जीव और अजीव के महत्व पर प्रकाश डालिए?
5. जैन धर्म के श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए

## इकाई-दो : महात्मा बुद्ध: बौद्ध धर्म, बौद्ध धर्म का विस्तार, बौद्ध धर्म-दर्शन ,महायान ,हीनयान ,भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन ,पतन के कारण

- 
- 2.0 प्रस्तावना
  - 2.1 उद्देश्य
  - 2.2 महात्मा बुद्ध
  - 2.3 बौद्धधर्म
  - 2.4 बौद्ध धर्म का विस्तार
  - 2.5 बौद्ध धर्म दर्शन
    - 2.5.1. महायान
    - 2.5.2. हीनयान
  - 2.6. भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन
  - 2.7 पतन के कारण
  - 2.8 साराँश
  - 2.9. शब्दावली
  - 2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
  - 2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
  - 2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 2.0 प्रस्तावना

नेपाल के बिथरी जिले में तथा हिमालय की तराई में स्थित शाक्य गणराज्य के कपिलवस्तु में राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म 563 ई0पू0 में हुआ था। 29 वर्ष की अवस्था में उन्होंने सत्य की खोज में तथा दुःखों से परिपूर्ण समस्त मानवता के कल्याण के लिए गृह त्याग किया, जिसको बौद्ध साहित्य में महाभिनिष्क्रमण कहा जाता है।

कठोर तपस्या एवं साधना के पश्चात् बोधगया नामक स्थान पर उन्हें सम्बोधि की प्राप्ति हुई। ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने उस ज्ञान को मानव के कल्याणार्थ उपदेश देने का निश्चय किया और अपने 5 साथियों को जो उनका साथ छोड़कर चले गए थे, सर्वप्रथम ज्ञान दिया। जिसे बौद्ध जगत में प्रथम धर्मचक्रप्रवर्तन के नाम से जाना जाता है। 45 वर्षों तक उन्होंने घूम-घूम कर मानव के कल्याण हेतु उपदेश दिया। उनका धर्म एक ऐसा सिद्धान्त था जो मानववाद की बुनियाद पर आश्रित था।

बुद्ध ने मानव जीवन को दुखों से परिपूर्ण बताया तथा उसके निवारण पाने का उपाय भी बताया और 80 वर्ष की अवस्था में कुशीनगर नामक स्थान पर उनका महापरिनिर्वाण हुआ। बुद्ध ने अपने उपदेशों से जनमानस में जागरूकता उत्पन्न करने तथा कर्मवाद पर अत्यधिक बल दिया।

## 2.1 उद्देश्य

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हुए धार्मिक परिवर्तन का जनमानस पर प्रभाव।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में बौद्ध धर्म के उपदेशों को प्रचारित-प्रसारित करने में पाली भाषा का योगदान।

बौद्ध धर्म के उदय में तत्कालीन परिस्थितियों का योगदान।

## 2.2 महात्मा बुद्ध

कोशल देश के उत्तर में कपिलवस्तु शाक्य क्षत्रियों का एक छोटा सा गणराज्य था। यहाँ शुद्धोधन नामक एक राजा थे। 563 ई0पू0 राजा शुद्धोधन की कोलियवंशीय पत्नी महामाया अथवा मायादेवी के गर्भ से गौतम (जो बाद को महात्मा बुद्ध कहलाये) नेपाल की तराई में स्थित लुम्बिनी वन में जन्म हुआ था जो कपिलवस्तु से लगभग 14 मील दूरी पर है। कालान्तर में यहीं पर सम्राट अशोक ने एक स्तम्भ स्थापित करवाया था। जिस पर आज भी 'हिंदे बुद्धे जातेति साक्यमुनिति हिंदं भगवा जातेति' (यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए थे-यहाँ भगवान उत्पन्न हुए थे) पढ़ा जाता है। गौतम के जन्म के सातवें दिन ही उनकी माता का देहान्त हो गया। अतः उनका पालन-पोषण उनकी विमाता महाप्रजापती गौतमी बालक गौतम को पुस्तकीय शिक्षा के अतिरिक्त क्षत्रियोचित सामरिक

शिक्षा भी दी गई। शीघ्र ही वे घुड़सवारी, तीरंदाजी, मल्ल-कला आदि क्षेत्रों में सिद्धहस्त हो गये। लेकिन प्रकृत्या चिन्तनशील होने के कारण उनका मन इन सब सांसारिक विषयों में नहीं लगता था। वे सदैव किसी चिन्ता में चिन्तित रहते थे। प्रायः लोग उन्हें अपने घर से दूर एक जम्बूवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न अवस्था में बैठे देखा करते थे। उनकी चिन्ता का विषय क्या था, यह तो बाद को ही संसार को ज्ञात हुआ।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बड़ी सुख-समृद्धि के बीच व्यतीत हुआ। उनके रहने के लिए ऐश्वर्य की समस्त सामग्री उपलब्ध थी। उनके घूमने-फिरने के लिए अनेक रम्य उपवनों का निर्माण हुआ। 16 वर्ष की अल्पायु में उनका विवाह रूपवती एवं गुणसम्पन्न क्षत्रिय कन्या यशोधरा से हुआ। कुछ समय पश्चात् यशोधरा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम राहुल था।

त्रिपिटक में अनेक ऐसे दृश्यों और घटनाओं का उल्लेख है जिनसे उनके वैराग्य-प्रधान स्वभाव को उद्दीपन मिला। कहते हैं कि नगर दर्शन हेतु भिन्न-भिन्न अवसरों पर बाहर जाते समय उनको को मार्ग में पहले जर्जर शरीर, वृद्ध, शव और अन्त में प्रसन्नचित संन्यासी के दर्शन हुए। इन दृश्यों के भाव प्रवण उनके हृदय में प्रवृत्तिमार्ग की निस्तारता और निवृत्तिमार्ग की सन्तोष भावना को मजबूत किया। उन्होंने सांसारिक दुःखों से निवृत्ति का मार्ग खोजने तथा अपनी भार्या तथा शिशु को छोड़कर 29 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग कर दिया।

डी0डी0 कौसाम्बी गौतम बुद्ध के गृह त्याग का एक राजनीतिक कारण भी बताते हैं। उनका कथन है कि शाक्यों के पड़ोसी और सम्बन्धी कोलीय राजा थे। इन दिनों क्षत्रिय जातियों में रोहिणी नदी के पानी के विषय पर बहुधा युद्ध हुआ करता था। इसी प्रकार के अवसर पर कोलियों के दमन का भार शाक्यों ने गौतम को देना चाहा। परन्तु गौतम इस पारस्परिक शत्रुता से खिन्न रहते थे। अतः उन्होंने शस्त्र ग्रहण करने से इन्कार कर दिया, परन्तु इस इन्कार से भयंकर परिणाम हो सकता था। सम्भव था कि शुद्धोधन के समस्त परिवार को राज्य से बाहर निकाल दिया जाता। इस संकट से अपने परिवार की रक्षा करने हेतु गौतम ने स्वयं गृह त्याग कर दिया। परन्तु यह राजनीतिक त्याग के पीछे एक मात्र पारिवारिक संरक्षा की चिन्ता न थी। वे तो सम्पूर्ण मानव जाति के लिए व्याकुल थे।

गृह त्याग करने के पश्चात् गौतम ने 7 दिन अनूपिय नामक आम्रवन में व्यतीत किये। इसके पश्चात् एक लम्बी यात्रा करके वे राजगृह पहुँचे। वहाँ के राजा ने उन्हें भारी ऐश्वर्य प्रदान करना चाहा, परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया और आगे चल दिये। कालान्तर में वे आलार कालाम नामक एक तपस्वी के पास पहुँचे, जो संख्योपदेशक थे। उन्होंने उन्हीं के पास रहकर ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न करने लगे। परन्तु अन्त में यह जानकर कि आलार कालाम का यह धर्म न निर्वेद के लिए, न वैराग्य के लिए, न निरोध के लिए, न उपशम के लिए, न अभिज्ञा के लिए, न सम्बोधि के लिए और न निर्वाण के लिए उन्होंने उनका साथ छोड़ दिया। इसके बाद वे उरुवेला की सुरम्य वनस्थली में पहुँचे। यहाँ पर

उन्हें कौडिन्य, बप्पा, भदिय, महानाम, अश्वजीत पाँच तपस्वी मिले। अन्य व्यक्तियों की सहायता से सफलता मिलती न देखकर

गौतम ने अब स्वयं आत्म-पौरुष (प्रधान) का अवलम्बन लिया। उन्होंने गया के एक वट वृक्ष के नीचे बैठकर ध्रुव समाधि लगाई। वे सात दिन और सात रात समाधि में स्थित रहे। आठवें दिन वैशाख पूर्णिमा पर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। उस दिन से वे तथागत कहलाये। उनके बोध प्राप्ति से सम्बन्धित होने के कारण गया 'बोध गया' और वट वृक्ष जिसके नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था, बोधिवृक्ष के नाम से प्रख्यात हुए। आज भी ये विश्व के एक विशाल जन-समूह की प्रगाढ़ श्रद्धा-भक्ति के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध है।

## 2.3 बौद्धधर्म

तथागत बुद्ध ने यह निश्चय किया कि पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए उनका उपदेश आवश्यक है। अतः उन्होंने धर्म प्रचार करने का निश्चय किया। सदियों से चली आ रही रूढिवादी परम्परा से बौद्ध धर्म ने अपनी नई मान्यता सामने रखी। बौद्ध दर्शन अमूर्त-चिंतन पर बल नहीं देता है और न ही ईश्वर के अस्तित्व या विश्व के आरम्भ और अन्त जैसे प्रश्नों पर विचार-विमर्श करता है। उनका कहना था कि "यदि परम सत्ता से तात्पर्य यदि ऐसी कोई चीज से है जिसे हम जान नहीं सकते तो इसके अस्तित्व को किसी भी तर्क से स्थापित नहीं कर सकते।" वे बोधगया से ऋषिपत्तन (सारनाथ) पहुँचे और वहाँ उन्होंने सर्वप्रथम धर्मोपदेश अपने पुराने पाँच साथियों को धर्मोपदेश दिया, जो उनका साथ छोड़कर चले गये थे। उनके द्वारा दिया गया उपदेश प्रथम धर्म चक्र परिवर्तन कहा जाता है। उन्होंने अपने उपदेश में किसी भी ऐसी चीज के बारे में अनुमान नहीं किया जिससे वे परिचित न हो और उन्होंने इसे रोजमर्रा के जीवन में घटने वाली घटना से जोड़कर ही रखा। बौद्ध धर्म ने अपने को अनुष्ठानों, धर्म सिद्धांतों और अलौकिकता से दूर रखा और चरित्र की पवित्रता और सद्गुणों के विकास पर बल दिया। बौद्ध दर्शन के अनुसार स्व का विचार एक छलावा है। एक कल्पना है जो 'मैं' या 'मेरा' का विनाशकारी विचार पैदा करता है। यही गलत विचार दुनिया की हर बुराई की जड़ है। उनका उपदेश इस बात पर प्रकाश डालता है कि मनुष्य का जीवन कष्ट और दुःख से घिरा हुआ है और उन्होंने इस दुःख और कष्ट से राहत पाने के अनेक मार्ग बताए हैं। बुद्ध का दर्शन तीन शब्दों में व्याख्यायित किया जा सकता है: अनामन, अनित्य और दुःखा। निर्वाण के सिवा सब कुछ अनित्य है, इसलिए दुःख कारण है और वह नश्वर है।

उन्होंने चार आर्य सत्य का उपदेश दिया जो इस प्रकार हैं-

- दुःखा
- दुःख समुदया
- दुःख निरोधा

- दुःख निरोध प्रतिपदा गामिनी।

इस अष्टमार्ग से मनुष्य में सद्गुण, मनन और बुद्धि का विकास होता है जो इस प्रकार है:-

- सम्यक् समझ
- सम्यक् सोच
- सम्यक् वाणी
- सम्यक् आचरण
- जीवन-यापन के सम्यक् साधन
- सम्यक् उद्यम
- सम्यक् स्मृति
- सम्यक् ध्यान

सम्यक् समझ का मतलब है कि दुनिया को सही दृष्टि से देखना और उसे सही रूप से व्याख्यायित करना। यह दुनिया में फैले सभी बुरे विचारों और दृष्टियों को त्यागने पर बल देता है और इस सत्य से परिचित कराता है कि दुनिया अनन्त दुःखों से परिपूर्ण है और इसका कारण स्वार्थ और अनियंत्रित इच्छाएँ हैं। 'लालच और लाभ से मुक्त, ईर्ष्या से मुक्त, क्रूरता से मुक्त सोच ही सम्यक् सोच है।' बिना दूसरे की भावनाओं को चोट पहुँचाएँ और बिना झूठ बोले हुए बातचीत करना ही सम्यक् साधन का मतलब है कि व्यक्ति को सही जीवन-यापन करने के लिए गलत चीजों का प्रयोग न करते हुए ईमानदार बने रहना चाहिए। सम्यक् उद्यम का मतलब है सही मानसिक स्थिति और बुरे विचारों को हावी होने से रोकना। सही मानसिक स्थिति के जरिये मनुष्य लगाव, क्रोध, ईर्ष्या आदि इच्छाओं, भावनाओं को नष्ट कर सकता है। सम्यक् स्मृति को एक ऐसी तकनीक माना जा सकता है जिसके जरिए दुनिया के बुरे तत्वों की समाप्ति के लिए लोगों को प्रार्थना करने या ध्यान लगाने की ओर प्रकृत किया जाए। सम्यक् ध्यान के द्वारा व्यवस्थित उपासना और प्रार्थना के जरिए एक समग्र चेतन को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है मनुष्य को सम्पूर्ण बनाना बौद्ध धर्म का प्रमुख लक्ष्य है जिसे जीवन का असल उद्देश्य माना जाता है खुशी, संतोष और भय से मुक्ति प्राप्त करने के लिए बुद्ध द्वारा सुझाए गए रास्ते पर चलना अत्यंत आवश्यक है।

भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया, भिक्षुओं दो अतिवाद हैं। जिन्होंने इस दुनिया को त्याग दिया है उन्हें इनसे दूर रहना चाहिए। ये दो अतिवाद क्या हैं? सुख और ऐशोआराम में लिप्त जीवन: यह उमानवोचित, कामुक, अभद्र, अधम और अकल्याणकारी है। इन दो अतिवादों को त्यागकर भिक्षुओं, तथागत में मध्यमार्ग का ज्ञान प्राप्त किया है जो अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जो सुबुद्धि देता है, जो शांति, ज्ञान, संबोधित, निर्वाण की ओर ले जाता है।

ये भिक्षुओं, तथागत ने इसी मध्यमार्ग ज्ञान प्राप्त किया है जो अंतर्दृष्टि प्रदान करता है जो सुबुद्धि देता है, जो शान्ति, ज्ञान, संबोधि निर्वाण की ओर ले जाता है। यह अष्टमार्ग है: सम्यक्

आस्था, सम्यक् इच्छा, सम्यक् वाणी, सम्यक् आचरण, जीवन-यापन का सम्यक् साधन, सम्यक् उद्यम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् ध्यान। ये भिक्षुओं, तथागत ने इसी मध्यमार्ग का ज्ञान प्राप्त किया है जो अंतर्दृष्टि प्रदान करता है जो सुबुद्धि देता है, जो शांति, ज्ञान, संबोधित निर्वाण की ओर ले जाता है। ये भिक्षुओं, यह दुःख एक परम सत्य है: जन्म दुःख है, हास दुःख है, बीमारी दुःख है, मृत्यु दुःख है। वस्तुओं से घृणा करना दुःख है जिनसे हम प्यार करते हैं उनसे विछड़ना दुःख है, जो हम पाना चाहते हैं, उसका न मिलना दुःख है। संश्रय में इस जीवन के इन पाँच प्रकारों से चिपके रहना ही दुःख है।

ये भिक्षुओं, इस दुःख की समाप्ति भी एक परम सत्य है। मनोविकारों के अंत के साथ इसका भी अंत हो जाता है। अपनी इच्छाओं को नष्ट कर, इस प्यास को त्यागकर, छोड़कर, इससे दूर रहकर हम अपने दुःखों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

ये भिक्षुओं, यही परम सत्य मार्ग है जिस पर चलकर हम अपने दुःखों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। यह पवित्र अष्टमार्ग है: सम्यक् आस्था, सम्यक् इच्छा, सम्यक् वाणी, सम्यक् आचरण, जीवन-यापन का सम्यक् साधन, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् स्मृति, सम्यक् ध्यान।

45 वर्षों के अनवरत धर्मोपदेश के पश्चात् महात्मा बुद्ध की वृद्धावस्था आ पहुँची। उनके शरीर पर जरा के समस्त लक्षण प्रकट हो गए। अपना अवसान-काल आया देख कर एक दिन महात्मा बुद्ध ने आनन्द से कहा-मैं जीर्ण, वृद्ध उध्वगत् वयः प्राप्त हूँ। अस्सी वर्ष की मेरी आयु है। आनन्द, जैसे-पुरानी गाड़ी बाँध-बँधकर चलती है, वैसे ही आनन्द, तथागत का शरीर बाँध-बँधकर चल रहा है ..... इसलिए आनन्द। आत्मदीप, आत्मशरण, अनन्यशरण, धर्मदीप, धर्मशरण, अनन्यशरण होकर विहरो,। वैशाली से महात्मा बुद्ध पाँवा गये और वहाँ चुन्द कमरि-पुत्र (सोनार) के घर पर भोजन किया। इसके पश्चात् पेचिश हो गई। किन्तु उस वेदना को किसी प्रकार सहन करते हुए वे कुशीनारा पहुँचे। अब उनका निर्वाण अति सन्निकट था। इसलिए उन्होंने भिक्षुओं को बुलाकर अंतिम उपदेश दिया, आनन्द। शायद तुम ऐसा सोचो कि हमारे रास्ता चले गये अब हमारा रास्ता नहीं है आनन्द। इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश दिये हैं, मेरे बाद वे ही तुम्हारे रास्ता होंगे।

## 2.4 बौद्ध धर्म का विस्तार

सर्वविदित है कि मौर्य सम्राट अशोक के शासन-काल में उसके पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए श्री लंका गए थे। यही नहीं, अशोक के समय में अन्य बौद्ध धर्म के प्रचारक मध्य एशिया तथा दक्षिण-पूर्व-एशिया के देशों में गए थे। धीरे-धीरे बौद्ध धर्म के प्रवाह ने मध्य एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया को आप्लावित कर लिया और इसके बाद वह यूरोप तक पहुँच गया। बौद्ध धर्म में प्रारम्भ से ही व्यापारियों एवं वणिकों की रुचि थी। ये व्यापारी समुद्र पार

करके तथा लम्बी-2 यात्राएं कर सुदूर प्रदेशों में जाया करते थे और उन देशों में जाकर व्यापार के साथ-साथ बौद्ध धर्म का प्रसार भी करते थे। इस प्रकार व्यापारियों एवं धर्म प्रचारकों के द्वारा बौद्ध धर्म का व्यापक प्रसार-प्रचार हुआ। सोपागा तथा सेलेबीज द्वीप समूहों से प्राप्त ई0पू0 चौथी शताब्दी की मूर्ति इस बात को प्रमाणित करती है कि उन देशों में इस समय बौद्ध धर्म का प्रसार था और यह भी कहा जाता है कि बोर्नियो द्वीप के नामकरण में बौद्ध यापारियों का ही योगदान रहा है। मलाया में भी बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ। पहली सदी से ही दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में इस धर्म का प्रचार होने लगा था।

श्री विजय बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र-स्थल बन गया वहां दूर-दूर से आकर लोग बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। दीपांकर श्रीज्ञान जैसे विद्वान भी वहां शिक्षा प्राप्त करने के लिए गये थे। दक्षिण-पूर्व एशिया की तरह मध्य एशिया के देशों में भी इस धर्म का प्रचार हुआ।

तजाकिस्तान से प्राप्त बुद्ध की विशालकाय मूर्तियाँ तथा बौद्ध धर्म के अवशेष स्पष्ट करते हैं कि कनिष्क के समय बौद्ध धर्म उन क्षेत्रों में फैल चुका था। चीन के कानसू प्रान्त की सीमा पर तुनहंग से ऐसे प्रमाण मिले हैं, जो वहाँ पर बौद्ध धर्म के प्रधान केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। वस्तुतः चीन के सांस्कृतिक जीवन में बौद्ध धर्म का अभूतपूर्व योगदान है। यहाँ से कुमारजीव जैसे विद्वान जाकर ज्ञान और दर्शन के प्रसार में संलग्न रहे। चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार-प्रचार वहाँ के यात्रियों द्वारा किये गये।

चीन से बौद्ध धर्म कोरिया और जापान गया तथा वहाँ के धार्मिक और सामाजिक जीवन का आधार बन गया। तिब्बत में बौद्ध का प्रसार तेजी से हुआ और लोग पूर्णतः बौद्ध धर्मानुयायी हो गये। वहाँ के प्रसिद्ध विद्वान लामा तारानाथ है जिसने बौद्ध धर्म एवं दर्शन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया है।

अलबरूनी ने लिखा है कि मुसलमान होने से पहले ईरान, ईराक जैसे देशों के निवासी बौद्ध थे। सम्राट अशोक ने ग्रीस, सीरिया आदि पश्चिमी देशों के पीड़ित प्राणियों के लिए औषधियाँ बँटवाकर तथागत के संदेश प्रसारित करवाए थे। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार विश्व के विभिन्न देशों में हुआ।

## 2.5 बौद्ध धर्म दर्शन

ऐसा माना जाता कि बुद्ध की मृत्यु के तुरन्त बाद बौद्धों की एक बहुत बड़ी सभा हुई जिसमें बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों उपाली और आनन्द ने विनय पिटक और सुत्त पिटक का वाचन किया। बुद्ध की मृत्यु केलगभग 100 वर्षों बाद वैशाली में दूसरी बौद्ध परिषद् आयोजित की गई। इस समय तक बौद्ध भिक्षुओं में कई मुद्दों पर मतभेद उभर सामने आ चुके थे। बौद्ध धर्म में दो प्रमुख दलों का उदय हुआ जिसे स्थविरवदिन (थेरावदिन) और महासंघिक कहा गया। तीसरी बौद्धपरिषद् अशोक काल में

पाटिलपुत्र में आयोजित हुई। इस परिषदमें केवल विनय को लेकर ही नहीं बल्कि धम्मको लेकर भी मतभेद उभरे। परिषद के अध्यक्ष मोगलिपुत्र तिस्सा ने कथावस्तु नामक एक पुस्तक का संपादन किया जिसमें कुछ पंथों द्वारा प्रचारित किए जा रहे विधर्मों, झूठे दृष्टिकोणों का खण्डन किया गया।

यहीं पर अभिधम्म पिटक को शामिल किया गया। चौथी बौद्ध परिषद् कश्मीर में कनिष्क के शासन काल में वसुमित्र और अश्वघोष के नेतृत्व में आयोजित की गयी। इस प्रकार धीरे-धीरे बौद्ध दर्शन की व्याख्या को लेकर भिक्षुगण लगातार इन परिषदों की बैठक में दो भागों में विभक्त हो गई जिन्हें हीनयान और महायान के नाम से जाना गया। वस्तुतः हीनयान और महायान दोनों ही शाखाएँ बुद्ध के उपदेशों से ही सूत्र ग्रहण करती हैं परन्तु ये इन उपदेशों की व्याख्या अलग-अलग ढंग से करते हैं। हीनयान शाखा के अनुयायी भी थेरावादियों के समान यह मानते हैं कि कोई भी स्थाई आत्मा नहीं होती और एक व्यक्ति पाँच तत्वों से बना होता है ये हैं- पदार्थ, संस्पर्श, दृष्टिकोण, पूर्ववृत्ति और चेतना अज्ञान, लोभ और स्वार्थ के उन्मूलन के जरिए कर्म और पुनर्जन्म से मुक्ति पाई जा सकती है और निर्वाण प्राप्त किया जा सता है। हीनयान का मानना है कि व्यक्ति अपने प्रयत्नों से धीरे-धीरे ज्ञानोदय की ओर बढ़ सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मुक्ति या मोक्ष के लिए खुद कार्य करना होगा। ज्ञानोदय की प्राप्ति के लिए उपासना और आत्मविश्लेषण को प्रोत्साहित किया गया। श्रीलंका, थाईलैण्ड, बर्मा, कम्बोडिया और लाओस जैसे देशों में अभी भी थेरावाद परम्परा मौजूद है।

बौद्ध धर्म के अनुसार व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक घटना उसके पुनर्जन्म के कर्म से निर्धारित होती है। जीवन एक लगातार चलने वाली श्रंखला है और व्यक्ति का मौजूदा अस्तित्व उसके पिछले जन्म की गतिविधि का फल है। बौद्ध अवधारणा में कर्म भाग्यवादी नहीं है। वह नैतिकता और कार्य-कारण सम्बन्ध पर आधारित है। उपनिषदों में भी कर्म में आस्था व्यक्त की गयी है परन्तु बुद्ध ने इस सिद्धांत को अलग ढंग से व्याख्यायित किया है। बुद्ध के अनुसार सभी प्राणियों के कर्म उनके अपने जीवन उनकी विरासत, उनके जन्म, उनके रिश्तेदार और उनके परिवेश से निर्धारित होता है। बुद्ध आत्मा में विश्वास नहीं करते थे लेकिन उनका मानना था कि मृत्यु के बाद व्यक्ति की चेतना मरती नहीं है। बौद्ध धर्म में फिर से जन्म लेना पुनर्जन्म नहीं है बल्कि यह जीवन की एक श्रृंखला है। एक प्रक्रिया है जिसमें कर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नैतिकता के निर्धारण और उसके पालन में कर्मकारण भी होता है और प्रेरणा भी अंगुलिमाल की कहानी से कर्म की बौद्ध अवधारणा ही सामने आती है। यहाँ तक कि बौद्ध होने के बावजूद वह एक दिन लोगों के गुस्से से बच नहीं पाता हैं क्योंकि लोग अभी भी उसे पुराने रूप में ही पहचानते थे। जब अंगुलिमाल ने बुद्ध से इसकी शिकायत की तो बुद्ध ने कहा, 'जो तुमने इस जीवन में किया है तुम्हें उसी का दुःख झेलना पड़ रहा है इसका सामना करो, सब कुछ ठीक हो जाएगा। अगले जन्म में बड़े दण्ड और कष्ट सहने की अपेक्षा वर्तमान जीवन में छोटे-मोटे जीवन सह लेना बेहतर है।'

कर्म के बाद पुनर्जन्म और निर्वाण की संकल्पना सामने आती है। बुद्ध आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते थे परन्तु फिर भी पुनर्जन्म कैसे होता है इसे इस तरह से समझाया गया है:-

एक बौद्ध मठ में एक मोमबत्ती जल रही थी वह जलते-जलते इतनी छोटी हो गयी थी कि उसका बुझना तय था। एक भिक्षु ने उस पुरानी मोमबत्ती से एक नई मोमबत्ती जला दी। पुरानी मोमबत्ती बुझ जाती है और नई मोमबत्ती जल उठती है। पुरानी मोमबत्ती में किसी चीज का स्थानांतरण हुआ इन दोनों में कार्यकारण सम्बन्ध तो है ही लेकिन कुछ भी हस्तांतरित नहीं हुआ। इसी प्रकार आपके पिछले जीवन और वर्तमान जीवन के बीच एक कारणात्मक सम्बन्ध तो है परन्तु इसमें आत्मा का स्थानांतरण नहीं होता है। जब एक मनुष्य मरता है तो उसका शरीर नष्ट हो जाता है परन्तु उसके जीवन की मरती चेतना एक नये शरीर में नई चेतना के साथ प्रस्फुटित होती है। जातक कथाओं में बौद्ध धर्म के पुनर्जन्म की कथाओं के जरिए पुनर्जन्म की अवधारणा को काभी प्रचारित किया गया है।

निर्वाण की प्राप्ति बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है। निर्वाण का अर्थ मनोविकार, घृण और माया का विनाश। निर्वाण सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति दिलाता है। आत्मनियंत्रण के द्वारा और अष्टमार्ग पर चल कर कोई व्यक्ति अपने जीवन में निर्वाण प्राप्त कर सकता है। बौद्ध धर्म वस्तुतः एक शाश्वत परिवर्तन का दर्शन है। बौद्ध धर्म के उपदेश में मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया जाता है कि हर एक व्यक्ति अपने कर्म के लिए खुद ही जिम्मेदार होता है। कोई ईश्वर या पुजारी या कोई भी आपको दुष्कर्मों से बाहर निकालने से बाहर करता। यहाँ तक कि बुद्ध भी इससे आपको नहीं बचा सकते। बौद्ध धर्म में देवताओं के स्थान पर कर्म पर बल दिया गया है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि इसके जरिए धार्मिक मतभेदों को कर्म करने और एक सार्वभौम धर्म की स्थापना पर जोर दिया गया था।

### 2.5.1 महायान

महायान परम्परा पहली शताब्दी ई0पू0 और दूसरी शताब्दी ई0 के बीच विकसित हुई। महायान दर्शन बुद्ध के मौलिक दर्शन पर आधारित है परन्तु परम्परागत व्याख्याओं में उसकी आस्था नहीं है। इसमें नए सिद्धांत और प्रथाओं को जोड़ने का प्रयत्न किया गया ताकि बौद्ध धर्म के आम अनुयायी भी इसे आसानी से समझ सकें। उन्होंने निर्वाण के बाद बुद्ध को भगवान बना दिया ताकि बुद्ध के अस्तित्व से सम्बन्धित सभी प्रश्नों और संदेहों का निराकरण किया जा सके। महायान दर्शन के अनुसार कोई भी पवित्र प्राणी बुद्ध बन सकता है। लेकिन यदि अपने कार्य और मानसिक स्थिति को विकसित नहीं कर सकता है तो उसे ज्ञानोदयकी प्राप्ति नहीं होगी। इसमें बोधिसत्व के आदर्श को प्रोत्साहित किया गया है। जो लोग दुनिया की सेवा करने के लिए जन्म और मृत्यु के इसकष्टप्रद चक्र में अपनी इच्छा से बने रहना चाहते हैं उनके लिए निर्वाण प्राप्त करना जरूरी नहीं है। इस परम्परा के

अनुयायियों का यह मानना है कि कुछ शाश्वत सत्ता है जिसकी पूजा की जा सकती है। इस प्रकार यह धर्म बहुदेववादी हो गया। इसे महायान के रूप में जाना गया क्योंकि इसमें बोधिसत्व के आदर्श से युक्त मुक्ति का दृष्टिकोण और सभी प्राणियों को मुक्त करने की आकांक्षा शामिल है। करुणा और सुबुद्धि को ज्ञानोदय का मार्ग माना गया। बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए बोधिसत्व की प्रार्थना और उपासना को मूल मंत्र माना गया।

### 2.5.2 हीनयान

हीनयान दुःख को यथार्थ मानता है जबकि महायान परम्परा में इसे भ्रम माना जाता है। हीनयान परम्परा में बुद्ध के उपदेशों पर बल दिया जाता है जबकि महायान परम्परा में बुद्ध और मूर्ति पूजा को प्रमुख माना गया है। हालांकि दोनों ही मतों में बौद्ध दर्शन आधारभूत तत्व हैं परन्तु बौद्ध दर्शन और इससे जुड़ी प्रथाओं की व्याख्या को और इनमें विरोध है। हीनयान बौद्ध धर्म श्रीलंका, बर्मा और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में लोकप्रिय हुआ जबकि महायान बौद्ध धर्म भारत, मध्य एशिया, तिब्बत, चीन और जापान में लोकप्रिय हुआ।

बौद्ध धर्म में हीनयान का तात्कालिक लक्ष्य निर्वाण और व्यक्तिगत मोक्ष की प्राप्ति है जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपने कार्य से अपनी नियति तय करता है। दूसरी ओर महायान में धर्म के अनुयायियों का तात्कालिक लक्ष्य बोधिसत्व की प्राप्ति है। वह व्यक्ति बोधिसत्व होता है जो आध्यात्मिक ज्ञानोदय प्राप्त करता है। परन्तु वह हमसमस्त विश्व और इसमें रहने वाले प्राणियों की सेवा करने के लिए निर्वाण को स्थगित करता है।

वज्रयान बौद्ध धर्म के विकास का प्रमुख अंतिम चरण है। व्रजयान भी है और हीरा भी। ये शब्द मुख्य रूप से योग प्रधान और चमत्कारिक हैं। यह महायान शाखा का ही विकसित रूप है, परन्तु इसमें कुछ तत्व और जोड़ दिये गये हैं। व्रजयान का लक्ष्य मानसिक और शारीरिक शून्यता की प्राप्ति है। इसमें आध्यात्मिक विकास के लिए यौगिक क्रियाओं और अभ्यासों पर बल दिया जाता है और यह भी माना जाता है कि आध्यात्मिक शक्ति के लिए एक प्रबुद्ध गुरु की आवश्यकता होती है। उत्तर भारत के कुछ हिस्सों में और तिब्बत में वज्रयान का विकास हुआ।

## 2.6 भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन

भारतीय धर्म, चिन्तन, दर्शन, कला, शिक्षा-साहित्य तथा विदेशी सम्पर्क पर विशेष रूप से पड़ा। ज्ञान और दर्शन की दिशा में इसने विश्व को प्रभावित किया और अपनी नवीन चिन्तन-पद्धति से आकृष्ट किया। बौद्ध धर्म ने भारतीय जनमानस को सर्वप्रिय धर्म प्रदान किया जिसमें नैतिक आचरण और सच्चरित्रता थी तथा आडम्बर और कर्मकाण्ड का अभाव था। बौद्ध धर्म प्रचार की वस्तु नहीं, वह जीने की कला थी।

- जाति-पाँत और ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाकर इसने सामाजिक समरसता का प्रयास किया।
- यह धर्म विश्व-धर्म था। अतः इसने अन्तर्राष्ट्रीय चेतना और विश्व-बन्धुत्व को जन्म दिया।
- बौद्ध धर्म के अनुसार वही सिद्धान्त स्वीकार किया जो उसे तर्कसंगत लगे। तर्कवाद का समर्थन किया।

भारतीय समाज में संघ और संघाराम का प्रचलन बौद्धों ने प्रारम्भ किया, जिसमें भिक्षु निवास करते थे। इसके पहले हिन्दू तपस्वी-संन्यासी जंगलों और पहाड़ों पर रहा करते थे। सामूहिक रूप से भिक्षुओं के रहने की प्रणाली का विकास बौद्ध धर्म ने ही किया।

बौद्ध धर्म संघ की गणतन्त्रात्मक प्रणाली ने राज्यों को अनेक गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तों को स्वीकार करने में सहायता की। खुली बहस, बहुमत पर आधारित निर्णय, न्याय-पालिका का महत्व, कल्याणकारी शासन की कल्पना को भारत में बौद्ध से बल मिला।

बौद्ध भिक्षु निःस्वार्थ भाव से धर्म प्रचार में संलग्न रहते थे और जनता के कष्टों को दूर करने का प्रयास करते थे। भारतीय समाज में निःस्वार्थ सेवा-भावना और धर्म-भावना का प्रारम्भ बौद्ध धर्म ने ही किया था।

बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्कृति को एक विशाल साहित्य प्रदान किया, जिससे समय-समय पर अनेकानेक बौद्ध धर्म-ग्रन्थों की रचनाएँ विशेषकर पाली में की गईं, जो उस समय की प्रचलित जनभाषा थी।

भारतीय स्थापत्य और वास्तुकला को बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण देन है, अनेकानेक बौद्ध विहारों, संघारामों, स्तूपों और चैत्यों का निर्माण समय-समय पर होता रहा, जिससे भारतीय संस्कृति समृद्ध और उन्नत होती रही, यही नहीं, बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अशोक जैसे सम्राटों ने विशालकाय प्रस्तर स्तम्भों का निर्माण करवाया, जो भारतीय कला की अमूल्य निधि है। बौद्ध और बोधिसत्वों की भी अनेक प्रकार की मूर्तियाँ बनीं, जो तत्कालीन शैली की विशेषता को व्यक्त करती हैं। अजन्ता जैसी गुहाएँ निर्मित की गईं जिनकी दीवारों पर विविध प्रकार के रंग-बिरंगे चित्रों की सजीवता के साथ उरेहा गया है। बौद्ध धर्म के माध्यम से भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध विभिन्न देशों से स्थापित हुआ। बौद्ध धर्म ने एक सेतु का काम किया। कुषाण जैसे पश्चिमोत्तर प्रत्येक राजवंश ने भी बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था। कनिष्क जिसने बौद्ध अपना कर मध्य एशिया के विस्तृत प्रदेश में इसका प्रसार किया।

भारत और बाहर दूसरे देशों में अहिंसा और दया जैसी भावना ने बौद्ध भिक्षुओं को एक स्थान पर सम्मिलित और संगठित होकर रहने की प्रेरणा प्रदान की थी जो बौद्ध सिद्धान्त और मत की अपनी देन है। भिक्षुओं में परस्पर सौहार्द्र और सौजन्य से रहने की भावना का बीच बौद्ध धर्म ने ही वपन किया था।

बौद्ध धर्म ने अपने अहिंसा और प्राणियों के प्रति दया भावना से बड़े-बड़े शासकों को प्रभावित कर उनकी राजनीतिक प्रसारवादी महत्वाकांक्षा को अवरूद्ध किया तथा उनके सम्पूर्ण ही परिवर्तित कर दिया। महान मौर्य सम्राट अशोक के मन और मस्तिष्क को इस धर्म ने पूर्णतः बदल दिया तथा उसे साम्राज्यवादी क्रियाओं से विमुख कर अहिंसात्मक और करूणाजनित कार्यों की ओर संलग्न किया। यह बौद्ध धर्म की ही देन थी कि उस जैसे महान सम्राट ने युद्ध और संघर्ष के मार्ग को सर्वदा के लिए त्यागकर अहिंसा और शान्ति को अपनाया। उसके बाद अनेक सम्राटों ने बौद्ध की अहिंसा और दया की शिक्षा का अनुसरण किया।

दर्शन के क्षेत्र में बौद्ध आचार्य नागार्जुन के शून्यवाद का प्रभाव सम्भवतः शंकराचार्य के मायावाद पर पड़ा। दोनों विद्वानों की कुछ समताओं के आधार पर कुछ विचारकों ने शंकराचार्य पर प्रच्छन्न-बुद्ध होने का आरोप लगाया। बौद्धिक और प्रारम्भिक हिन्दू धर्मों में आध्य के रूप में मांस को ग्रहण किया जाता था। इस निमित्त विभिन्न पशुओं और पक्षियों का बध किया जाता था। बौद्ध धर्म में मांसाहार का निषेध है। विदेशों में भी बौद्ध धर्म के प्रभाव से हिंसा का परित्याग किया गया और निरामिष आहार को अपेक्षाकृत उत्तम माना गया। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने समाज के सभी पक्षों को अपने सिद्धान्तों एवं आदर्शों से प्रभावित कर एक नवीन चिन्तनपरक धर्म प्रदान किया, जो पूर्णतः मानवतावादी था।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य/असत्य दर्शाइये।

1. बौद्ध धर्म जात-पात पर विश्वास करता था ( सत्य/असत्य)
2. नागार्जुन बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा का अनुयायी था ( सत्य/असत्य)
3. बौद्ध धर्म में अहिंसा के प्रति आग्रह मिलता है ( सत्य/असत्य)
4. बौद्ध धर्म का विस्तार केवल भारत के भीतर ही रहा ( सत्य/असत्य)

## 2.7 पतन के कारण

जिस तरह से भारत में बौद्ध धर्म का उद्भव एवं विकास हुआ लेकिन उसका प्रचार बहुत अधिक नहीं हो सका था, जो कुछ हुआ भी था उसकी जड़े बहुत अधिक प्रभावित नहीं कर सकी

थी। इसी कारण शीघ्र ही इसका पतन भारत में प्रारम्भ हो गया। इसके पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं-

सातवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच का काल बौद्ध धर्म के पतन काल है, इसके पतन के सबसे बड़े दोषी बौद्ध ही थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के अवतारवाद, मूर्तिपूजा और मन्दिरों को अपना लिया। महात्मा बुद्ध, कृष्ण की भाँति अपने भक्तों के उद्धारक बन गये हिन्दू अवतारों की भाँति बोधिसत्वों तथा तारा आदि बौद्ध देवियों की पूजा होने लगी।

हिन्दू आचार्यों, विशेष रूप से शंकराचार्य के बौद्ध सिद्धान्तों का खण्डन किया, कुमारिल और रामानुज ने हिन्दू धर्म की नवीन व्याख्यायें करके उसे अपूर्व लोकप्रियता दी। बौद्ध संघ में स्त्रियों के भिक्षुणी बनने से वहाँ के भिक्षुओं का जीवन-यापन और पवित्र नहीं रह सका, इसलिए बौद्ध धर्म के प्रति साधारण जनता की रूचि घटने लगी। चरित्रहीनता के इस प्रकार के जीवन का बौद्ध धर्म में कोई स्थान नहीं था किन्तु बौद्ध संघ इसी आचरण हीनता के मार्ग से अग्रसार हो रहा था जिससे उसका पतन प्रारम्भ हो गया।

बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय आपस में संघर्ष करने लगे। हीनयान और महायान सम्प्रदाय एक दूसरे से तीव्रतापूर्वक लड़ रहे थे। इसे बौद्ध धर्म का प्रभिमान घटा। विभिन्न समयों में होने वाले बौद्ध संगीतियों ने उपर्युक्त बौद्ध सम्प्रदायों को एक साथ मिलाकर कार्य करने के लिए प्रयास किया किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला।

तन्त्रवाद के विस्तार से बौद्ध धर्म पतन की ओर अग्रसर हुआ। बज्रयान और गुहा समाज के विकास से समय कलंकित हुआ, जिसमें तामसी-विलासी क्रियायें की जाती थीं। साधारण जनता बौद्ध धर्म के इस अधःपतन से असंतुष्ट होकर इसके विरुद्ध हो गई। तान्त्रिक-धार्मिक क्रियाओं के नाम पर विलासी क्रियायें सम्पन्न की जाने लगी, जिससे बौद्ध धर्म का हास हुआ। बौद्धों ने लोकभाषा (पाली) को छोड़कर संस्कृत में अपने धर्म-ग्रन्थों की रचना शुरू की जिससे वह साधारण जनता से दूर होता गया।

मुसलमान विजेताओं से भी बौद्ध धर्म को आघात लगा तथा देश से बौद्ध मतानुयायी हटने लगे। मुसलमानों ने धन की लोलुपता के कारण अनेक बौद्ध मठों और विहारों को तोड़ दिया जिससे उसके अनुयायी इधर-उधर जाने लगे।

वस्तुतः बौद्धों के अनीश्वरवाद, अनात्मवाद तथा हिन्दू धर्म के प्रति विद्रोह भावना के कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव भारत से धीरे-धीरे कम होने लगा। बौद्ध संघ, मठ, विहार, संघाराम जैसे पवित्र

स्थान भिक्षु-भिक्षुणियों के अनाचार के कारण अपवित्र होने लगे, जिससे इस धर्म के प्रति जनता की अरुचि भी बढ़ती गई। बौद्ध धर्म का पतन धीरे-धीरे अनेक तत्वों की वजह प्रारम्भ हो गया और त्वरित गति पतन हो गया।

## 2.8 सारांश

सातवीं शताब्दी ई0पू0 के आस-पास बौद्ध धर्म पूर्वी एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में फैल गया और इस प्रकार सम्भवतः दुनिया का सबसे बड़ा धर्म बन गया। शताब्दियों तक बौद्ध धर्म को भारत में सम्राटों और व्यापारियों का संरक्षण प्राप्त था परन्तु सातवीं शताब्दी के बाद भारत में बौद्ध धर्म का धीरे-धीरे पतन होने लगा। हालांकि यह पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ। माना जाता है कि बौद्ध धर्म के बजाए हिन्दू धार्मिक संस्थानों को शाही संरक्षण मिलने, बुद्ध के मूल उद्देश्यों से भटकने और हिन्दू धार्मिक परम्पराओं को अपनाने, नये हिन्दू धार्मिक पंथों के उचित होने आदि के कारण भारत में बौद्ध धर्म धीरे-धीरे समाप्त होता गया। इसमें हमने उन परिस्थितियों पर विचार किया है, जिसमें बौद्ध धर्म का विकास हुआ है।

## 2.9 शब्दावली

1. प्रवारण (पवांरंग)-वर्षावास में भिक्षुओं के नियम
2. पातिमोक्ख-बौद्ध भिक्षुओं के निमित्त विधि निषेधों का संग्रह
3. कम्मवाचा-प्रस्ताव को प्रस्तुत करना 'अनुसावन'
4. उपसम्पदा-बौद्ध धर्म में प्रविष्ट
5. प्रवज्या-धर्म में दीक्षित होने को प्रवज्या कहते हैं।
6. उपोसथ-भिक्षुजन द्वारा 15वें दिन पूर्णिमा तथा अमावस्या की शाम को अपने कुकर्माँ की स्वीकारोक्ति हेतु होने वाली सभा।

## 2.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

- इकाई 2.6 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य  
 इकाई 2.6 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य  
 इकाई 2.6 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य  
 इकाई 2.6 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- असत्य

## 2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रीज-डेविड्स, टी0 डब्ल्यू0, बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1926

- 
2. मेहता, रतिलाल, प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया, (पुनर्मुद्रित) दिल्ली, 1984
  3. एस0, राधाकृष्णन, इण्डियन फिलासफी खण्ड-एक, लन्दन, 1975
  4. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1976
  5. सरकार, एच0, स्टडीज इन अर्ली बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 1966
  6. सेकेल, डीट्रिच, दि आर्ट ऑफ बुद्धिज्म (ऑर्ट ऑफ दि वर्ल्ड सीरीज), लन्दन, 1964
- 

## 2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

सेकेल, डीट्रिच, दि आर्ट ऑफ बुद्धिज्म (ऑर्ट ऑफ दि वर्ल्ड सीरीज), लन्दन, 1964  
रीज-डेविड्स, टी0 डब्ल्यू0, बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1926

---

## 2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. बौद्धधर्म के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. बौद्धधर्म के हीनयान-महायान के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
3. बौद्धधर्म ब्राह्मण धर्म के कर्मकाण्डों की बलवती प्रक्रिया थी। स्पष्ट कीजिए।
4. बौद्धधर्म दर्शन के प्रमुख लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
5. बुद्ध के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

## इकाई तीन-मौर्य साम्राज्य: चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार तथा अशोक

- 
- 3.1 प्रस्तावना
  - 3.2 उद्देश्य
  - 3.3 चन्द्रगुप्त मौर्य का परिचय
    - 3.3.2 चन्द्रगुप्त मौर्य
      - 3.3.2.1 चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य निर्माण
      - 3.3.2.2 चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ
      - 3.3.2.3 नन्दो का उन्मूलन
      - 3.3.2.4 सेल्यूकश के विरुद्ध युद्ध
      - 3.3.2.5 पश्चिमी भारत की विजय
      - 3.3.2.6 दक्षिण भारत
      - 3.3.2.7 साम्राज्य विस्तार
    - 3.3.3 बिन्दुसार (अमित्रघात) 298 ई0पू0 273 ई0पू0 तक
    - 3.3.4 अशोक प्रियदर्शी (273-236 ई0पू0)
      - 3.3.4.1 अशोक का प्रारम्भिक जीवन
      - 3.3.4.2 कलिंग का युद्ध तथा उसके परिणाम
      - 3.3.4.3 अशोक का साम्राज्य विस्तार
      - 3.3.4.4 मौर्य शासन प्रबन्ध
      - 3.3.4.5 अमात्य, मन्त्री तथा परिषद
      - 3.3.4.6 केन्द्रीय अधिकारी तंत्र
      - 3.3.4.7 प्रान्तीय शासन
      - 3.3.4.8 मण्डल, जिला एवं नगर प्रशासन
      - 3.3.4.9 ग्राम प्रशासन
      - 3.3.4.10 न्याय प्रशासन
      - 3.3.4.11 गुप्तचर विभाग
      - 3.3.4.12 भूमि तथा राजस्व
      - 3.3.4.13 सेना का प्रबन्ध
      - 3.3.4.14 लोकोपकारी कार्य
      - 3.3.4.15 अशोक का धम्म
  - 3.4 सारांश
  - 3.5 तकनीकी शब्दावली
  - 3.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
  - 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
  - 3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य, सामग्री
  - 3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई0पू0 में प्राचीन भारत में मगध साम्राज्य के उत्कर्ष की एक महत्वपूर्ण चरण है। मगध साम्राज्य को संगठित करने में हर्यकवंश के शासक विम्बिसार, अजातशत्रु, एवं उद्यन के योगदान का अध्ययन हम कर चुके हैं। हर्यक वंश के उपरान्त शिशुनाग वंश एवं नन्द वंश के शासकों ने मगध पर शासन किया और उसकी शक्ति एवं साम्राज्य विस्तार में अहम् योगदान दिया।

मगध पर नन्दों के शासन काल के समय में यवन शासक सिकन्दर महान का भारत पर आगमन हुआ। लेकिन उसके सैनिकों ने जब नन्द वंश की शक्ति के बारे में सुना तो उन्होंने अपने हथियार डाल दिये और मगध पर आक्रमण करने से इन्कार कर दिया। अतः सिकन्दर को वापस जाना पड़ा।

सिकन्दर महान के वापस जाते ही पश्चिमोत्तर भारत पर चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु कौटिल्य की सहायता से सिकन्दर द्वारा विजित क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया और उसने सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया और इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इस पाठ में मौर्य साम्राज्य का राजनैतिक एवं प्रशासनिक इतिहास प्रस्तुत है।

### 3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य चन्द्रगुप्त मौर्य बिन्दुसार एवं अशोक के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना है। इस इकाई में अध्ययन के उपरान्त आय अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेगे-

- (क) चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार एवं शासन व्यवस्था।
- (ख) बिन्दुसार की प्रशासनिक नीतियाँ।
- (ग) अशोक के प्रारम्भिक जीवन एवं उसके साम्राज्य विस्तार।

### 3.3 मौर्य वंश का परिचय

भारतीय इतिहास के अनेक महान वंशों में मौर्य वंश एक है। मौर्य वंश की उत्पत्ति के विषय में ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में परस्पर विरोधी विवरण मिलते हैं। फलस्वरूप उसकी जाति का निर्धारण भारतीय इतिहास की एक जटिल समस्या है। ब्राह्मण ग्रन्थ उसे एक स्वर में शूद्र अथवा निम्न कुल से सम्बन्धित कहते हैं जबकि बौद्ध तथा जैन ग्रन्थ उसे क्षत्रिय सिद्ध करते हैं।

ब्राह्मण साहित्य में सर्वप्रथम पुराणों का उल्लेख किया जा सकता है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि शैश नांग वंशी शासक महानन्दी के पश्चात् शूद्र योनि के राजा पृथ्वी पर शासन करेंगे। कुछ विद्वानों ने इस कथन के आधार पर मौर्यों को शूद्र सिद्ध करने का प्रयास किया है। विष्णु पुराण में एक भाष्यकार श्रीधर स्वामी ने चन्द्रगुप्त को नन्दराज की पत्नी 'मुरा' से उत्पन्न बताया है उनके अनुसार चन्द्रगुप्त

‘मुरा’ से उत्पन्न होने के कारण मौर्य कहा गया। विशाखदत्त का मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त को नन्दराज का पुत्र माना गया है। इस ग्रन्थ में चन्द्रगुप्त को ‘वृषल’ तथा ‘कुलहीन’ कहा गया है। शूद्र उत्पत्ति के समर्थक विद्वानों ने इन दोनों शब्दों को शूद्र जाति के अर्थ में ग्रहण किया है।

यदि हम सावधानी पूर्वक उपर्युक्त मतों की समीक्षा करें तो ऐसा प्रतीत होगा कि वे ठोस तथ्यों पर कम आधारित हैं। जहां तक पुराणों का प्रश्न है, वे चन्द्रगुप्त की जाति के विषय में बिल्कुल मौन हैं किन्तु एक स्वर में नन्दों को शूद्र कहते हैं। वह बताते हैं कि द्विजर्षभ (श्रेष्ठ ब्राह्मण) कौटिल्य सभी नन्दों को मारकर चन्द्रगुप्त को सिंहासनासीन करेगा। विष्णु पुराण का कथन केवल नन्दों पर ही लागू होता है न कि बाद के सभी राजवंशों पर। मुद्राराक्षस का साक्ष्य भी मौर्यों की जाति के विषय में प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

ब्राह्मण परम्परा के विपरीत बौद्ध ग्रन्थों का प्रमाण मौर्यों को क्षत्रिय जाति से सम्बन्धित करता है। यहां चन्द्रगुप्त ‘मोरिय’ क्षत्रिय वंश का कहा गया है। ये ‘मोरिय’ कपिलवस्तु के शाक्यों की ही एक शाखा थे। जिस समय कोशल नरेश विड्डूभ ने कपिलवस्तु पर आक्रमण किया, शाक्य परिवार के कुछ लोग कोशल नरेश के अत्याचारों से बचने के लिए हिमालय के एक सुरक्षित क्षेत्र में आकर बस गये। यह स्थान मोरों के लिए प्रसिद्ध था। अतः यहां के निवासी मोरिय कहे गये।

### 3.3.1 चन्द्रगुप्त मौर्य

अनेक बौद्ध ग्रन्थ बिना किसी सन्देह के चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय घोषित करते हैं। महावोधिवंश उसे राजकुल से सम्बन्धित बताता है, जो मोरिय नगर में उत्पन्न हुआ था। महावंश में चन्द्रगुप्त को ‘मोरिय’ नामक क्षत्रिय वंश में उत्पन्न कहा गया है। महापरिनिब्बान सुत्त में मौर्यों को पिप्लाविन का शासक तथा क्षत्रिय वंश का कहा गया है। यह प्राचीनतम बौद्ध ग्रन्थ है अतः अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय माना जा सकता है।

हेमचन्द्र कृत परिशिष्टपर्वन में चन्द्रगुप्त को मयूर पोषकों के ग्राम के मुखिया की पुत्री का पुत्र बताया गया है। इस प्रकार जैन एवं बौद्ध दोनों ही साक्ष्य मौर्यों को ‘मयूर’ से सम्बन्धित करते हैं। इस मत की पुष्टि अशोक लौरियानन्दनगढ़ के स्तम्भ के नीचे के भाग में उत्कीर्ण मयूर की आकृति से भी हो जाती है। अतः उपरोक्त विवरण से निष्कर्ष निकलता है कि मौर्य कौन थे इस विषय पर निश्चित मत देना कठिन है। लेकिन विविध स्रोतों के आधार बौद्ध एवं जैन ग्रन्थ सत्यता के अधिक निकट दिखाई देते हैं।

### 3.3.2.1 चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य निर्माण

चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन की जानकारी सीमित है। इसके प्रारम्भिक जीवन के ज्ञान के लिए हमें मुख्यतः बौद्ध स्रोतों पर ही निर्भर करना पड़ता है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार चन्द्रगुप्त का

पिता मोरिय नगर का प्रमुख था। जब वह अपनी माता के गर्भ में था तभी उसके पिता की किसी सीमान्त युद्ध में मृत्यु हो गयी। पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ। जन्म के साथ ही वह एक गोपालक को समर्पित कर दिया गया। गोपालक ने गोशाला में अपने पुत्र के समान उसका लालन-पालन किया। बड़ा होने पर उसने एक शिकारी के हाथों बेंच दिया। शिकारी के ग्राम में वह बड़ा हुआ तथा उसे पशुओं की देख भाल के लिए रख दिया। वह बालकों की मण्डली का राजा बनकर रहता था और उनके आपसी झगड़ों का फैसला किया करता था। इसी प्रकार एक दिन जब वह 'राजकलिभ' नामक खेल में व्यस्त था चाणक्य उधर से जा निकला। अपने सूक्ष्म दृष्टि से उसने बालक के भावी गुणों का अनुमान लगा लिया और उसने शिकारीसे 1000 कार्षापण में चन्द्रगुप्त को खरीद लिया।

चन्द्रगुप्त के साथ चाणक्य तक्षशिला आया। तक्षशिला उस समय विद्या का प्रमुख केन्द्र था और चाणक्य वहां का आचार्य था। उसने चन्द्रगुप्त को सभी कलाओं तथा विद्याओं की विधिवत शिक्षा दी। शीघ्र ही चन्द्रगुप्त धनुर्विद्या, युद्ध विद्या आदि से पारंगत हो गया।

### 3.3.2.2 चन्द्रगुप्त की उपलब्धियाँ

चाणक्य ने जिस कार्य के लिए चन्द्रगुप्त को तैयार किया था उसके दो उद्देश्य थे-

- (1) यूनानियों के विदेशी शासन से देश को मुक्त कराना।
- (2) नन्दों के घृणित एवं अत्याचार पूर्ण शासन की समाप्ति करना।

सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य ने पंजाब तथा सिन्ध को विदेशियों की दासता से मुक्त कराया था। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने विदेशी शासन की निन्दा की है तथा उसे देश एवं धर्म के लिए अभिशाप कहा है। चन्द्रगुप्त का सौभाग्य था कि पंजाब एवं सिन्ध की राजनीतिक परिस्थितियाँ उसके पूर्णतः अनुकूल थीं। सिकन्दर के प्रस्थान के साथ ही इन प्रदेशों में विद्रोह उठ खड़े हुए तथा अनेक यूनानी क्षत्रप मौत के घाट उतार दिये गये। 325 ई.पू. के लगभग ऊपरी सिन्धुघाटी के प्रमुख यूनानी क्षत्रप फिलिप की हत्या कर दी गयी। 323 ई.पू. में सिकन्दर की मृत्यु के बाद इन प्रदेशों में घोर अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी जिसने चन्द्रगुप्त का कार्य सुगम कर दिया। जस्टिन लिखता है कि "सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात भारत ने अपनी गर्दन से दासता का जुआ उतार फेंका तथा अपने गर्वनरों की हत्या कर दी। इस स्वतंत्रता का जन्मदाता सान्ड्रोकोट्स (चन्द्रगुप्त) था।"

### 3.3.2.3 नन्दों का उन्मूलन

पंजाब एवं सिन्ध में अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के बाद चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य मगध साम्राज्य की ओर अग्रसर हुए। मगध में इस समय धननन्द का शासन था। अपने असीम सैनिक साधनों तथा सम्पत्ति के बावजूद वह जनता में लोकप्रियता अर्जित कर सकने में असफल रहा और यही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता थी। उसने एक बार 'चाणक्य' को भी अपमानित किया था जिससे

क्रुद्ध होकर उसने नन्दों को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी। प्लूटार्क के विवरण से पता चलता है कि नन्दों के विरुद्ध सहायता याचना के उद्देश्य से चन्द्रगुप्त पंजाब में सिकन्दर से मिला।

दुर्भाग्यवश हमें किसी भी साक्ष्य से नन्दों तथा मौर्यों के मध्य हुए इस युद्ध का विवरण नहीं मिलता। बौद्ध तथा जैन स्रोतों से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त ने नन्द साम्राज्य के केन्द्रीय भाग पर आक्रमण किया लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली और उसकी सेना नष्ट हो गयी। उसे अपनी भूल ज्ञात हुई अतः उसने दूसरी बार सीमान्त प्रदेशों की विजय करते हुए नन्दों की राजधानी पर धावा बोला। मिलिन्द पन्नों के अनुसार युद्ध बड़ा ही घमासान रहा। अन्ततः धननन्द को मार डाला गया और चन्द्रगुप्त का मगध साम्राज्य पर अधिकार हो गया।

### 3.3.2.4 सेल्यूकस के विरुद्ध युद्ध

सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् 305 ई.पू. में सेल्यूकस भारत पर चढ़ाई की तथा सिन्धु तक आ पहुंचा। परन्तु इस समय का भारत सिकन्दर कालीन भारत से पूर्णतयः भिन्न था अतः सेल्यूकस को छोटे-छोटे प्रदेशों के सरदारों के स्थान पर संगठित भारत के महान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से युद्ध करना था। अप्पिआनुस लिखता है कि 'सिन्धु नदी पार करके सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से युद्ध किया। कालान्तर में दोनों में सन्धि हो गयी तथा एक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। सन्धि की शर्तें निम्नवत हैं-

- (1) सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को आरकोसिया (कान्धार) पेरोपनिसडाई (काबुल) के प्रान्त तथा एरिया (हेरात) एवं जेट्रोसिया के क्षेत्रपियों को कुछ भाग दिये।
- (2) चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 भारतीय हाथी उपहार में दिये।
- (3) दोनों नरेशों के बीच एक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार सेल्यूकस ने अपनी एक पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया परन्तु उपलब्ध प्रमाणों से इस प्रकार की कोई सूचना सिद्ध नहीं है।
- (4) सेल्यूकस ने मेगस्थनीज नामक अपना एक दूत चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा। वह बहुत दिनों तक पाटलिपुत्र में रहा तथा भारत का उसने इण्डिका नामक एक पुस्तक की रचना की।

चन्द्रगुप्त की इस महत्वपूर्ण सफलता से उसकी साम्राज्य सीमा का अतिक्रमण कर पारसीक साम्राज्य की सीमा का स्पर्श करने लगा तथा उसके अन्तर्गत अफगानिस्तान का एक बड़ा भाग भी सम्मिलित हो गया।

### 3.3.2.5 पश्चिमी भारत की विजय

शक महाक्षत्रप रूद्रदामन के गिरिनार अभिलेख (150 ई.) से इस बात की सूचना मिलती है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमी भारत में सुराष्ट्र तक का प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत

कर लिया। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस प्रदेश में पुण्यगुप्त वैश्य चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल था और उसने सुदर्शन नामक झील का निर्माण करवाया।

### 3.3.2.6 दक्षिण भारत

दक्षिण भारत में कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश के कई स्थानों से अशोक के अभिलेख मिल हैं जैसे जटिंग रामेश्वर, सिद्धपुर, ब्रह्मगिरि, गोविमठ, मास्की तथा गूटी (आन्ध्र प्रदेश के करनूल में स्थित)। अशोक स्वयं अपने अभिलेखों में चोल, पाण्ड्य, सत्तियुत्त तथा केरल पुत्र जातियों का उल्लेख करता है। उसके 13वें शिलालेख से ज्ञात होता है दक्षिण में उसने केवल कलिंग विजय की थी जिसके पश्चात उसने युद्ध कार्य बिल्कुल बन्द कर दिया। ऐसी स्थिति में दक्षिण की विजय का श्रेय चन्द्रगुप्त या बिन्दुसार को देना पड़ेगा। बिन्दुसार की विजय अत्यन्त संदिग्ध है अतः मानना तर्क संगत है कि चन्द्रगुप्त ने ही इन प्रदेशों को विजित किया।

### 3.3.2.7 साम्राज्य विस्तार

इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य सम्पूर्ण भारत में फैल गया। प्लूटार्क ने लिखा है कि 'उसने छः लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत को रौंद डाला और उस पर अधिकार कर लिया। जस्टिन के विवरण से भी पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत उसके अधिकार में था। मगध साम्राज्य के उत्कर्ष की जो परम्परा बिम्बिसार के समय में प्रारम्भ हुई चन्द्रगुप्त के समय में वह अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी। उसका साम्राज्य विस्तार उत्तर में ईरान की सीमा से लेकर दक्षिण में वर्तमान उत्तरी कर्नाटक तक विस्तृत था पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में सुराष्ट्र तक सम्पूर्ण प्रदेश

उसके साम्राज्य के अधीन था।

#### स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये-

- (क) नन्द वंश।
- (ख) सेल्यूकश।
- (ग) चन्द्रगुप्त मौर्य प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख कीजिए।
- (घ) चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य विस्तार पर टिप्पणी लिखिए।

### 3.3.3 बिन्दुसार 'अमित्र घात'

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। बिन्दुसार के जीवन तथा उपलब्धियों के विषय में हमारा ज्ञान अत्यल्प है। उसकी महानता इस तथ्य में निहित है कि उसने अपने पिता से जो विशाल साम्राज्य प्राप्त किया था, उसे अक्षुण्ण बनाये रखा।

जैन परम्परा के अनुसार बिन्दुसार की माता का नाम दर्धटा मिलता है। यूनानी लेखक ने उसे 'अमित्रो केडीज' कहा है जिसका संस्कृत रूपान्तर 'अमित्रघात' (शत्रुओं का नाश करने वाला) होता है। यह उसकी उपाधि थी। जैन ग्रन्थ उसे सिंहासन कहते हैं। इन उपाधियों से स्पष्ट है कि वह कोई दुर्बल या विलासीशासक नहीं था। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने बिन्दुसार की उपलब्धियों का इस प्रकार विवरण दिया है-उसने छः नगरों को नष्ट कर पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्रों के बीच के सम्पूर्ण भाग पर अधिकार कर लिया। दिव्यावदान तक्षशिला में होने वाले विद्रोह का वर्णन करता है जिसको दबाने के लिये बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को भेजा था। अशोक ने उदारतापूर्ण नीति का अनुसरण करते हुए वहां शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित की थी।

बिन्दुसार के समय में भी भारत का पश्चिमी यूनानी राज्यों के साथ मैत्री सम्बन्ध कायम रहा। स्ट्रैबो के अनुसार सीरिया के राजा एन्टियोकस ने डाइमेकस नामक अपना एक राजदूत बिन्दुसार की राज्यसभा में भेजा था। यह मेगस्थनीज के स्थान पर आया था। प्लिनी बताता है कि मिस्र के राजा टालमी द्वितीय फिला डेल्फस (285-247 ई.पू.) ने 'डायोनिसस' नामक एक राजदूत को मौर्य दरबार में भेजा। एथेनियस नामक एक अन्य यूनानी लेखक ने बिन्दुसार तथा सीरिया के राजा एन्टियोकस के बीच एक मैत्रीपूर्ण पत्र-व्यवहार का विवरण दिया है जिसमें भारतीय शासक ने सीरियाई नरेश से तीन चीजों की मांग की थी-मीठी मदिरा, सूखी अन्जीर व एक दार्शनिक (सोफिस्ट)। सीरियाई सम्राट ने प्रथम दो वस्तुएं भिजवाई परन्तु तीसरी वस्तु अर्थात् दार्शनिक के सम्बन्ध में कहा कि यूनानी दार्शनिकों का विक्रय नहीं किया जा सकता।

प्रशासन के क्षेत्र में बिन्दुसार ने अपने पिता की नीति का अनुगमन किया। अपने साम्राज्य को उसने प्रान्तों में विभाजित किया तथा प्रत्येक प्रान्त के 'कुमार' (उपराजा) नियुक्त किये। प्रशासनिक कार्यों के लिए अनेक महापात्रों की भी नियुक्ति की गयी। उसके शासन की विस्तृत सूचना नहीं मिलती। सम्भवतः उसने 25 वर्षों तक राज्य किया और उसकी मृत्यु 273 ई.पू. के लगभग हो गयी।

### 3.3.4 अशोक 'प्रियदर्शी'

बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् उसका सुयोग्य पुत्र अशोक विशाल मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। अशोक विश्व इतिहास के उन महानतम सम्राटों में अपना सर्वोपरि स्थान रखता है, जिन्होंने अपने युग पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी तथा भावी पीढ़ियाँ जिनका नाम अत्यन्त श्रद्धा एवं कृतज्ञता के साथ स्मरण करती है।

### 3.3.4.1 अशोक का प्रारम्भिक जीवन

यद्यपि अशोक के बहुत से अभिलेख प्राप्त हुए हैं तथापि हमें उसके प्रारम्भिक जीवन के लिए मुख्यतः बौद्ध साक्ष्यों, दिव्यावदान तथा सिंहली अनुश्रुतियों पर ही निर्भर करना पड़ता है। इनसे ऐसा पता चलता है कि अशोक अपने पिता के शासन काल में अवान्ति (उज्जयिनी) का उपराजा था। बिन्दुसार की बीमारी का समाचार सुनकर वह पाटिलपुत्र आया। सिंहली अनुश्रुतियों से पता चलता है कि उसने 99 भाइयों की हत्या कर राजसिंहासन प्राप्त किया। परन्तु उत्तराधिकार के इस युद्ध का समर्थन स्वतंत्र प्रमाणों से नहीं होता है। बौद्ध ग्रन्थ अशोक को बौद्ध होने से पूर्व के जीवन को हिंसा, अत्याचार तथा निर्दयता से युक्त बताते हैं और उसे 'चण्ड अशोक' कहते हैं।

दिव्यावदान में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी मिलता है जो 'चम्पा' के एक ब्राह्मण की कन्या थी। दक्षिणी परम्पराओं में उसे धर्मा कहा गया है जो प्रधान रानी थी। कुछ विद्वान उसे सेल्युकस की कन्या बताते हैं परन्तु इस विषय में निश्चित कुछ भी कहना कठिन है। सिंहली परम्पराओं से ज्ञात होता है कि उज्जयिनी जाते हुए अशोक विदिशा में रुका, जहां उसने एक श्रेष्ठी की पुत्री 'देवी' से विवाह कर लिया। महावोधिवंश में उसका नाम 'वेदिश महादेवी' मिलता है तथा उसे 'शाक्य' जाति का बताया गया है। उसी से अशोक के दो सन्तान महेन्द्र एवं संघमित्रा का जन्म हुआ। दिव्यावदान में उसकी पत्नी तिष्यरक्षिता मिलता है। उसके लेख में केवल उसकी पत्नी 'कारूवाकि' का ही नाम है जो 'तीवर' की माता थी। दिव्यावदान में उसके दो भाईयों सुशीम तथा विगत शोक नामक दो अन्य भाईयों का उल्लेख मिलता है। कुछ कथाओं के अनुसार बिन्दुसार अशोक को राजा न बनाकर सुशीम को राजगद्दी देना चाहता था। बौद्ध परम्पराएं इस बात की पुष्टि करती हैं कि अशोक ने बिन्दुसार की मृत्यु के बाद अमात्यों की सहायता से राजगद्दी हथिया लिया तथा उत्तराधिकार के युद्ध में अन्य सभी राजकुमारों की हत्या कर दी। राजगद्दी प्राप्त होने के पश्चात् अशोक को अपनी आन्तरिक स्थिति सुदृढ़ करने में चार वर्षों का समय लग गया। इसी कारण राज्यारोहण के चार वर्षों बाद (269 ई.पूर्व में) अशोक का विधिवत राज्याभिषेक हुआ।

अशोक 273 ई.पू. के लगभग मगध के सिंहासन पर बैठा। उसके अभिलेखों में सर्वत्र उसे देवानापिय, देवानापियदासी (देवताओं के प्रिय) तथा 'राजा' आदि की उपाधियों से सम्बोधित किया गया। मास्की तथा गुर्जरा के लेखों में उसका नाम 'अशोक' मिलता है। पुराणों में उसे अशोकवर्धन कहा गया।

### 3.3.4.2 कलिंग का युद्ध तथा उसके परिणाम

अपने राज्याभिषेक के बाद अशोक ने अपने पितामह को दिग्विजय की नीति को जारी रखा। इस समय कलिंग का राज्य मगध साम्राज्य की प्रभुसत्ता को चुनौती दे रहा था जो अशोक जैसे महत्वाकांक्षी शासक के लिए असह्य था। रोमिला थापर का विचार है कि कलिंग उस समय

व्यापारिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य था तथा अशोक की दृष्टि उसी समृद्ध व्यापार पर भी थी। अतः अपने अभिषेक के आठवें वर्ष (261 ई.पू.) उसने कलिंग के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया।

कलिंग का प्राचीन राज्य दक्षिणी उड़ीसा में स्थित था। अशोक के तेरहवें अभिलेख कलिंग युद्ध के परिणामों के बारे में सूचना मिलती है कि युद्ध बड़ा भयंकर था जिसमें भीषण रक्तपात तथा नरसंहार की घटनाएं हुईं। अंततः अशोक इस राज्य की अपने साम्राज्य में मिलाने में सफल रहा। तेरहवें शिलालेख में इस युद्ध के भयानक परिणामों का उल्लेख मिलता है- 'इसमें एक लाख पचास हजार व्यक्ति बन्दी बनाकर निर्वासित कर दिये, एक लाख लोगों की हत्या की गयी तथा इससे कई गुना अधिक मर गये।'

कलिंग युद्ध की हृदय विदारक हिंसा एवं नरसंहार की घटनाओं ने अशोक के हृदय स्थल को स्पर्श किया और उनके दूरगामी परिणाम हुए। अतः इस युद्ध के पश्चात् नये युग का सूत्र पात हुआ, यह युग था शान्ति, सामाजिक प्रगति और धार्मिक प्रचार का। यहीं से सैन्य विजय एवं दिग्विजय का युग समाप्त हुआ तथा आध्यात्मिक विजय और धम्म विजय का युग प्रारम्भ हुआ।

### 3.3.4.3 अशोक का साम्राज्य विस्तार

अशोक के अभिलेखों के आधार पर हम निश्चित रूप से उसकी साम्राज्य सीमा का निर्धारण कर सकते हैं। उत्तर पश्चिम भारत में दो स्थानों से उसके शिलालेख प्राप्त हुए हैं-(1) पेशावर जिले में स्थित शाहवाजगढ़ी तथा हजारा जिले में स्थित मानसेहरा से इसके अतिरिक्त कन्धार कन्दाहर के समीप शेखुना तथा जलालाबाद के निकट काबुल नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित 'लघमान' से अरामेईक लिपि के लेख मिले हैं। इन अभिलेखों के प्राप्ति स्थलों से यह स्पष्ट होता है कि उसके साम्राज्य में हिन्दुकश, एरिया (हेरात) आरकोसिया (कन्धार) तथा जेद्रोसिया सम्मिलित थे। इन प्रदेशों को चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्युकस से प्राप्त किया था। हुएनसांग कपिशा में अशोक के स्तूप का उल्लेख करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अशोक के साम्राज्य में अफगानिस्तान का एक बड़ा भाग सम्मिलित था। उत्तर भारत में कालसी (देहरादून जिले में) उसका शिलालेख मिला है। रुम्मिन्देई तथा निग्लीवा के स्तम्भ लेखों से पता चलता है कि उत्तर में हिमालय क्षेत्र का एक बड़ा भाग (नेपाल की तराई भी उसके साम्राज्य का अंग था) दक्षिण की ओर वर्तमान कर्नाटक राज्य के ब्रह्मगिरि (चित्तलदुर्ग जिला) मास्की (रायचूर जिला) जटिंग रामेश्वर (चित्तलदुर्ग जनपद) सिद्धपुर (ब्रह्मगिरि से एक मील पश्चिम में) से उसके शिलालेख मिलते हैं। इसमें उसके साम्राज्य की दक्षिणी सीमा कर्नाटक राज्य तक जाती थी। द्वितीय शिलालेख में अशोक अपनी दक्षिणी सीमा पर स्थित चोल, पाण्ड्य, सतीयपुत्त, केरलपुत्त तथा ताम्रपार्णि नाम बताता है। ये सभी तमिल राज्य में थे तथा साम्राज्य से बाहर थे। इससे स्पष्ट है कि सुदूर दक्षिण के भाग को छोड़कर सम्पूर्ण भारत अशोक के अधिकार में था।

तेरहवें शिलालेख में अशोक के राज्यों की सूची इस प्रकार मिलती है-योन, कम्बोज, गन्धार, रठिक, भोजक, पितिनिक, आन्ध्र, नामक, नामपम्पि पारिमिदस आदि। इनमें योन अथवा यवन, कम्बोज और गन्धार प्रदेश उत्तरी पश्चिमी सीमा पर स्थित थे। भण्डारकर महोदय ने इन्हें काबुल तथा सिन्ध के मध्य स्थित बताते हैं। भोज बरार तथा कोंकण में तथा रठिक या राष्ट्रिक, महाराष्ट्र में निवास करते थे। पितिनिक पैठन में तथा आन्ध्र राज्य कृष्णा एवं गोदावरी राज्य में स्थित था। नामक या नामपमिश राज्य पश्चिमी तट तथा उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त के बीच कहीं बसा था। परिमिदस के विषय में विवाद है। रायचौधरी इसे विन्ध्य क्षेत्र में तथा भण्डारकर इसे बंगाल के उत्तरी पूर्वी भाग में स्थित बताते हैं।

पश्चिम में काठियावाड़ में जूनागढ़ के समीप गिरिनार पहाड़ी तथा उसके दक्षिण में महाराष्ट्र के थाना जिले के सोपरा नामक स्थान से अशोक के शिलालेख मिलते हैं।

उड़ीसा के दो स्थानों धौली और जौगढ़ से भी उसके शिलालेख मिलते हैं कलिंग राज्य को अशोक ने अपने अभिषेक के आठवें वर्ष जीता था। बंगाल में ताम्रलिपि से प्राप्त स्तूप उसके वहां आधिपत्य की सूचना देता है। हुएनसांग हमें बताता है कि समतट, पुण्ड्रवर्धन, कर्णसुवर्ण आदि में भी अशोक के स्तूप थे। इन सभी अभिलेखों के प्राप्ति स्थानों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका साम्राज्य उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त (अफगानिस्तान) से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक तथा पश्चिम में काठियावाड़ से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत था। कश्मीरी कवि कल्हण की राजतरंगिणी से पता चलता है कि कश्मीर पर भी अशोक का अधिकार था। उसने वहां धर्मारिणी विहार में अशोकेश्वर नामक मन्दिर की स्थापना करवायी थी। कल्हण अशोक को कश्मीर का प्रथम मौर्य शासक बताता है। अतः साम्राज्य की उत्तरी सीमा हिमालय पर्वत तक जाती थी। इस प्रकार वह विशालतम साम्राज्यों में से एक था।

#### 3.3.4.4 मौर्य शासन प्रबन्ध

मौर्य शासकों की शासन व्यवस्था के विषय में कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मेगस्थनीज की इण्डिका के उद्धरणों से महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं। पहली बार कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ही हम राज्य की सस्पष्ट परिभाषा पाते हैं जहां वह इसे सात प्रकृतियों की समाष्टि कहता है। इनमें सम्राट की 'कूटस्थनीय' होती थी। राजा में सभी अधिकार एवं शक्तियां निहित थीं। सम्राट अपनी दैवीय उत्पत्ति में विश्वास नहीं करता था फिर भी वह ईश्वर का प्रिय पात्र समझा जाता था। वह सैनिक, न्यायिक, वैधानिक एवं कार्यकारी मामलों में सर्वोच्च अधिकारी था। वह सेना का सबसे बड़ा सेनापति, न्याय का प्रधान न्यायाधीश, कानूनों का निर्माता तथा धर्म प्रवर्तक माना जाता था। वह साम्राज्य के सभी महत्वपूर्ण अधिकारियों की नियुक्ति करता था। इस प्रकार वह प्रशासन का मुख्य स्रोत था। मेगस्थनीज हमें बताता है कि वह पूरे दिन नहीं सोता था अपितु निर्णय देने या अन्य सार्वजनिक कार्यों

के लिए पूरे दिन राज्य सभा में बैठा रहता था और प्रजा के प्रतिवेदनों को सुना करता था। कौटिल्य का मत है कि 'राजा को प्रजा की शिकायतें सुनने के लिए सदैव सुलभ रहना चाहिए।'

सम्राट राजधानी में रहता था तथा विशाल राजा प्रासाद में निवास करता था। उसकी राज्यसभा ऐश्वर्य एवं शान-शौकत से परिपूर्ण थी। वह अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान रखता था। वह सदैव सशस्त्र अंग रक्षकों से घिरा रहता था।

इस प्रकार कौटिल्य की व्यवस्था में राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर सम्राट का पूर्ण नियंत्रण था। राज्य के सप्तांग सिद्धान्तों में वह सम्राट (स्वामी) को ही सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। राज्य के शेष छः अंग-अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, बल, मित्र; सम्राट द्वारा ही संचालित होते थे।

### 3.3.4.5 अमात्य, मन्त्री तथा परिषद

सम्राट अपने कार्यों में अमात्यों, मन्त्रियों तथा अधिकारियों से सहायता प्राप्त करता था। अमात्य या सचिव एक सामान्य संज्ञा थी जिससे राज्य के सभी प्रमुख पदाधिकारियों का बोध होता है। यूनानी लेखक इन्हें 'सभासद तथा निर्धारक' कहते थे। वे सार्वजनिक कार्यों में सम्राट की सहायता करते थे। राजा अपने अमात्यों में से जो सभी प्रकार के आकर्षणों से परे होता था उसे 'मंत्री' नियुक्त किया जाता था। ये मंत्री एक छोटी उपसमिति के सदस्य होते थे जिसे मन्त्रिणः कहा जाता था।

मन्त्रिणः के अतिरिक्त एक नियमित परिषद भी होती थी जिसकी सदस्य संख्या अवश्य ही काफी बड़ी रही होगी क्योंकि कौटिल्य के अनुसार बड़ी मंत्री परिषद रखना राजा के अपने हित में होता था और इससे उसकी 'मन्त्रिशक्ति' बढ़ती थी।

'अर्थशास्त्र' में मन्त्रिपरिषद को एक वैधानिक आवश्यकता बताया गया है। उसके अनुसार 'राजत्व' केवल सबकी सहायता से ही सम्भव है सिर्फ एक पहिया नहीं चला सकती। अतः राजा को सचिवों की नियुक्ति करनी चाहिए और उनसे मन्त्रणा लेनी चाहिए' इसी प्रकार अन्यत्र वर्णित है- राजवृत्ति तीन प्रकार की होती है प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष तथा अनुमेया। मन्त्रिपरिषद के कार्य "अनारबधकार्य को प्रारम्भ करना, आरम्भ कार्य को पूरा करना, पूरे हुए कार्य में सुधार करना तथा राजकीय आदेशों का कठोरता के साथ पालन करवाना" बताया गया है।

### 3.3.4.6 केन्द्रीय अधिकारी तन्त्र

अर्थशास्त्र में केन्द्रीय प्रशासन का अत्यन्त विस्तृत विवरण मिलता है। शासन की सुविधा के लिए केन्द्रीय प्रशासन अनेक विभागों में बंटा हुआ था। प्रत्येक विभाग को तीर्थ कहा जाता था। अर्थशास्त्र में 18 तीर्थों के प्रधान पदाधिकारियों का उल्लेख हुआ है- (1) मंत्री और पुरोहित (2)

समाहर्ता (3) सन्निधाता (4) सेनापति (5) युवराज (6) प्रदेश (7) नायक (8) कर्मान्तिक (9) व्यवहारिक (10) मन्त्रीपरिषदाध्यक्ष (11) दण्डपाल (12) अन्तपाल (13) दुर्गापाल (14) नागरक (15) प्रशास्ता (16) दौवारिक (17) अन्तर्वाशिक तथा (18) आरविका

इनमें मंत्री तथा पुरोहित प्रधानमंत्री तथा प्रमुख धर्माधिकारी होते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में ये दोनों ही विभाग कौटिल्य के अधीन थे। समाहर्ता राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी था, सन्निधाता राजकीय कोषाधिकरण का प्रमुख अधिकारी होता था। सेनापति युद्धविभाग का मंत्री था युवराज राजा का उत्तराधिकारी, जो अपने पिता के शासन काल में प्रशासनिक कार्यों में उसकी मदद करता था। प्रदेश फौजदारी न्यायालय का न्यायाधीश, नायक सेना का संचालक, कर्मान्तिक देश के उद्योग धन्धों का प्रधान निरीक्षक आदि विभागों का संचालन किया करते थे।

उपर्युक्त पदाधिकारियों के अतिरिक्त अनेक अन्य पदाधिकारियों का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। इन्हें अध्यक्ष कहा जाता था। अर्थशास्त्र में विभागीय अध्यक्षों तथा उनके कार्यों की एक लम्बी सूची प्राप्त होती है जैसे-पण्याध्यक्ष (वाणिज्य का अध्यक्ष) सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष (बूचड़खाने का अध्यक्ष), गणिकाध्यक्ष (वैश्याओं का निरीक्षक), सीताध्यक्ष (राजकीय कृषि विभाग का अध्यक्ष), आकाराध्यक्ष (खानों का अध्यक्ष), कोष्ठागाराध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष (वन तथा उसकी सम्पदा का अध्यक्ष) आयुधगाराध्यक्ष, शुल्काध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष (कताई-बुनाई का अध्यक्ष), लोहाध्यक्ष (धातु विभाग का अध्यक्ष), लक्षणाध्यक्ष (छापे खाने का अध्यक्ष), सुवर्णाध्यक्ष, गोध्यक्ष (पशुधन विभाग का अध्यक्ष), वीवीताध्यक्ष (चारागाह का अध्यक्ष), मुद्राध्यक्ष (पासपोर्ट विभाग का अध्यक्ष), नवाध्यक्ष (जहाजरानी विभाग का अध्यक्ष), पत्तनाध्यक्ष (बन्दरगाह का अध्यक्ष), संस्थाध्यक्ष (व्यापारिक मार्गों का अध्यक्ष), देवताध्यक्ष (धार्मिक संस्थाओं का अध्यक्ष)।

मौर्यों के केन्द्रीय प्रशासन में अध्यक्षों का महत्वपूर्ण स्थान था तथा उन्हें 1000 पण वार्षिक वेतन मिलता था। मजिस्ट्रेटों के कार्यों का वर्णन करते हुए मेगस्थनीज लिखता है कि "इनमें से कुछ बाजार, कुछ नगर, कुछ सेना के अधिकारी थे।

### 3.3.4.7 प्रान्तीय शासन

चन्द्रगुप्त मौर्य का विशाल साम्राज्य अवश्य की प्रान्तों में विभाजित रहा होगा, परन्तु साम्राज्य के प्रान्तों की निश्चित संख्या हमें ज्ञात नहीं है। उनके पौत्र अशोक के अभिलेखों में हमें उसके निम्नलिखित प्रान्तों के नाम ज्ञात होते हैं-

- (1) उदीच्य - (उत्तरा पथ)-इसमें पश्चिमोत्तर प्रदेश सम्मिलित था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।
- (2) अवन्तिरट्ट - इस प्रदेश की राजधानी उज्जयिनी थी।
- (3) कलिंग - यहां की राजधानी तोसलि थी।

- (4) दक्षिणापथ - इसमें दक्षिण भारत के प्रदेश शामिल थे इसकी राजधानी 'सुवर्णगिरि' थी।  
 (5) प्राच्यथा प्रासी - इससे तात्पर्य पूर्वी भारत से है इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

उपर्युक्त प्रान्तों में उत्तरापथ, अवन्तिरट्ट तथा प्राच्य निश्चित रूप से चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में विद्यमान थे। यह भी असम्भव नहीं कि दक्षिणापथ भी इसके साम्राज्य का ही अंग रहा हो। प्रान्तों के राज्यपाल प्रायः 'राजकुल' से सम्बन्धित 'कुमार' होते थे। किन्तु कभी-कभी योग्य व्यक्तियों को भी राजा बनाया जाता चन्द्रगुप्त मौर्य ने पुण्यगुप्त वैश्य को काठियावाड़ का राज्यपाल बनाया था।

### 3.3.4.8 मण्डल, जिला एवं नगर प्रशासन

प्रत्येक प्रान्त में कई मण्डल होते थे जिनकी समता हम आधुनिक कमिश्नरियों से स्थापित कर सकते हैं। अर्थशास्त्र में उल्लिखित 'प्रदेष्टा' नामक अधिकारी मण्डल का प्रधान होता था। अशोक के लेखों में इसी को प्रादेशिक कहा गया है। मण्डल का विभाजन जिलों में होता था। जिन्हें आहार या विषय कहा जाता था। जिले के नीचे स्थानीय होता था जिसमें 800 ग्राम थे। स्थानीय के अन्तर्गत दो द्रोणमुख थे। प्रत्येक के चार-चार सौ ग्राम होते थे। द्रोणमुख के नीचे खार्वटिक था और खार्वटिक के अन्तर्गत 20 संग्रहण होते थे। इन संस्थाओं के प्रधान, न्यायिक, कार्यकारी तथा राजस्व सम्बन्धी अधिकारों का उपभोग करते 'युक्त' नामक पदाधिकारी की सहायता से अपना कार्य करते थे। संग्रहण का प्रदान अधिकारी 'गोप' होता था। मेगस्थनीज अधिकारियों को 'एग्रोनोमोई' कहता है।

मौर्य युग में प्रमुख नगरों का प्रशासन नगरपालिकाओं द्वारा चलाया जाता था। नगर प्रशासन के लिए एक सभा होती थी जिसका प्रमुख 'नागरम' अथवा 'मुरमुख्य' कहा जाता था।

### 3.3.4.9 ग्राम प्रशासन

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम था। ग्राम का अध्यक्ष 'ग्रामिणी' होता था। वह ग्रामवासियों द्वारा निर्वाचित होता था तथा वेतन भोगी कर्मचारी नहीं था। अर्थशास्त्र 'ग्राम वृद्ध-परिषद' का उल्लेख करता है। इसमें ग्राम के प्रमुख व्यक्ति होते थे जो ग्राम शासन में ग्रामिणी की मदद करते थे। राज्य सामान्यतः ग्रामों के शासन में हस्तक्षेप नहीं करता था।

### 3.3.4.10 न्याय प्रशासन

मौर्यों के एक तन्त्रात्मक शासन में सम्राट सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। वह सभी प्रकार के विवादों की सुनवाई की अन्तिम अदालत था। इसके अतिरिक्त साम्राज्य में न्यायालय मुख्यतः दो प्रकार के होते थे-(1) धर्मस्थीय (2) कण्टक शोधन। इन न्यायालों में बहुत ज्यादा अन्तर नहीं, फिर भी हम इन्हें सामान्यतः दीवानी तथा फौजदारी न्यायालय कह सकते हैं।

### 3.3.4.11 गुप्तचर विभाग

मौर्यों के विस्तृत प्रशासन की सफलता बहुत कुछ अंशों में कुशल गुप्तचर विभाग पर आधारित थी। यह विभाग एक प्रथक अमात्य के अधीन रखा गया जिसे 'महामात्यापसर्प' कहा जाता था। गुप्तचरों को अर्थशास्त्र में गूढ़ पुरुष कहा गया है। इस विभाग में वे व्यक्ति नियुक्त किये जाते थे जिनके चरित्र की शुद्धता एवं निष्ठा की परीक्षा सब प्रकार से कर ली जाती थी। अर्थशास्त्र में दो प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है-संस्था-अर्थात् एक ही स्थान पर रहने वाले तथा 'संचरा' अर्थात् प्रत्येक स्थान पर भ्रमण करने वाले।

### 3.3.4.12 भूमि तथा राजस्व

मौर्य प्रशासन में कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। भूमि पर राज्य एवं कृषक दोनों का अधिकार होता था। राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी 'सीताध्यक्ष' था जो दासों, बन्दिनों, कर्मकारों से कृषि करवाता था। राज्य को आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर था। यह सिद्धान्ततः उपज का 1/6 होता था। परन्तु व्यवहार में आर्थिक स्थिति के अनुसार कुछ बढ़ा दिया जाता था।

### 3.3.4.13 सेना का प्रबन्ध

मौर्य शासकों के पास अत्यन्त विशाल सेना थी। इसमें 6 लाख पैदल, 30 हजार अश्वारोही, 9 हजार हाथी तथा सम्भवतः 8000 रथ थे। सेना का प्रधान सेनापति होता था। उसे 48000 पण वार्षिक वेतन दिया जाता था। युद्ध क्षेत्र में सेना का संचालन करने वाला अधिकारी 'नापक' होता था।

### 3.3.4.14 लोकोपकारी कार्य

मौर्य शासकों द्वारा अपनी प्रजा के भौतिक जीवन को सुखी तथा सुविधापूर्ण बनाने के उद्देश्य से अनेक उपाय किये। यातायात पाल की सुविधा के लिए राजमार्गों का निर्माण किया गया। पश्चिमी भारत में सिंचाई की सुविधा के लिये चन्द्रगुप्त के सुराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल तुषाष्प ने सुदर्शन नामक इतिहास प्रसिद्ध झील का निर्माण करवाया। कौटिल्य सिंचाई के साधनों की आवश्यकता पर बल देता है। अशोक के समय में झील से पानी के निकास के लिए मार्ग बनवाये थे। इससे इस झील की उपयोगिता बढ़ गयी। इस झील को हम मौर्य कालीन अभियन्त्रण कला का उत्कृष्ट नमूना कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त नागरिकों के स्वास्थ्य एवं शिक्षा के लिये अनेक प्रकार के औषधालयों तथा विद्यालयों की स्थापना भी राज्य की ओर से करवायी गयी।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि मौर्यों की शासन व्यवस्था लोकोपकारी थी। सरकार के विषय में उसकी धारणा पितृपरक थी। स्वयं निरंकुश होते हुए भी व्यवहार में वह धर्म, लोकाचार तथा न्याय के अनुसार ही शासन करता था।

### 3.3.4.15 अशोक का धम्म

अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिए अशोक ने जिन आचारों की संहिता प्रस्तुत की उसे उसके अभिलेखों में 'धम्म' कहा गया है। 'धम्म' संस्कृत के धर्म का ही प्राकृत रूपान्तर है परन्तु अशोक के लिए 'इस शब्द का विशेष महत्व है।

अपने दूसरे स्तम्भलेख में अशोक स्वयं प्रश्न करता है-किमंचु धम्मे ? (धम्म क्या है) इसका उत्तर वह स्वयं दूसरे तथा सातवें लेखों में देता है। वह हमें उन गुणों को गिनाता है जो धम्म का निर्माण करते हैं। इन्हें हम इस प्रकार रख सकते हैं-अपासिनवेबहुकयाने दयादाने सचे सोचपे माददे साधवे चा अर्थात् धम्म-

(1) अल्प पाप है (अपासिनवे), (2) अत्याधिक कल्याण है (बहुकयाने), (3) दया है (4) दान है (5) सत्यवादिता है (6) पवित्रता है (सोचपे) (7) मृदता है (मादवे) (8) साधुता है (साधवे)। इन गुणों को व्यवहार में लाने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक बतायी गयी हैं। (1) अनारम्भो प्राणानाम् (प्राणियों की हत्या न करो) (2) अविहिंसा भूतानाम् (प्राणियों को क्षति न पहुंचाना) (3) मातरि पितरि सुसूसा (माता पिता की सेवा करना) (4) थेर सुसूसा (वृद्धों की सेवा करना) (5) गुरुणाम अपचित (गुरुजनों का सम्मान करना) (6) मित संस्तुत नाटिकानाम् वहमण-समणानां दान सपरिपति (मित्रों परिचरों, ब्राह्मणों तथा ग्रामीणों के साथ अच्छा व्यवहार करना) (7) दास-भतकम्हि सम्प प्रतिपति (दासों तथा नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार करना) (8) अप-व्ययता (अल्पव्यय) (9) अपभाण्डता (अल्पसंचय)।

ये धम्म के विधायक पक्ष हैं। इसके अतिरिक्त अशोक के धम्म का एक निषेधात्मक पक्ष भी है जिसके अन्तर्गत कुछ दुर्गुणों को गणना की गयी है। ये दुर्गुण व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में बाधक होते हैं। इन्हें 'असिनव' शब्द में व्यक्त किया गया है। असिनव को अशोक तीसरे स्तम्भ लेख में 'पाप' कहता है। मनुष्य 'असिनव' का कारण सद्गुणों से विचलित हो जाता है। उसके अनुसार निम्नलिखित दुर्गुणों के कारण मनुष्य दुर्गुणों से आसिनव हो जाता है। (1) चंडिये अर्थात् प्रचण्डता (2) क्रोधे अर्थात् क्रोध (3) निठुलिपे अर्थात् निष्ठुरता (4) मनो अर्थात् घमण्ड (5) इस्सा अर्थात् ईर्ष्या।

अतः धम्म का पूर्ण परिपालन तभी हो सकता है जब मनुष्य उसके गुणों के साथ इन विकारों से भी अपने को मुक्त रखे।

धम्म तथा उसके उपादान अशोक को बहुत प्रिय थे। साधारण मनुष्यों में धम्म को बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से वह इसकी तुलना जीवन के विभिन्न आचरणों से करता है तथा धम्म को उसमें सर्वश्रेष्ठ घोषित करता है। नवें शिलालेख में वह मानव जीवन के विविध अवसरों पर किये जाने वाले मंगलों का उल्लेख करता है। उसके अनुसार धम्म-मंगल महाफल वाला है। 11वें शिलालेख में धम्मदान की तुलना सामान्य दान से की गयी है तथा धम्मदान को श्रेष्ठतर बताया गया है। धम्मदान का अर्थ है-धम्म का उपदेश देना, धम्म में भाग लेना तथा धम्म से अपने आपको सम्बन्धित कर लेना।

अशोक के धम्म और बौद्ध धर्म के परस्पर सम्बन्ध के विषय में इतिहासकारों ने गहन चिंतन किया है। स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये-

- (क) बिन्दुसार 'अमितघात' (298 ई0पू0 से 273 ई0पू0 तक)।
- (ख) अशोक का प्रारम्भिक जीवन।
- (ग) कलिंग युद्ध
- (घ) अशोक का धम्म

### 3.4 सांराश

उपरोक्त शीर्षकों के अन्तर्गत आपको मौर्य वंश के शासकों का जीवन परिचय एवं विस्तृत मौर्य साम्राज्य को संगठित करने में उनके योगदान से परिचित कराया गया है। अब आप चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार एवं अशोक, के बारे में प्रयाप्त जानकारी रखते हैं और प्राचीन भारतीय इतिहास के इस कालखण्ड को भली प्रकार समझ सकते हैं।

### 3.5 तकनीकी शब्दावली

कार्षापण	-	एक प्राचीन भारतीय मुद्रा।
चाणक्य	-	चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु कौटिल्य का एक अन्य नाम।
उन्मूलन	-	समाप्त करना।
अमित्रघात	-	शत्रुओं का नाश करने वाला।

### 3.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.3.1

- (क) देखिए - 1.3.2.3 नन्दों का उन्मूलन
- (ख) देखिए - 1.3.2.4 सेल्यूकश के विरुद्ध युद्ध

(ग) देखिए - 1.3.2. चन्द्रगुप्त मौर्य

(घ) देखिए - 1.3.2.7. चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार

इकाई 1.3.1 के प्रश्नों के उत्तर के लिए देखिए

(क) देखिए - 1.3.3 बिन्दुसार

(ख) देखिए - 1.3.4.1 अशोक का प्रारम्भिक जीवन

(ग) देखिए - 1.3.4.2. कलिंग युद्ध

(घ) देखिए - 1.3.4.14 अशोक का धम्म

---

### 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1 द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।
- 2 के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।
- 3 वी0डी0 महाजन, प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास।

---

### 3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

(क) एच.डी. सांकलिया . एज ऑफ नन्दाज एण्ड मौर्याज

(ख) किरन कुमार थपल्ल्याल, प्राचीन भारत का इतिहास, द्वितीय संस्करण।

---

### 3.9 निबंधात्मक प्रश्न

(क) चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन, उपलब्धियों एवं उसके साम्राज्य विस्तार का वर्णन कीजिए।

(ख) मौर्य साम्राज्य के प्रशासनिक व्यवस्था पर एक लेख लिखिए।

## इकाई चार- मौर्यकालीन भारत का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन ,मौर्यकालीन कला ,मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

- 
- 4.1 प्रस्तावना
  - 4.2 उद्देश्य
  - 4.3 मौर्य युग
    - 4.3.1 मौर्य कालीन समाज
    - 4.3.2 मौर्य कालीन अर्थव्यवस्था
    - 4.3.3 मौर्य कालीन कला
    - 4.3.4 मौर्य साम्राज्य पतन के कारण
      - 4.3.4.1 अयोग्य एवं निर्बल उत्तराधिकारी
      - 4.3.4.2 प्रशासन का अतिशय केन्द्रीयकरण
      - 4.3.4.3 राष्ट्रीय चेतना का अभाव
      - 4.3.4.4. आर्थिक एवं सांस्कृतिक असमानताएँ
      - 4.3.4.5. प्रान्तीय शासकों का अत्याचार
      - 4.3.4.6. करों की अधिकता
      - 4.3.4.7. अशोक का उत्तरदायित्व
  - 4.4 सारांश
  - 4.5 तकनीकी शब्दावली
  - 4.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
  - 4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
  - 4.8 सहायक उपयोगी पाठ्य, सामग्री
  - 4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

अभी तक के अध्ययन से आप मौर्य साम्राज्य के गठन में चन्द्रगुप्त मौर्य एवं उनके गुरु चाणक्य की नीतियों से परिचित हो चुके हैं कि किस प्रकार उसने पश्चिमोत्तर भारत से यवन शासकों पर न सिर्फ विजय प्राप्त की बल्कि उनकी सहायता से शक्तिशाली नन्द वंश का भी अन्त कर दिया।

आप बिन्दुसार एवं अशोक का जन कल्याणकारी नीतियों का भी पर्याप्त अध्ययन कर चुके हैं एवं उनके उच्च स्तर के राज्य गठन और सुचारू प्रशासन व्यवस्था से भी सुपरिचित हो चुके हैं। आपने अशोक के धम्म एवं प्रजावात्सल्य के विषय में भी जान लिया है।

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से हम मौर्य कालीन भारत का समाज, अर्थव्यवस्था, कला तथा मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों की समीक्षा करेंगे। जो हमें प्राचीन को जानने में सहायक सिद्ध होगा।

## 4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मौर्य युगीन समाज, अर्थव्यवस्था, कला एवं मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी कारणों के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रार्कित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

(क) मौर्य युगीन सामाजिक जीवन।

(ख) मौर्य युगीन अर्थव्यवस्था।

(ग) मौर्ययुगीन कला एवं मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी कारण।

## 4.3 मौर्य युग

इस इकाई में आपको मौर्यकालीन भारत के विषय में शीर्षकवार जानकारी दी गयी है।

### 4.3.1 मौर्यकालीन समाज

मौर्यकाल के प्रारम्भ तक भारतवर्ष का समाज एक परिपक्व स्वरूप को प्राप्त कर चुका था। एक ओर ब्राह्मण धर्म वर्णव्यवस्था और वैदिक अनुष्ठानों का वर्चस्व बन चुका था तो दूसरी ओर इसी विचारधारा के विरोध में जैन, बौद्ध और भौतिकवादी सम्प्रदाय स्वाधीन रूप से अपने मत में लोगों को जोड़ रहे थे। समाज में नाना प्रकार के मत व धर्मों से अनेकता और विविधता ही दृष्टिगत थी। इस काल तक भारतवर्ष की भूमि पर सोलह महाजनपद और दस गणराज्य विकसित हो चुके थे, जिनके मध्य मगध सर्वोच्च शक्तिशाली राज्य के रूप में उभर आया था। मौर्य से पूर्व नन्द वंश ने

कठोर और आततायी शासन से राज्यकोष को समृद्ध किया था। व्यापारियों के माध्यम से सुदूर कार्य वाणिज्य ने भी देशों को संतुष्ट सेना का गठन सुदृढ़ था, किन्तु विद्वानों का प्रभाव कम हो चला था। मगध से दूर, उत्तर पश्चिम भारत में तक्षशिला में शैक्षिक केन्द्र विकसित हो चुका था जहाँ के विद्वान भारत के भविष्य के प्रति चिन्तित थे। भारतवर्ष के बाहर पारसीक साम्राज्य और पश्चिम के यूनानी राज्यों में भयंकर संघर्ष चल रहा था जिसके अन्तिम चरण में मकदूनिया से उठे युवा शासक सिकन्दर ने विश्वविजय अभियान चलाया और पश्चिमी क्षेत्रों को जीतकर, पारसीक साम्राज्य को भी पराजित कर लिया था। उसने पारसीक राजधानी पर्सीपोलिस को ज्वाला में भेंटकर सेना सहित बख्तरिया और सोगडिया तक पहुँच गया था। ऐसे हाल में पारसीक साम्राज्य की अनेक जनता, जिनमें दार्शनिक, कलाकार, सैनिक आदि थे, भारतवर्ष में शरण ले रहे थे। यहाँ के सम्मिलित समाज में अन्य विदेशियों के समाने से भारतीय समाज और जटिल हो चला था। विभिन्न व्यवसायों से आर्थिक जीवन भी सरल नहीं रह गया था।

मौर्यकालीन समाज के विशय में हमें अशोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है। साहित्यिक स्रोतों में बौद्ध साहित्य तथा सिकन्दर के इतिहासकारों की कृतियाँ भी सूचना प्रदान करती हैं। कुछ मौर्यकालीन कृतियाँ जैसे कौटिल्य का अर्थशास्त्र और विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, मौर्यकाल पर प्रकाश डालते हैं।

मौर्यकाल तक आते-आते वर्णाश्रम व्यवस्था को एक निश्चित आधार प्राप्त हो चुका था। इस समय तक वर्ण कठोर होकर जाति के रूप में बदल गये थे जिसका आधार जन्म था। यूनानी लेखकों के विवरण से जाति व्यवस्था के अत्यन्त जटिल होने की सूचना मिलती है। मेगस्थनीज ने भारतीय समाज में सात वर्गों का उल्लेख किया है-(1) दार्शनिक (2) कृषक (3) पशुपालक (4) कारीगर (5) योहदा (6) निरीक्षक (7) मन्त्री। मौर्ययुगीन समाज में कोई भी व्यक्ति न तो अपनी जाति से बाहर विवाह कर सकता था और न ही उससे मिल पेषा ही अपना सकता था। परन्तु दार्शनिक इसके अपवाद थे। और वे किसी भी वर्ग के हो सकते थे। मेगस्थनीज का यह वर्गीकरण व्यवसाय के आधार पर किया गया जान पड़ता है। इससे न तो ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित चारों वर्गों का बोध होता है और न तत्कालीन समाज की बहुसंख्यक जातियों की सूचना ही मिलती है।

दार्शनिक समाज बुद्धिजीवी वर्ग था। उनका राजदरबार एवं समाज में बड़ा सम्मान था। दार्शनिकों का दरबार में सम्मान के बारे में हमें बिन्दुसार द्वारा अन्टियोकस से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के बदले में सीरियाई नरेश से तीन वस्तुओं की मांग की थी। (1) मीठी मदिरा (2) सूखी अजीर (3) एक दार्शनिक। राज्य अपने राजस्व का एक भाग दार्शनिकों के भरण पोषण पर खर्च करता था। वे समाज की शिक्षा एवं संस्कृतिक के रक्षक थे। दार्शनिक वर्ग में ब्राह्मण तथा श्रमण दोनों ही शामिल थे और अपना अधिकांश समय अध्यापन एवं शास्त्रार्थ में व्यतीत करते थे। इनमें से कुछ जंगलों में निवास

करते थे एवं कन्द, मूल, फल आदि खाया करते थे तथा वृक्षों की छाल पहनते थे। यूनानी लेखकों ने भी वनों में रहने वाले सन्यासियों का उल्लेख किया है।

देश की संख्या का सबसे बड़ा भाग कृषक वर्ग का था। मेगस्थनीज के अनुसार वे सदा अपने कामों में लगे रहते थे तथा जिस समय सैनिक युद्ध करते, उस समय कृषक कृषि कार्यों में व्यस्त रहते थे। कृषकों के बाद सबसे बड़ी संख्या क्षत्रिय वर्ग की थी। वे केवल सैनिक कार्य किया करते थे।

कृषक, कारीगर तथा व्यापारी, सैनिक कर्तव्यों से मुक्त रहते थे वे गाँवों में निवास करते थे। पशुपालक और शिकारी खानावदोश जीवन-यापन करते थे। कारीगरों का समाज में बड़ा सम्मान था तथा उनकी अंगक्षति करने वाले राज्य की ओर से दंडित किय जाते थे। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि सजाम में दासों की स्थिति सन्तोषजनक थी, उन्हें सम्पत्ति रखने और उसे बेचने का पूरा अधिकार था। उसके साथ अनुचित व्यवहार करने वाले स्वामी अर्थशास्त्र में दण्डनीय बताये गये हैं। समाज में सभी धर्मों को सम्मान प्राप्त था। हालांकि अशोक बौद्ध अनुयायी था। लेकिन उसने अपने धर्म को किसी पर बलात् थोपने की कोशिश नहीं की। मौर्ययुगीन सभी सम्राट पूरी तरह धार्मिक सहिष्णु थे।

रोमिला थापर, आर.एस.शर्मा जैसे कुछ आधुनिक इतिहासकार मौर्यकालीन समाज में शूद्रों की स्थिति दयनीय होने की बात करते हैं। वे भारतीय दासों की समता यूनान एवं रोम के दासों से स्थापित करते हैं। उनके अनुसार मौर्यकाल में राजकीय नियंत्रण अत्यन्त कठोर था। प्राकृतिक साधनों के अधिकाधिक उपयोग की लालसा से राज्य में शूद्र वर्ग रोमिय हेलाये की स्थिति में की स्थिति में ला दिया गया। थापर ने बताया कि अशोक कलिंग युद्ध के डेढ़ लाख बन्दियों को बंजर भूमि साफ कराने तथा नई बस्तियां बसाने के कार्य में नियोजित कर दिया। आर.एस. शर्मा मौर्य कालीन समाज की तुलना यूनान तथा रोम के समाज से करते हुए लिखते हैं कि यूनान तथा रोम में दास जो कार्य करते थे ठीक वही कार्य भारत में शूद्र किया करते थे। यद्यपि भारतीय समाज दासों का समाज नहीं था। यह तथ्य अशोक के अभिलेखों में दासों एवं कृत्यों के साथ उचित बर्ताव करने का उपदेश दिया है। अशोक के समय में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के कारण जाति प्रथा की कठोरता में पर्याप्त शिथिलता आ गयी थी। अतः दासों के प्रति क्रूर व्यवहार का विचार अतिवादी है। यूनानी लेखक मेगस्थनीज भारतीय समाज में दास प्रथा के प्रचलित होने का उल्लेख नहीं करता जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। अर्थशास्त्र में 'वार्ता' अर्थात् कृषि, पशुपालन और वाणिज्य को शूद्र का धर्म बताया गया। शूद्र कृषक का उल्लेख मिलता है जिसका अर्थ है-शूद्र किसान। उन्हें सेना में भर्ती होने तथा सम्पत्ति रखने का अधिकार था।

समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित थी। लड़कों की व्यस्कता की आयु सोलह वर्ष तथा कन्याओं की बारह वर्ष होती थी। स्मृतियों में वर्णित विवाह के आठ प्रकार इस समय समाज में प्रचलित थे। तलाक प्रथा थी। पति के बहुत समय तक विदेश में रहने या उसके शरीर में दोष होने पर

पत्नी उसका त्याग कर सकती थी। इस प्रकार पत्नी के व्यभिचारिणी होने या बन्ध्या होने जैसी दशाओं में पति उसका त्याग कर सकने का अधिकारी था। पति की मृत्यु होने जाने पर स्त्री अपना पुनर्विवाह कर सकने की लिए स्वतंत्र थी। विवाहिता स्त्री के उपहार तथा आभूषण उसकी अपनी सम्पत्ति होती थी। पति के अत्याचारों के विरुद्ध न्यायालय में जा सकती थी। स्त्रियों के साथ अत्याचार करने वाले व्यक्ति को राज्य की ओर से दण्डित किया जाता था। उच्च वर्ग के व्यक्ति को अपने नीचे की जाति में विवाह अनुलोम तथा उच्च जातीय कन्या का निम्नजातीय वर के साथ विवाह प्रतिलोम कहा जाता था। यूनानी लेखकों के विवरण से ज्ञात होता है कि स्त्रियां सम्राट की अंगरक्षिका नियुक्त की जाती थीं। अर्थशास्त्र में स्त्री के लिये 'असूर्यपश्या' (सूर्य को न देखने वाली), अवरोधन तथा अन्तःपुर के शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि समाज में पर्दा प्रथा भी प्रचलित रही होगी। संभवतः वह उच्च कुलों तक ही सीमित थी। अर्थशास्त्र में गणिकाओं का उल्लेख हुआ है जिनकी देख-रेख में 'गणिकाध्यक्ष' नामक पदाधिकारी नियुक्त होता था।

यूनानी लेखकों ने भारतीयों के अनुशासित एवं सरल जीवन का उल्लेख किया। मेगस्थनीज लिखता है कि लोग उच्च नैतिक आचरण वाले एवं मितव्ययी होते थे। उनके भोजन में अन्न, फल, दूध तथा मांस सम्मिलित थे। अन्न में गेहूं तथा जौ का प्रयोग होता था। मेगस्थनीज द्वारा भारतीयों के खाने का ढंग का वर्णन इस प्रकार करता था 'जब वे खाने पर बैठते थे उनके सामने तिपाही के आकार की एक मेज रख दी जाती थी। उसके ऊपर एक सोने का प्याला रखा जाता था। इसमें सर्वप्रथम चावल डाला जाता था। भोजन के अन्य पकवान एवं पदार्थ परोसे जाते थे।

मौर्यकालीन भारतीय अच्छे वस्त्रों एवं आभूषणों के शौकीन थे। उनके कपड़े सोने एवं बहुमूल्य पत्थरों से जड़े हुए होते थे। बड़े लोगों के पीछे छत्र धारण किये सेवक चलते थे। रथ दौड़, घुड़ दौड़, सांड युद्ध, हस्ति युद्ध, मृगया आदि मनोविनोद के साथ थे। नर, नर्तक, गायक, वादक, मदारी, चारण, विदूषक आदि विविध प्रकार के लोग नाना प्रकार के मनोरंजन किया करते थे। राज्य की ओर से अनेक प्रकार के उत्सवों एवं मेलों का आयोजन किया जाता था।

#### 4.3.2 मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था

मौर्य युग में कृषि अधिकांश जनता के जीवन का आधार थी। भूमि राजा तथा कृषक दोनों के अधिकार में होती थी। कृषक युद्ध तथा अन्य राजकीय कर्तव्यों से मुक्त रहने के कारण अपना अधिकांश समय खेतों में ही लगाते थे। लोहे के उपकरणों के बड़ी मात्रा में प्रचलन के कारण उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया। इस काल में ही मूठदार कुल्हाड़ियों, फाल, हसियों आदि का कृषि कार्य के लिये बड़े पैमाने पर प्रयोग प्रारम्भ हो गया। राज्य की ओर से कृषि को प्रोत्साहन मिलता था। युद्ध के समय में सैनिकों के खेतों को हानि न पहुंचाने का आदेश रहता था। कृषि को क्षति पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़े तथा पशु पक्षियों को नष्ट करने के लिये राज्य की ओर से गोपालक और शिकारी

नियुक्त किये गये थे। अधिकाधिक बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाया था। भूमि बड़ी उर्वरा थी तथा प्रत्येक वर्ष दो फसलें आसानी से उगायी जाती थीं। गेहूं, जौ, चना, चावल, ईख, तिल, सरसों, मसूर, शाक आदि प्रमुख फसलें होती थीं। सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी। मेगस्थनीज लिखता है कि भूमि का अधिकांश भाग सिंचित था। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि सिंचाई की चार विधियां थीं-हाथ द्वारा, कंधों पर पानी ले जाकर, मशीन द्वारा तथा नदियों, तालाबों आदि से पानी निकाल कर, सिंचाई की सुविधा के लिये चन्द्रगुप्त मौर्य ने सुराष्ट्र प्रान्त में सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। (रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि इस झील के निर्माण का कार्य चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने प्रारम्भ करवाया था तथा अशोक के राज्यपाल तुषास्प ने इसे पूरा करवाया था।) पशुओं में गाय, बैल, भेंड़, बकरी, भैंस, गधे, ऊंट, सुअर, कुत्ते आदि प्रमुख रूप से पाले जाते थे। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त के समय में पशुधन विकास के लिये एक विशेष विभाग था जो पशुओं के भरण-पोषण एवं उनकी चिकित्सा आदि की उचित व्यवस्था रखता था।

मौर्ययुग में व्यापार व्यवसाय की उन्नति हुई। मौर्य शासकों द्वारा सड़कों के निर्माण एवं एकात्मक शासन की व्यवस्था की स्थापना करके भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापार को विशेष प्रोत्साहन किया। आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के व्यापार प्रगति पर थे। इस समय भारत का व्यापार सीरिया, मिस्र, तथा अन्य पश्चिमी देशों के साथ होता था। यह व्यापार पश्चिमी भारत में भृगुकच्छ तथा पूर्वी भारत में ताम्रलिप्ति के बन्दरागाहों द्वारा किया जाता था। यूनानी एवं रोमन लेखक समुद्री व्यापार का वर्णन करते हैं। एरियन हमें बताता है कि भारतीय व्यापारी मुक्ता बेचने के लिए यूनान की बाजारों में जाया करते थे। व्यापारिक जहाजों का निर्माण इस काल का प्रमुख उद्योग था यह राज्य के पूर्णतया नियंत्रण में रहता था। जो व्यापारियों को किराये पर जहाज उपलब्ध कराता था। समुद्री मार्ग से आने वाली वस्तुएं यदि क्षति ग्रस्त हो जाती थी तो राज्य उन पर शुल्क नहीं लेता था। अर्थशास्त्र में विदेशी 'सार्थवाहों' का उल्लेख मिलता है। इस समय देश के अन्दर अनेक व्यापारिक मार्ग होते थे। एक मार्ग बंगाल के समुद्र तट पर स्थित ताम्रलिप्ति नामक बन्दरगाह से पश्चिमोत्तर भारत में पुष्कलावती तक जाता था इसे 'उत्तरापथ' कहा जाता था जिस पर चम्पा, पाटलीपुत्र, वैशाली, राजग्रह, गया, काशी, प्रयाग, कौशाम्बी, कान्यकुब्ज, हस्तिनापुर, साकल एवं तक्षशिला जैसे प्रमुख नगर स्थित थे। दूसरा मार्ग पश्चिम में पाटल से पूर्व में कौशाम्बी के समीप 'उत्तरापथ' में मिलता था। तीसरा मार्ग दक्षिण में प्रतिष्ठान से उत्तर में श्रावस्ती तक जाता था। जिस पर महिष्मती, उज्जैन, विदिश आदि नगर स्थित थे। चौथा प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग भृगुकच्छ से मथुरा तक जाता था। जिसके रास्ते में उज्जयिनी पड़ता था। इस प्रकार उत्तरापथ तथा दक्षिणा पथ के भू-भाग व्यापारिक मार्गों द्वारा परस्पर आपस में जोड़ दिये गये थे। 'पण्याध्यक्ष' विक्री की वस्तुओं का सूक्ष्मता से निरीक्षण करता था। वह वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करता था ताकि व्यापारी जनता से अनुचित लाभ न उठा सके।

साम्राज्य के अन्दर व्यवसाय एवं उद्योग-धन्धे विकसित अवस्था में थे। कपड़ा बुनना इस युग का प्रमुख उद्योग था। अर्थशास्त्र के अनुसार मदुरा, अपरान्त, कलिंग, काशीवंग वत्स तथा महिष में सर्वोत्कृष्ट प्रकार के सूती वस्त्र तैयार होते थे। अन्य वस्त्रों में 'दुकुल' (श्वेत तथा चिकना वस्त्र) तथा 'क्षौम' (एक प्रकार का रेशमी वस्त्र) का उल्लेख मिलता है। चर्म उद्योग भी उन्नति पर था। एरियन ने भारतीयों द्वारा श्वेत कपड़े के जूते पहने जाने का उल्लेख किया है। बढ़ईगीरी एक प्रमुख उद्योग था। बढ़ई लकड़ियों द्वारा विविध प्रकार के उपकरण बनाते थे। कुम्भ्राहार की खुदाई में सात बड़े एवं आश्चर्यजनक ढंग से निर्मित लकड़ी के चबूतरे प्राप्त हुए हैं। जिससे काष्ठ शिल्प के पर्याप्त विकसित होने का प्रमाण मिलता है। सोना, चाँदी, ताँवा, लोहा, शीशा, टिन, पीतल, कांसा आदि धातुओं से विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, बर्तन, आभूषण तथा उपकरण बनाये जाते हैं। तक्षशिला के 'भीर' टीले तथा हस्तिनापुर की खुदाइयों से नाना प्रकार के बहुमूल्य आभूषणों के प्रमाण मिलते हैं। मौर्यकाल में पाषाण तराशने का उद्योग विकसित अवस्था में था। इस समय के एकात्मक स्तम्भ पाषाण तराशने की अवस्था का महत्वपूर्ण प्रमाण है। साथ ही साथ 50 टन के वजन तथा लगभग 30 फिट से अधिक ऊँचाई वाले स्तम्भों का पांच-छः सौ मील की दूरी पर ले जाकर स्थापित करना मौर्यकालीन 7 अभियान्त्रिकी कुशलता को सूचित करता है। आज के वैज्ञानिक युग में यह एक आश्चर्य की वस्तु प्रतीत होती है। अर्थशास्त्र में समुद्री तथा भूमिगत दोनों ही प्रकार की खानों का विवरण मिलता है जिनके लिए अलग-अलग पदाधिकारी होते थे। समुद्री खानों के अधीक्षक का कार्य उनसे प्राप्त हीरे-मोती, मूंगा, शंख, बहुमूल्य पत्थर आदि के संग्रहण की देखभाल करना था। भूमिगत खानों का अधीक्षक नयी खानों की खोज करता और पुरानी खानों के रख-रखाव की व्यवस्था करता। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि राजा की अनुमति के बिना खान से निकली धातुओं तथा उनसे तैयार होने वाली वस्तुओं को खरीदने तथा बेचने वाले दोनों पर 600 पण अर्थदण्ड लगाया जाता था।

विभिन्न शिल्पों के अलग-अलग अध्यक्ष होते थे। उद्योग-धन्धों की संस्थाओं को 'श्रेणी' कहा जाता था। जातक ग्रन्थों में 18 प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख हुआ है, जैसे काष्ठकारों की श्रेणी, लुहारों की श्रेणी, चर्मकारों की श्रेणी, चित्रकारों की श्रेणी आदि। श्रेणियों के अपने न्यायालय होते थे जो व्यापार व्यवसाय सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा किया करते थे। श्रेणी न्यायालय का प्रमुख 'महाश्रेष्ठि' कहा जाता था।

राज्य की ओर से विविध प्रकार की वस्तुओं को बनाने के लिए औद्योगिक केन्द्र भी स्थापित किये गये थे। शिल्पकारों के सुरक्षा की पूरी व्यवस्था थी। शिल्पी की आँख या हाथ को क्षति पहुँचाने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाता था। शिल्पियों एवं कारीगरों की मजदूरी कार्य के अनुसार तय की जाती थी। अवकाश के दिनों में कार्य करने के लिए अतिरिक्त मजदूरी दी जाती थी। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि कर्मकार को काम करने पर ही मजदूरी दी जानी चाहिए। यदि कर्मकार आधा काम करता है तो उसे आधी मजदूरी ही देय होती थी।

मौर्य-युग तक आते-आते व्यापार-व्यवसाय में नियमित सिक्कों का प्रचलन हो चुका था। सिक्के सोने, चाँदी एवं ताँबे के बने होते थे। इन सिक्कों को 'निष्क' और 'सुवर्ण' कहा जाता था। चाँदी के सिक्कों को 'कर्षापण' या 'धरण' कहा जाता था और ताँबे के सिक्के 'माषक' कहलाते थे। छोटे-छोटे ताँबे के सिक्के 'काकणि' कहे जाते थे। ये सिक्के शासकों, सौदागरों एवं निगमों द्वारा प्रचलित किये जाते थे तथा इन पर स्वामित्व सूचक चिन्ह लगाये जाते थे। उल्लेखनीय है कि उत्तर-प्रदेश, बिहार से बड़ी संख्या में प्राप्त चाँदी के आहत सिक्कों में अधिकतर मौर्य काल के ही हैं। अर्थशास्त्र में राजकीय टकसाल का उल्लेख मिलता है जिसका अध्यक्ष 'लक्षणाध्यक्ष' होता था। मुद्रा का परीक्षण करने वाला अधिकारी 'रूपदर्शक' कहा जाता था।

मौर्य काल में जनगणना के लिए एक स्थायी विभाग की स्थापना की गयी। इसका उल्लेख मेगस्थनीज तथा कौटिल्य दोनों ने ही किया है। मेगस्थनीज के अनुसार तीसरी समिति नगर की जनगणना का कार्य करती थी। अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि प्रत्येक नगर तथा ग्राम में चारों वर्णों की जनगणना ग्रामीण अधिकारियों जनगणना विभाग द्वारा की जाती थी। मनुष्यों के साथ ही साथ उनके व्यवसाय, चरित्र, आय, व्यय आदि का पूरा ब्योरा सुरक्षित रखा जाता था। इससे राज्य के विभिन्न वर्गों के ऊपर 'कर' निर्धारित करने के काम में बड़ी सहायता मिलती थी।

मौर्य शासन में निर्धन व्यक्तियों को धनी व्यक्तियों तथा साहूकारों के शोषण से बचाने के लिए भी राज्य उनके द्वारा उधार दिये गये धन पर ब्याज की दर सुनिश्चित कर दी गयी थी। इन नियमों का पालन न करने वालों को कठोर दण्ड दिये जाते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार ब्याज की दर 15 प्रतिशत वार्षिक होती थी। जनता को अकाल, बाढ़, अग्नि जैसी आपदाओं से बचाने के लिए भी राज्य में व्यापक प्रबन्ध किये गये। अकाल के समय राज्य की ओर से किसानों को बीज वितरित किये जाते थे तथा लोगों को अभावग्रस्त स्थानों से हटाकर सम्पन्न स्थानों पर पहुँचाया जाता था। बाढ़ आने तथा आग लगने पर भी राज्य की ओर से राहत कार्य किये जाते थे। नागरिकों के स्वास्थ्य की ओर भी सरकार का विशेष ध्यान रहता था। पूरे साम्राज्य में बहुत से चिकित्सालयों की स्थापना की गयी थी। जीवनोपयोगी औषधियाँ राज्य की ओर से पूर्ति की जाती थी। अशोक के लेखों से पता चलता है कि उसने मनुष्यों की चिकित्सा के साथ ही साथ पशुओं की चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करवाया था। इन सबसे स्पष्ट होता है कि मौर्य युग में कल्याण कार्य राज्य की अवधारणा को चरितार्थ किया गया था।

### स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये-

(क) मेगस्थनीज ने भारतीय समाज को कितने वर्गों में बाँटा था।

(ख) सुदर्शन झील।

(ग) मुद्राओं का परीक्षण करने वाला अधिकारी था

### 4.3.3 मौर्य कालीन कला

मौर्य युग में जबकि पत्थर जैसे स्थायी माध्यम को कलाकृति निर्माण के लिए माध्यम बनाया गया, तब स्थितियों में परिवर्तन घटित हुआ। तथापि पारम्परिक कला प्रवृत्तियाँ चलती रहीं और उल्लेखनीय है कि मौर्यकालीन मृण्मूर्तियों के समक्ष तत्कालीन प्रस्तर प्रतिमायें संख्या में बहुत कम ही हैं। यह तो मौर्यकला की प्रतिमाओं के विलक्षण गुणों को श्रेय जाता है कि भारतीय कला के विस्तृत पटल पर मौर्य वास्तुकला ने अपनी अनूठी छाप बना दी है। यह कोई सामान्य बात नहीं है कि सभी कलाविद् मौर्यकला के प्रति आकृष्ट हुये हैं और इसकी शैली से प्रभावित होकर कुछ न कुछ टिप्पणी करने को बाध्य भी हुए हैं। कभी इस कला के प्रेरणास्रोत के विषय में प्रश्न उठा, कभी मौर्यकला के संक्षिप्त जीवनकाल के कारण पूछे, तो कभी कला की राजसी प्रवृत्ति या स्वभाव पर विवाद हुये।

मौर्य कला में प्रस्तर का प्रयोग, कलाकृति की भव्यता, विषय की उच्चता, सजीव चित्रण, उत्कृष्ट शिल्पकारी और चमकती पॉलिश आदि अनेक लक्षणों से सम्पन्न कला का भारत में आकस्मिक दर्शन होने से अनेक विद्वान संशय करने लगे कि उक्त कला का प्रेरणास्रोत भारत वर्ष में नहीं बल्कि कहीं विदेश में रहा था। इस वर्ग के कलाविद् मौर्ययुगीन मूर्तिकला का स्रोत पश्चिमी एशिया की कला में मानते हैं और इस कला के भारत भूमि में पदार्पण का श्रेय यूनानियों को देते हैं। एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि ईरानी साम्राज्य के ध्वस्त होने से वहाँ के शिल्पकारों ने पलायन कर भारत में शरण प्राप्त की और मौर्यकला उन्हीं 'शरणार्थी कलाकारों' की देन है। पात्रता के कारण यह कला 'दरबारी कला' की भाँति ही प्रफुल्लित रही, और समाज में ऊपर से आरोपित कला की भाँति इसका अस्तित्व उतनी अवधि बना रहा जितना मौर्य वंश का जीवन काल था। यह भी कहा गया कि मौर्य कला का कोई योगदान नहीं रहा मात्र इसके कि भारत में प्रस्तर जैसे स्थायी कला-माध्यम का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। मौर्य कला की विदेशी उत्पत्ति के समर्थकों के मध्य भी कई मत और विवाद रहे हैं। जॉन मार्शल ने 'एशियाटिक-ग्रीक' अर्थात् एशिया क्षेत्र के यूनानियों को कला शैली का दाता बताया था और बैक्ट्रिया को इसका स्रोत कहा था। वहीं जिम्मर के विचार में "हखामीनी परम्परा का एक प्रान्तीय संस्करण" ही मौर्य कला है। ग्रन्वेडल तथा फर्गुसन के अनुसार अशोक की कला शैली में पश्चिमी एशिया के अनेक तत्वों का योग है और मौर्य कला का स्रोत एसीरिया की कला में है। कुमारस्वामी के मत में मौर्य कला एक प्राचीन पश्चिमी कला परम्परा से उद्भूत और पश्चिमी कला का समान्तर प्रतिफल है। उल्लेखनीय है कि मौर्य युग से पूर्व ही भारत में पश्चिम एशियाई और ईरानी तत्व प्रव्रजित हो चुके थे। बैजामिन रोलों मौर्य कला शैली में पश्चिम एशियाई और वैदिक प्रतीकों का सम्मिश्रण देखते हैं। विंसेट स्मिथ द्वारा मौर्य कला का स्रोत पूर्वकालिक काष्ठ कला से माना गया जो भारत की मौलिक थी; किन्तु प्रस्तर में कला को उतारने में

विदेशी प्रभाव गहन था। स्टैला क्रामरिश के विचार में मौर्य कला और सैधव कला एक ही कुल की वंशज हैं और यूनानी तथा ईरानी प्रभाव भारतीय वास्तुकला पर अस्थायी रहे। ईरीन गज्जर की समीक्षा का सार यह है कि मौर्य कला के वह कुछेक तत्व पश्चिमी परम्परा से नाता रखते हैं किन्तु कुछ अन्य विशिष्ट लक्षणों का पूर्वकालिक अथवा समकालिक पश्चिमी कला में कोई भी समलक्षण नहीं है। अतः इतिहासकारों द्वारा समस्या के विवादात्मक मूल्यांकन उनके द्वारा किसी पक्ष पर दिए गए बल पर निर्भर है। सभी के विचारों में यह सहमति है कि मौर्य कला में मौलिक और विदेशी तत्व विद्यमान थे।

उपरोक्त मत के आधार पर मौर्य कला को एक नवीन कला संकल्पना और शैली मत विशेषता को श्रेय प्रदान करने की बजाय विद्वान 'विदेशी कलाकारों' की प्रवृत्तियों या उनके हस्तशिल्प द्वारा दिए परिवर्तन के तर्क में भटकने लगे। वहीलर के प्राव्रजक शरणार्थी वास्तु शिल्पियों के तर्क को हेवल, पर्सी ब्राउन, बच्छोवर ही नहीं, कार्ल खन्डालवाला, शिवराममूर्ती तथा एस0के0 सरस्वती भी स्वीकार करते हैं। क्या यह मानना उचित होगा कि वास्तु शिल्पियों का विदेशी हाथ होना एक ऐसा कारक था कि जिसके द्वारा मौर्य कला विशेष लक्षण प्राप्त कर सकी। इसे तो इतिहासकार या अप्रत्याशित कहा जायेगा, किन्तु क्या यह संभव नहीं कि कला शैली नियोजित और जानबूझकर प्रतिपादित थी जिसमें सम्मिश्रण और समन्वय दर्शाता हो? आयातित कलाकार हों या कि आयातित विचार, मौर्य युग के शिल्पकार कलाकृतियों का निर्माण राज्य अथवा सम्राट के लिए कर रहे थे, बाजार या संघ के लिए नहीं। कला का स्वरूप राजाज्ञा या सम्राट के आदेश पर था। कलाकृति सम्बन्धी सभी प्रकार के चयन (विषय चयन, सामग्री माध्यम) से लेकर कलाकृति निर्माण तक भी कुछ आदेश अनुपालन से रहना स्वभाविक है। अतः कला शैली भी राजप्रदत्त थी, किन्तु कारीगरों की सोच का हस्तक्षेप नहीं हो सकती। इस {कलाकृति} निर्माण कार्य में शिल्पी की स्वतन्त्रता (भाव पक्ष अथवा कला पक्ष में) और स्वच्छन्द प्रयोग की बहुत कम गंजाइश रही होगी। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण कलाकृति को माध्यम में ढालने के कार्य का संपादन किसी एक शिल्पी के द्वारा नहीं, बल्कि किसी महाशिल्पी के नेतृत्व (या प्रबन्धन) में शिल्पियों की टोली द्वारा किया जाता होगा। स्थापत्य के अंग के रूप में वास्तुकला की प्रतिमायें यही सम्भावना व्यक्त करती हैं। ऐसे में कलाकृति की पूरी छवि और निर्माण की पूर्ण संकल्पना, महाशिल्पी के अन्तःकरण में ही स्थित रही होगी, जिसे उसने स्थूल रूप में भिन्न दक्ष शिल्पियों के चुनाव द्वारा प्राप्त करने के प्रयास किए। आकारानुसार तराशना, बारीक उत्कीर्ण करना, पालिश कार्य आदि में अलग शिल्पानुसार योगदान देकर शिल्पकारों ने अपनी-अपनी विशिष्टता का एक सम्मिलित प्रयास प्रदान कर मौर्य कला को उत्कृष्ट रूप से सम्पन्न किया। कुछ वर्षों पूर्व चुनार के निकट प्राप्त अभिलेखों में खरोष्ठी लिपि में कुछ नाम और वाक्य प्राप्त हुये जिनको विदेशी शिल्पियों के द्वारा उत्कीर्ण माना गया है, किन्तु वह कारीगर प्रतीत होते हैं, महाशिल्पी नहीं।

मौर्य वास्तुकला को 'राजाश्रित' और 'राज्य की छत्रछाया में स्फुटित नन्हें पौधे' और 'अल्प अवधि' तक प्रफुल्लित रहने वाला कहा गया। यदि यह मत स्वीकार कर लिया जाये तो भी कोई विडम्बना नहीं है क्योंकि विश्व इतिहास के विस्तृत पटल पर ऐसे कई उदाहरण प्राप्त हैं जबकि उत्कृष्ट कोटि की कला अत्यन्त सीमित अवधि के लिए ही फली-फूली और वह कला भी किसी विशेष पात्रता के बने रहने तक ही प्रफुल्लित रही। इन पर्यायों के आलोक में 'पात्रताजन्य, संक्षिप्त, अल्पावधिक' जैसी टिप्पणियाँ मौर्य कला के प्रति कोई लाँछन नहीं बन जाते हैं, और उसके गौरव को कदापि कम नहीं कर सकते हैं।

मौर्यकला के अन्तर्गत मनुज प्रतिमाओं का स्वरूप विशिष्ट है, और उन पर यूनानी मूर्तिकला के प्रभाव को स्थापित करने के अध्ययनों ने यही आधार सुदृढ़ किया है कि सम्पूर्ण मौर्यकला विदेशी प्रभाव की ऋणी है। यह विचार भी सत्य से दूर लगते हैं क्योंकि, सर्वप्रथम तो मनुज प्रतिमायें बहुत कम ही प्राप्त हैं, और उनकी अपेक्षा पशुजगत से अनेक प्रतिमायें उत्कीर्ण की गयीं। दूसरी बात यह कि मनुज स्वरूप में (यक्ष, यक्षी, तीर्थंकर) प्रतिमायें उत्तरोत्तर/उत्तर मौर्यकाल से सम्बन्धित मानी जाती हैं, यह प्रारम्भिक मौर्यकाल या फिर अशोक के राज्यकाल में निर्मित नहीं थी। यह तर्कपूर्ण है कि यूनानी प्रभाव तो बिन्दुसार या अशोक के काल में अपेक्षाकृत अधिक होने चाहिये थे किन्तु उक्तकालीन कला में विद्यमान नहीं थे। सम्राट अशोक के शासनकाल में निर्मित प्रस्तर प्रतिमाओं में तो मनुज/यक्ष/यक्षी को चित्रित ही नहीं किया गया है। उत्तरकालिक यक्ष, यक्षी प्रतिमाओं में भी भारतीय कला परम्परा के लक्षण कुछ कम नहीं हैं। इन दोनों विषयों पर आगे चर्चा की जायेगी।

मौर्य वास्तुकला के प्रथम दर्शन या प्राकट्यीकरण मगध स्थित उत्खनित गुफाओं में हुआ जिनके द्वार झोपड़ी की भाँति तराशे थे और उन पर पशुजगत तथा फूल-बेल के अलंकरण से सजाये थे। लोमष ऋषि गुहा की कलाकारी प्रसिद्ध है। मौर्य युगीन प्रस्तर कला का प्रमुख विषय पशु-पक्षी चित्रण और वानस्पतिक अलंकरण था, यह कहना गलत नहीं होगा। नागार्जुनि और बारावर की गुफाओं में जो अलंकरण प्राप्त हैं, वह भारतीय कला परम्परा में जुड़ा है। सैधव कला में वृष और अन्य वन्य जीवों का सजीव चित्रण किया गया था, उसी कलाधारा का द्वितीय उत्कर्ष मौर्यकला में प्राप्त हुआ, जहाँ सैधव कला में सूक्ष्मता थी, वहीं मौर्य कला में विशालता के आकार में प्रस्तुति दी गयी। दोनों ही कालों में मनुजस्वरूप से अधिक अन्य जीवों को विषयवस्तु का महत्व दिया जाना एक और समान गुण है। सम्राट अशोक ने अपने सम्पूर्ण कला नियोजन में मानवाकृति की नितान्त अवहेलना की थी। उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए पशु-पक्षी चित्रण का माध्यम चुना था। अशोक कालीन वास्तुकला का यह पक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि सम्राट की संकल्पना (भाव, विचार और संदेश जोकि अभिलेखों से ज्ञापित हैं) को प्रदर्शित करने के लिए मूर्तिमान वन्य जीव भलीभाँति समर्थ थे। वास्तु की क्षमता और कलाकारों के कौशल में विश्वास था। पशु-पक्षियों की उत्कीर्ण प्रतिमाओं में उन प्राणियों की सजीवता, सुन्दर-नैसर्गिक शारीरिक-संरचना, भाव-भंगिमाओं के माध्यम से प्रदर्शित

उनकी चेतन भावात्मक स्थितियाँ स्पष्ट और सुपाठ्य हैं। इन छवियों के अवलोकन मात्र से अभिव्यक्त विचारों की अनुभूति पहले ही हो जाती है-जैसे कि यह कोई प्राक्कथन हो-और मन सम्राट के संदेशों को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाता है। मौर्य प्रस्तर शिल्प का यही पक्ष सबसे प्रभावी है कि कला उद्देश्यपूर्ण है, उसके उच्च लक्ष्य से सीधा परिचय कराने से पूर्व दर्शक के मन का वशीकरण कर लेने की योजना थी। मनोवैज्ञानिक प्रभाव बनाने का कारण राजाजों-जोकि धम्म सम्बन्धित थी-को बल देने के लिए था; इस कला में ऐंठ या शान का स्थान तो लगभग नगण्य ही है।

कला प्रसंग में पशु-पक्षी वर्ग को प्रमुख विषय वस्तु बनाना निश्चित रूप से सोद्देश्य था कि उनके सजीव चित्रण के द्वारा भाव जागृत किये जायें। उनकी उपस्थिति मात्र अलंकरण हेतु नहीं थी, अपितु मुख्य प्रतिमा के रूप में की गयी थी, अर्थात् वही विषय है। यदि वह किसी प्रतीक के रूप में है और अन्यत्र की भूमिका वहन कर रहे हैं- तब भी वही प्रमुख पात्र और मुख्य विषय हैं। वृष, गज और सिंह के रूप में यह सामान्यतः इन्हीं पशुओं से ही अभिप्राय होता है; किन्तु यदि संदर्भ बताता है कि उनको प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त किया गया है और इनके माध्यम से हमें बुद्ध के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं-तब भी यही तथ्य दृढ़ रहेगा कि पशु चित्रण द्वारा बुद्ध के उसी स्वभाव का दर्शन प्रदान किया गया जोकि वहाँ प्रस्तुत जीव का गुण था। जैसे गज के माध्यम से 'शान्त और महान'; सिंह द्वारा 'श्रेष्ठ, संप्रभु' की प्रतीकात्मकता मिलती है। मौर्यकाल में मनुज रूप में बुद्ध का चित्रण वर्जित था अतः पशु आकृति को गुण-निर्वाह करने की क्षमता प्रदान करना मौर्यकला की विशिष्टता थी। प्राणियों के चित्रण द्वारा दर्शक के हृदय में भाव जागृत करना एक सफल प्रयास था, यहाँ तक कि अशोक के काल में मूर्तिकला में मानव चित्रण का पूर्ण लोप हो गया था और कहीं मन को खटका भी नहीं।

यह विचारणीय है कि जो कलाकार सजीव पशु उत्कीर्ण कर सकते थे, वह अवश्य ही सुन्दर मानव चित्रण भी करने में सक्षम होते। बुद्ध नहीं, किन्तु कोई शासक, रानी, नायक, पुरुष और नारी का चित्र होना तो संभव था-जैसा परवर्ती काल (यानि शुंगकला में) प्राप्त होता है-ऐसा भी अशोक के काल में प्रयोजित नहीं किया गया था। कुमारस्वामी ने माना कि घुमन्तू आर्यकला और मौलिक भारतीय कला के मध्य मनुज चित्रण को लेकर मूलतः शैली भेद नहीं है। निहार रंजन राय ने 'कला की नस्लीय उत्पत्ति' के संदर्भ में कहा कि अशोक की कला, हिन्द-आर्य कला का एक पक्ष है और इस प्रकार राय भी इस कला को उत्तरी यानि घुमन्तू कला से जोड़ देते हैं। और मनुज के चित्रण का अभाव इसी प्रवृत्ति के कारण मानकर विशेष अन्वेषण नहीं किया गया। किन्तु विषय की गंभीरता को लेकर अन्य प्रयास किया गया जिसका सार संक्षेप इस प्रकार है।

मौर्य कला के अन्तर्गत सम्राट अशोक ने जो निर्माण किये उनमें पशु-पक्षियों का चित्रण सजीव और अद्वितीय है। कलाकृतियों के सम्बन्धित अभिलेखों में पशु-पक्षियों को दीन, अहिंसक और दया का पात्र दर्शाया गया है। वहीं कला निर्माणों में मनुज चित्रण विलुप्त है और अभिलेखों में मनुष्य को क्रूर, क्रोधी, विध्वंसक और दंभी दर्शाकर उसके द्वारा संयमित व्यवहार और उच्च

आचरण की अपेक्षा की गयी है। अर्थात् मनुष्य में बहुत कमियाँ हैं, जबकि वन्य प्राणी बेहतर हैं। स्तम्भाभिलेख नं0-3 के अनुसार मानव केवल अपने अच्छे कर्म देखता है और अपनी दुष्टता को नहीं। यह आत्मपरीक्षा वस्तुतः कठिन होती है, फिर भी मानव को ध्यान देना चाहिए कि क्रोध, क्रूरता, कोप, अहंकार और ईर्ष्या पापमय हैं। स्तम्भाभिलेख नं0-7 में कहा गया है कि प्राचीन राजाओं ने यह इच्छा रखी थी कि किसी प्रकार मानव जाति द्वारा पवित्र धम्म को बढ़ाये रखा जाए किन्तु मानव ने धम्म को उचित बढ़ोत्तरी प्रदान नहीं की। मुख्य शिलाभिलेख नं0-4 में सम्राट ने सैकड़ों वर्षों से जीवों के प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार पशुसंहार और ब्राह्मण-श्रमण और सम्बन्धियों के प्रति अनुचित व्यवहार के बढ़ने के प्रति चिन्ता व्यक्त की है और इसी परिप्रेक्ष्य में मुख्य शिलाभिलेख नं0-12 और मुख्य शिलाभिलेख नं0-7 में मनुष्य को नियन्त्रित, संयमित और अनुशासित होने की सलाह दी गयी है। मुख्य शिलाभिलेख नं0-6 में प्राणिजगत के प्रति अपने ऋण का उल्लेख किया जाना और मुख्य शिलाभिलेख नं0-1 में समाजों (उत्सवों) पर हिंसात्मक अनुष्ठानों का विरोध करते हुए राजसी रसोई में माँसाहारी भोजन को प्रतिबन्धित करने के प्रयास उल्लेखनीय कृत्य हैं। स्तम्भाभिलेख नं0-5 में आखेट सम्बन्धी प्रतिबन्धों का विस्तृत विवरण दिया जाना और मुख्य शिलाभिलेख नं0-2 सम्राट द्वारा पशु चिकित्सा के लिए किए गए कार्य, अशोक की प्राणि जगत के प्रति सद्भावना के प्रमाण हैं। मुख्य शिलाभिलेख नं0-3, 4, 9 और स्तम्भाभिलेख नं0-2 भी पशु जीवन के प्रति संरक्षात्मक व्यवहार की अपील की गयी है। अतः इस आलोक में यह संगत प्रतीत होता है कि कला पक्ष में पशु जगत से शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व, शक्ति बिना प्रदर्शन, शान बिना दंभ और ईर्षारहित आचरण को कला पटल पर वन्यजीवों के माध्यम से प्रदर्शित कर राजा के आदेशों (उपदेशों) को मूर्तिमान किया गया है।

कलिंग युद्ध के उपरान्त अपने परिवर्तित स्वभाव और पितृ-तुल्य दृष्टिकोण में अशोक को मानव द्वारा पशु जगत पर किये जा रहे अत्याचार के लिए ग्लानि थी। उसकी दृष्टि में मानव ने अपनी उच्चता खो दी थी-जिसे प्राणियों का संरक्षक होना था, वही भक्षक बन बैठा था। वह कला में नायक पात्र के स्थान के लायक नहीं रह गया था। वहीं अपने स्वभाविक रूप में दर्शाये गये पशु-पक्षी ही सरल और सुखद भावों को प्रेरित करने में सफल थे। अतः मनुज के स्थान पर, पशु-पक्षी को मुख्य भूमिका के पात्र बनाया गया। वन्य जीवों को प्रमुखता देना एक ऐसा प्रयास था जोकि तभी सफल बन सकता था जबकि कलाकृति, 'रसानन्द' प्रदान करने में सक्षम हो। कला का 'भाव' स्फुटित करने हेतु कृति 'रस' से परिपूर्ण होनी चाहिए। सौभाग्य से मौर्यकला में ऐसे ही तत्व विद्यमान थे। कलाकृति के अवलोकन से दर्शक का हृदय रस से ओत-प्रोत हो जाता है। भरत मुनि के अनुसार किसी भाव को जागृत करने के लिए किसी (दृश्य या श्रव्य) प्रेरणा की आवश्यकता होती है। यह उक्ति अशोक की कला योजना पर सटीक बैठती है।

यूनानी दार्शनिक अरस्तू के अनुसार दया और भय साहित्य के लिए मुख्य भाव है, किन्तु भारतीय चिन्तकों ने मुख्यतः नौ प्रकार के भावों (रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा क्षम) और उनके संगत नव रस (श्रृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त) की विवेचना की है। प्रत्येक 'रस' के साथ 'भाव' ही नहीं अपितु उसके द्वारा प्रभावित 'अनुभाव' (शारीरिक स्थितियों में प्रकट भाव), 'व्यभिचारी भाव' (मनःस्थिति) तथा सहयोग 'विभाव' (आलम्बन और उद्दीपन) का विश्लेषण किया गया था। साहित्य दर्पण में तैंतीस व्यभिचारी भावों का उल्लेख किया गया है जिनमें से कम से कम चिन्ता, धृति, मति, निर्वेद, ग्लानि, विषाद को अशोक के अभिलेखों में खोजने का प्रयत्न किया जा सकता है, किन्तु चिन्ता, विषाद, ग्लानि का कोई लक्षण ही नहीं मिलता है। धौली की शिला से उभरता गज हो, या कि रामपुरवा का वृषभ हो, या फिर संकिसा का अश्व हो या फिर सारनाथ के चतुर्सिंह स्तम्भ शीर्ष के आधार पर उत्कीर्ण प्राणि हों, किसी में भी कोई त्रास, आवेग, उन्माद या दैन्य दशा की अभिव्यक्ति नहीं मिलती है। 'अनुभाव' के सन्दर्भ में, यहाँ हर्ष, धृति या मति ही दिखते हैं। इसके अतिरिक्त सम्राट अशोक की राजाज्ञायें भी 'धृति' और 'मति' के व्यभिचारी भावों से सम्पन्न हैं।

इस प्रकार, रस सिद्धान्त के विश्लेषणात्मक अध्ययन द्वारा अशोककालीन कलाकृतियों में 'शान्तरस' की उपस्थिति ही इंगित होती है। शान्तरस के अन्तर्गत 'शम' प्रधान भाव होता है; और आनन्द;मति;स्मृति दया आत्मलघुता की मनःस्थितियाँ या व्यभिचारी भाव माने जाते हैं। साहित्य और सौन्दर्यशास्त्र के आलोचकों के अनुसार शान्तरस का अनुभाव 'रोमांचित स्थिति' है अर्थात् शान्तरस मग्न व्यक्ति रोमांचित अवस्था को प्रकट करता है। शान्तरस का विभाव 'ईश्वरीय सत्ता की स्वीकृति' और सांसारिक खोखलेपन और व्यर्थता के प्रति सहमति है। इस विभाव के उद्दीपन हेतु पवित्र वातावरणयुक्त आश्रम स्थल, तीर्थस्थान, सत्संग भूमि का परिवेश श्रेष्ठ होता है।

पुनः अशोक के अभिलेखों का अवलोकन करें तो पायेंगे कि उनकी स्थिति बुद्ध के जीवन सम्बन्धी स्थलों पर मिलती है, जो स्वतः तीर्थतुल्य पवित्र भूमि है। इसके अतिरिक्त हमें किसी विहार के निकट या स्तूप की ओर आते मार्ग या परिक्षेत्र में स्थित मिले हैं। अधिकांश वक्तव्यों में सम्राट बहुत शान्त भाव से सांसारिकता के दोषों और उचित आचरण की बात कहता है। अशोक की रोमांचित स्थिति का भी अन्दाजा लगाया जा सकता है-जैसे उसे कोई ऐसा मार्ग मिल गया है जिससे जीवन सार्थक बन गया-और वह उक्त मार्गदर्शन के लिए आतुर और पुलकित हैं। 'शम' भाव के साथ, जिसमें अशोक की संतुष्टि झलकती है, सभी वक्तव्यों में 'मति' या प्रण, दया-भाव और आत्मलघुता के विचार निहित हैं। सार संक्षेप में, जो शान्त रस अभिलेख के पाठ में हैं, वहीं समतुल्य भाव कला प्रस्तुति में भी प्राप्त है। वृषभ; हो कि गज, अश्व हो कि बत्तखें, वह जिस शान्त भाव का प्रदर्शन कर रहे हैं वह कला में अद्वितीय प्रस्तुतियाँ हैं। शान्त भाव के प्रदर्शन से पहले की शर्त-पात्र की निजी शान्ति-को वह जीव भली-भाँति पूर्ण कर रहे हैं। जो शान्ति उनमें समायी है, जिस शान्त

भाव में वह मग्न या ग्रस्त हैं-वही शान्त भाव वह सब ओर बिखेर रहे हैं। मौर्य कला की यह महान क्षमता है।

मौर्य कला-कोष में मानवाकृति प्रतिमाओं का निर्माण अशोक के काल के उपरान्त प्रारम्भ हुआ, क्योंकि कलाविद् लोहानीपुर यक्ष व दीदारगंज यक्षी प्रतिमाओं को उत्तर मौर्यकाल का मानते हैं। यदि अशोकोत्तर कला को देखें, तब भी उसे प्रशंसित ही किया जायेगा क्योंकि उसमें सजीवता का वही अंश है जो अशोक कालीन मूर्तियों में था, फर्क यह है कि पहले पशु-पक्षी चित्रित थे और अब मुख्य पात्र मानवस्वरूप में प्रस्तुत थे। ये सजीव मूर्तिकला रस संप्रेक्षण में भी अद्वितीय है। दीदारगंज से प्राप्त चौरीवाहक यक्षी की प्रतिमा का सौन्दर्य महाकवि कालिदास की नायिका के समान है। ऐसा मत प्रसिद्ध कलाविद् सी० शिवराममूर्ति द्वारा व्यक्त किया गया। वास्तुकृति स्वतः ही अपने लक्षणों से श्रृंगार रस का प्रमाण देती है।

मनुज स्वरूप की प्रस्तर प्रतिमायें गिनी-चुनी हैं। जिनमें पटना और परखम से पुरुष प्रतिमायें प्राप्त हुईं जो भग्न हैं और उनके शीर्ष और भुजायें टूटी थीं। उदर और वस्त्र के आधार पर उन्हें यक्ष प्रातिमायें मान लिया गया। ऐसे ही लोहानीपुर से एक नग्न पुरुष प्रतिमा मिली जोकि स्थावर यति की भाँति सीधा खड़ा है। इसका भी शीर्ष नहीं है और कोहनी के पास भुजायें और जंघा के उपरान्त टाँगें टूटी हैं। इसको यति अथवा तीर्थंकर की प्रतिमा मानते हैं। चेहरों के न होने के कारण यक्ष और तीर्थंकर प्रतिमाओं के सम्बन्ध में निष्कर्ष लेना सम्भव नहीं है किन्तु कम से कम लोहानीपुर के धड़ से मति का भाव निश्चित रूप से प्रकट होता है।

पॉलि ले वैली के द्वारा नग्न पुरुष प्रतिमाओं के माप और शारीरिक अवयवों के अनुपात का अध्ययन कर उनकी तुलना यूनानी मूर्तिकला के मापदंडों से करने पर विद्वान ने यह निष्कर्ष दिया है कि मौर्य प्रतिमायें (विशेषकर लोहानीपुर तीर्थंकर और दीदारगंज यक्षी) के शारीरिक अनुपात यूनानी मूर्तिकला से मेल खाते हैं और इनका निर्माण यूनानी कलाकारी से प्रभावित है। इनके शारीरिक अनुपात हड़प्पाकालीन नग्न पुरुष प्रतिमाओं से बहुत भिन्न है। इस सम्बन्ध में हमारा मत है कि मौर्य कला के स्वदेशी या विदेशी स्वभाव के विमर्श में यदि रस, भाव-विभाव, अनुभाव तथा संदेश जैसे पक्षों की भी चर्चा करते हुए एक पूर्णरूपेण समीक्षा की जाये तो निश्चित ही मौर्य कला की मौलिकता और विशिष्टता स्वदेशी परम्परा में ही स्थिति होना सिद्ध होगा। यूनानी दार्शनिक अरस्तू के अनुसार (साहित्य में) दया और भय ही दो मुख्य भाव हैं, किन्तु भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का रसवाद और अधिक व्यापक है। भरतमुनि के काल में आठ और फिर नौ रस निश्चित किये गये तो उसके उपरान्त उनकी संख्या और भेद और अधिक बढ़ते गये। यूनानी परम्परा से भिन्न, भारतीय मत में रसवाद के साथ-साथ उपदेश भी कला और साहित्य का अभिन्न उद्देश्य बन गया। यही तर्क मौर्य कला को विदेशी प्रेरणाग्रस्त होने के आक्षेप से मुक्त कर देता है।

#### 4.3.4 मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

मौर्य साम्राज्य का पतन किसी एक कारण विशेष का परिणाम नहीं था बल्कि विभिन्न कारणों ने इस दिशा में योगदान दिया। सामान्य तौर पर हम इस साम्राज्य के विघटन तथा पतन के लिए निम्नलिखित कारण को उत्तरदायी मान सकते हैं।

##### 4.3.4.1 अयोग्य तथा निर्बल उत्तराधिकारी

मौर्य साम्राज्य के पतन का तत्कालिक कारण था अयोग्य उत्तराधिकारियों का होना। उनमें शासन के संगठन एवं संचालन की योग्यता का अभाव था। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि कश्मीर में जालौक ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। तारानाथ के विवरण से पता चलता है कि वीरसेन ने गान्धार प्रदेश में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर ली। कालीदास के मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार, विदर्भ एक स्वतन्त्र राज्य हो गया। परवर्ती मौर्यों शासकों में कोई भी इतना सक्षम नहीं था कि वह समस्त राज्यों को एक छत्र शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संगठित करता।

##### 4.3.4.2 प्रशासन का अतिशय केन्द्रीयकरण

मौर्य प्रशासन में सभी महत्वपूर्ण कार्य राजा के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में होते थे। उसे वरिष्ठ पदाधिकारियों की नियुक्ति का सर्वोच्च अधिकार प्राप्त था। प्रशासन के वरिष्ठ पदाधिकारी राजा के व्यक्तिगत कर्मचारी होते थे और उनकी भक्ति-भावना राष्ट्र अथवा राज्य के प्रति न होकर राजा के प्रति होती थी। साम्राज्य में गुप्तचरों का जाल-सा बिछा हुआ था। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। ऐसी व्यवस्था में शासन की सफलता पूरी तरह राजा की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करती थी। अशोक की मृत्यु के पश्चात उसके निर्बल उत्तराधिकारियों के काल में केन्द्रीय नियन्त्रण शिथिल पड़ गया। ऐसी स्थिति में साम्राज्य के पदाधिकारी सम्राट के स्वयं के लिए घातक सिद्ध हुए।

##### 4.3.4.3 राष्ट्रीय चेतना का अभाव

मौर्य युग में राज्य अथवा राष्ट्र का सरकार के ऊपर अस्तित्व नहीं था। इस समय राष्ट्र के निर्माण के लिए आवश्यक तत्व जैसे समान प्रथाएं, समान भाषा, समान ऐतिहासिक परम्परा पूरे साम्राज्य में नहीं थी। भौतिक दृष्टि से भी साम्राज्य के सभी काम समान रूप से विकसित नहीं थे। राज्य का सरकार के ऊपर कोई अस्तित्व नहीं था। राजनैतिक दृष्टि से राष्ट्रीय एकता की भावना मौर्य युग में नहीं थी। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि यवनों का प्रतिरोध कभी संगठित रूप से नहीं हुआ। जब कभी भी भारत पर यवनों के आक्रमण हुए, उनका सामना स्थानीय राजाओं अथवा सरदारों द्वारा अपने अलग-अलग ढंग से किया गया।

#### 4.3.4.4 आर्थिक एवं सांस्कृतिक असमानताएं

विशाल मौर्य साम्राज्य में आर्थिक एवं सांस्कृतिक विषमताएं विद्यमान थीं। गंगा घाटी का प्रदेश अधिक समृद्ध था वहीं उत्तर दक्षिण के प्रदेशों की आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत कम विकसित थी। मौर्य प्रशासन में उत्तरी भाग की अर्थव्यवस्था से ज्यादा अच्छी तरह परिचित थे। यदि दक्षिण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था भी समान रूप से विकसित की गयी होती तो साम्राज्य में आर्थिक सामंजस्य अवश्य स्थापित हो जाता। सांस्कृतिक स्तर पर भी विषमताएं देखने को मिलती हैं। प्रमुख व्यवसायिक नगरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में घोर विषमता व्याप्त थी। प्रत्येक क्षेत्र की सामाजिक प्रथाएं एवं भाषाएं भिन्न-भिन्न थीं। यद्यपि अशोक ने प्राकृत भाषा का अपने अभिलेखों में प्रयोग कर उसे राष्ट्र भाषा के रूप में विकसित करने का प्रयास किया था। लेकिन उत्तर-पश्चिम में यूनान तथा अरामेईक तथा दक्षिण में तमिल भाषाएं इस एकता के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा बनी रहीं।

#### 4.3.4.5 प्रान्तीय शासकों का अत्याचार

मौर्य युग में साम्राज्य के दूरस्थ प्रदेशों में प्रान्तीय पदाधिकारियों के जनता पर अत्याचार हुआ करते थे। इससे जनता मौर्यों के शासन के विरुद्ध हो गयी। दिव्यावदान में इस प्रकार के अत्याचारों का विवरण मिलता है। पहला विद्रोह तक्षशिला में विन्दुसार के समय में हुआ था तथा उसने अशोक को दबाने के लिए भेजा। अशोक के वहां पहुंचने पर तक्षशिलावासियों ने उसे बताया- "न तो हम राजकुमार के विरोधी हैं और न राजा विन्दुसार के/किन्तु दुष्ट अमात्य हम लोगों को अपमान करते हैं।" तक्षशिला में अशोक के समय में भी अमात्यों के अत्याचारों के विरुद्ध जनता का विद्रोह उठ खड़ा हुआ। इसे दबाने के लिए अशोक ने अपने पुत्र कुणाल को भेजा था। कलिंग में भी प्रान्तीय पदाधिकारियों के दुर्व्यवहार से जनता दुःखी थी। अशोक अपने कलिंग लेख में न्यायाधीशों को न्याय के मामले में निष्पक्ष तथा उदार रहने का आदेश करता है। इस सबके बावजूद जनता मौर्य शासन से घृणा करने लगी तथा निर्बल राजाओं के काल में अनेक प्रान्तों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी होगी।

#### 4.3.4.6 करों की अधिकता

परवर्ती मौर्यकाल में देश की आर्थिक स्थिति संकट ग्रस्त हो गयी थी जिसके फलस्वरूप शासकों द्वारा करों में वृद्धि कर धन का संग्रहण किया गया। उन्होंने अभिनेताओं तथा गणिकाओं पर भी कर लगाये। पतंजलि ने लिखा है कि शासन अपना कोश भरने के लिए जनता की धार्मिक भावना जाग्रत करके धन इकट्ठा करते थे। वे छोटी-छोटी मूर्तियां बनाते और उन्हें जनता के मध्य बेचकर धन कमाते थे। मौर्यों के पास एकमुश्त विशाल सेना थी एवं अधिकारियों का बहुत बड़ा वर्ग था। सेना के

रख-रखाव के लिए बहुत बड़ी धनराशि की आवश्यकता होती थी अतः यह जनता पर भारी कर लगाकर ही प्राप्त किया जा सकता था। अर्थशास्त्र के कर्ण की लम्बी सूची मिलती है।

#### 4.3.4.7 अशोक का उत्तरदायित्व

मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए कुछ विद्वानों ने अशोक की नीतियों को ही मुख्य रूप से उत्तरदायी बताया है। ऐसे विद्वानों में सर्वप्रमुख हैं महामहोपाध्याय प० हर प्रसाद शास्त्री। शास्त्री महोदय ने अशोक की अहिंसा की नीति को ब्राह्मण विरोधी बताया है जिसके फलस्वरूप अंत में चलकर पुश्यमित्र के नेतृत्व में ब्राह्मणों का विद्रोह हुआ तथा मौर्य वंश की समाप्ति हो गयी। हेमचन्द्र राय चौधरी ने उनके तर्कों का विद्धतापूर्ण ढंग से खण्डन करने के पश्चात यह सिद्ध कर दिया कि अशोक की नीतियों किसी भी अर्थ में ब्राह्मण विरोधी नहीं थीं। यहां दोनों विद्वानों के मतों का अवलोकन करेंगे-

प० शास्त्री के मतके अनुसार -

- (1) अशोक द्वारा पशुबलि पर रोक लगाना, ब्राह्मणों पर खुला आक्रमण था चूंकि वे यज्ञ कराते थे और इस रूप में मनुष्यों एवं देवताओं के बीच मध्यस्थता करते थे अतः अशोक के इस कार्य का उनकी शक्ति तथा सम्मान को भारी धक्का लगा।
- (2) अपने रूप नाथ के लघु शिलालेख में अशोक बताता है कि उसने भू-देवों (ब्राह्मणों) को मिथ्या साबित कर दिया। यह कथन स्पष्टतः ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा के विनाश की भी सूचना देता है।
- (3) धम्म महामात्रों ने ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को पूरी तरह समाप्त कर दिया।
- (4) अशोक अपने पांचवे स्तम्भ लेख में बताता है कि उसने न्याय प्रशासन के क्षेत्र में दण्ड समता एवं व्यवहार समता का सिद्धान्त लागू किया। इससे ब्राह्मणों को जो दण्ड मुक्ति का विशेषाधिकार प्राप्त था वह समाप्त हो गया।
- (5) चूंकि अशोक शक्तिशाली राजा था अतः ब्राह्मणों को दबाकर नियंत्रण में रखे रहा। उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी राजाओं तथा ब्राह्मणों के बीच संघर्ष प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मणों ने पुश्यमित्र के नेतृत्व में संगठित होकर अन्तिम मौर्य शासक ब्रहद्रथ का काम तमाम कर दिया।

राय चौधरी ने उपयुक्त मतों का खण्डन किया है-

- (1) अशोक की अहिंसा की नीति ब्राह्मणों के विरुद्ध नहीं थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में अहिंसा का विधान मिलता है उपनिषद् पशुबलि तथा हिंसा का विरोध करते हैं।

(2) बहुत से धम्म महामात्र ब्राह्मणों के कल्याण के लिये नियुक्त किये गये थे। अशोक अपने बारहवें शिलालेख में बारम्बार यह बलपूर्वक कहता है कि ब्राह्मणों के साथ उदार वर्ताव किया जाये। ऐसी स्थिति में यह तर्क मान्य नहीं हो सकता।

(3) अशोक द्वारा न्याय प्रशासन में एकरूपता लाने के उद्देश्य से दण्ड समता एवं व्यवहार समता का नियम बनया गया था। इसका उद्देश्य था सबको समान एवं निष्पक्ष न्याय मिल सके।

(4) इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि परवर्ती मौर्यों तथा ब्राह्मणों के बीच संघर्ष हुआ था। यह भी सत्य नहीं है कि अशोक के सभी उत्तराधिकारी के बीच संघर्ष हुआ था। यह भी सत्य नहीं है कि अशोक के सभी उत्तराधिकारी बौद्ध ही थे। जालौक को राजतरंगिणी में स्पष्टता शैव तथा बौद्ध विरोधी कहा गया है। पुष्यमित्र के सेनापति के पद पर नियुक्ति स्वयं इस बात का प्रमाण है कि प्रशासन के उच्च पदों पर ब्राह्मण की नियुक्ति होती थी।

जहां तक पुष्यमित्र शृंग के विद्रोह का प्रश्न है इसे हम ब्राह्मण प्रतिक्रिया का प्रतीक नहीं मान सकते। सांची, भरहुत आदि स्थानों से प्राप्त कलाकृतियों से पुष्यमित्र के बौद्ध-द्रोही होने के मत का खण्डन हो चुका है। यदि यह ब्राह्मण विद्रोह होता तो दूसरे ब्राह्मण शासकों से अवश्य सहायता मिली होती। चूंकि साम्राज्य अत्यन्त निर्बल हो चुका था अतः उसे पलटने के लिए किसी बड़े विद्रोह की आवश्यकता नहीं थी। पुष्यमित्र द्वारा ब्रह्मद्रथ की हत्या एक सामान्य घटना थी। प० हरप्रसाद शास्त्री के मत का खण्डन करने के बाद चौधरी ने स्वयं अशोक की शान्तिवादी नीति को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराया। चौधरी के मतानुसार अशोक की शान्ति एवं अहिंसा की नीति ने देश को सैनिक दृष्टि से अत्यन्त निर्बल कर दिया और वह यवनों के आक्रमण का सामना करने में असमर्थ रहा। अशोक ने अपने पूर्वजों के दिग्विजय की नीति का परित्याग कर धम्म विजय को अपना लिया। फलस्वरूप सैनिक अभियानों के अभाव में उसकी सेना में निष्क्रियता आ गयी।

परन्तु उपर्युक्त मत की आलोचनात्मक समीक्षा की जाय तो वे पूरी तरह निरर्थक होंगे। अशोक यदि इतना अहिंसावादी, शान्तिवादी होता जितना चौधरी ने समझा है तो वह अपने राज्य में मृत्युदण्ड बन्द करा दिया होता। हम यह जानते हैं कि कलिंग को उसने स्वतंत्र नहीं किया और न ही इस युद्ध के ऊपर कलिंग राज्य में पश्चाताप किया। उसके अभिलेख उसकी सुदृढ़ सैनिक शक्ति के महत्वपूर्ण बाध्य प्रस्तुत करते हैं। अपने 13वें शिलालेख में वह सीमान्त प्रदेश के लोगों तथा जंगली जनजातियों को स्पष्ट चेतावनी देता है कि जो गलती किये हैं सम्राट उन्हें क्षमा करने का इच्छुक है, परन्तु जो केवल सैनिक शक्ति की याद दिलाते हुए वह कहता है 'यदि वे अपराध नहीं छोड़ेंगे तो उनकी हत्या करा दी जायेगी। इन मतों से हेमचन्द्र राय चौधरी के मत का खण्डन हो जाता है।

अतः उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अशोक किसी भी प्रकार से मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी नहीं था। मौर्य साम्राज्य का पतन स्वाभाविक कारणों का परिणाम था। जिसका उत्तरदायित्व अशोक के मत्थे पर मढ़ना उचित नहीं होगा।

#### स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये-

(क) मौर्य युगीन कला।

(ख) मौर्य साम्राज्य के पतन में अशोक का उत्तरदायित्व।

---

### 4.4 सारांश

उपयुक्त शीर्षको के अन्तर्गत आपको मौर्य युगीन समाज, अर्थव्यवस्था, कला एवं मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी कारणों से परिचित कराया गया है। अतः अब आप उपरोक्त के बारे में पर्याप्त जानकारी रखते हैं।

---

### 4.5 तकनीकी शब्दावली

‘वार्ता’ - कृषि पशुपालन वाणिज्य का संयुक्त नाम।

असूर्यपश्या - सूर्य को न देखने वाली।

महाश्रेष्ठी - श्रेणी न्यायालय का प्रमुख।

---

### 4.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.3.1 के उत्तरों के लिए देखिए

(क) देखिए - 1.3.3. मौर्य युगीन कला

(ख) देखिए - 1.3.4.7 अशोक के मौर्य साम्राज्य के पतन में अशोक का उत्तरदायित्व

---

### 4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला।
2. के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।
3. वी0डी0 महाजन, प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास।

---

#### 4.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

(क) एच. डी. सांकलिया , एज ऑफ नन्दाज एण्ड मौर्याज

(ख) डॉ० निहारिका, प्राचीन भारतीय पुरातत्व, अभिलेख एवं मुद्राएँ

---

#### 4.9 निबंधात्मक प्रश्न

---

(क) मौर्य कालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था पर एक लेख लिखिए।

(ख) मौर्य कालीन कला, एवं मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।

---

## इकाई एक- गुप्त साम्राज्य : चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त , चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा उनकी सफलताएं

---

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 चन्द्रगुप्त I
- 1.4 समुद्रगुप्त
- 1.5 चन्द्रगुप्त II
- 1.6 सारांश
- 1.7 तकनीकी शब्दावली
- 1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

चन्द्रगुप्त I, समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त II की उपलब्धियों पर चर्चा करने से पहले गुप्तों के विषय में सामान्य जानकारी प्राप्त करना उचित होगा। गुप्तों के आदिदेश के समान उनकी उत्पत्ति के विषय में भी विद्वान एकमत नहीं हैं। काशी प्रसाद जायसवाल विज्जिका कृत 'कौमुदीमहोत्सव' के चण्डसेन की पहचान चन्द्रगुप्त I से करते हैं। उक्त रचना में चण्डसेन को कारस्कर बताया गया है। 'बौधायन धर्मसूत्र' में कारस्कर का उल्लेख मद्र, आरट्ट आदि के साथ किया गया है, जो पंजाब की जाट जातियाँ हैं। इस आधार पर जायसवाल गुप्तों को जाट बताते हैं। किन्तु अधिकांश विद्वान 'कौमुदीमहोत्सव' के चण्डसेन को चन्द्रगुप्त I पहचानने के पक्ष में नहीं हैं।

अनन्त सदाशिव अलतेकर इस वंश के शासकों के गुप्त नामान्त के आधार पर गुप्तों को वैश्य मानने का सुझाव देते हैं क्योंकि धर्मशास्त्र में गुप्त नामान्त वैश्यों के लिए उपयुक्त बताया गया है। किन्तु प्राचीन भारत में इस व्यवस्था के अपवाद उपलब्ध हैं। ब्राह्मण वर्ण में 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार विष्णुगुप्त, तथा खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त ज्ञात हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार गुप्त ब्राह्मण थे। वाकाटक अभिलेखों में चन्द्रगुप्त II की पुत्री, प्रभावतीगुप्ता का गोत्र धारण बताया गया है। अभिलेखीय स्रोतों से ज्ञात है कि वाकाटक विष्णुवृद्ध गोत्रीय ब्राह्मण थे। अतः प्रभावतीगुप्ता के लिए प्रयुक्त धारण गोत्र उसका पैतृकगोत्र, अर्थात् गुप्तों का, गोत्र रहा होगा। गुप्तकाल में धारण ब्राह्मणों का गोत्र था। नरेन्द्र के कुरुड अभिलेख में उल्लिखित भृश्रुतस्वामि, धारण गोत्रीय ब्राह्मण था। अतः धारण गोत्रीय गुप्त भी ब्राह्मण रहे होंगे। किन्तु अश्विनी अग्रवाल का विचार है कि वाकाटक अभिलेखों में धारण गोत्र का उल्लेख प्रभावतीगुप्ता नहीं, अपितु उसकी माता, कुबेरनागा, के गोत्र के रूप में हुआ है, और इस उल्लेख के आधार पर गुप्तों के वर्ण का अनुमान लगाना उचित नहीं होगा।

स्वयं अश्विनी अग्रवाल का मत है कि गुप्तों के विष्णुवृद्ध गोत्रीय वाकाटक तथा मानव्य गोत्रीय कदम्ब जैसे ब्राह्मण राजवंशों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध ज्ञात हैं। अतः स्वयं गुप्त भी ब्राह्मण रहे होंगे। किन्तु यहाँ यह कहना आवश्यक है कि राजवंशों के मध्य वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना के समय अनेक बार वर्ण एवं जाति की अपेक्षा राजनीतिक कारण अधिक प्रभावी भूमिका निभाते हैं। यदि समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति की सूचना को विश्वसनीय माना जाए, तो परवर्ती कुषाण, शक, मुरुण्ड, श्रीलंका, और दक्षिण-पूर्वी एशिया के अनेक द्वीपों की विदेशी कन्याओं का विवाह राजनीतिक कारणों से गुप्त वंश में हुआ था। गुप्तों से पूर्व भी कार्दमक शक महाक्षत्रप, रुद्रदामन् की पुत्री का विवाह सातवाहन वंश में हुआ था। ऐसी दशा में ब्राह्मण राजवंशों के साथ गुप्तों के वैवाहिक सम्बन्धों के आधार पर गुप्तों को ब्राह्मण मानना उचित नहीं लगता।

## 1.2 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में आपको प्राचीन भारतीय इतिहास के विविध पक्षों की जानकारी दी गयी थी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। इस इकाई का उद्देश्य प्राचीन भारत में गुप्तवंशीय शासकों चन्द्रगुप्त I, समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त II की राजनीतिक उपलब्धियां किस प्रकार रही, इससे संबंधित तथ्यों से आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

- चन्द्रगुप्त I की उपलब्धियां
- समुद्रगुप्त की उपलब्धियां
- चन्द्रगुप्त II की उपलब्धियां

## 1.3 चन्द्रगुप्त I

चन्द्रगुप्त I गुप्त वंश में 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण करने वाला पहला शासक हुआ। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि वह अपने वंश का पहला स्वतंत्र शासक था। सम्भव है कि लिच्छवियों के साथ स्थापित हुए वैवाहिक सम्बन्ध ने इसमें चन्द्रगुप्त I की सहायता की हो। स्मिथ के अनुसार पाटलिपुत्र पर लिच्छवियों का अधिकार था। चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के विवाह के परिणामस्वरूप उस पर गुप्त अधिकार स्थापित हो गया। राजनीतिक शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि होने पर चन्द्रगुप्त ने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की होगी। किन्तु एलन इससे सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार पाटलिपुत्र गुप्त के काल से ही गुप्तों के अधिकार में था। चन्द्रगुप्त I ने लिच्छवियों को पराजित किया। बाद में गुप्तों और लिच्छवियों के मध्य संधि हो गई, जिसकी एक शर्त के अनुसार लिच्छवि राजकुमारी, कुमारदेवी, का विवाह चन्द्रगुप्त I के साथ किया गया। इस विवाह के परिणामस्वरूप गुप्तों की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ी, और इस कारण चन्द्रगुप्त I तथा कुमारदेवी के पुत्र, समुद्रगुप्त, ने दोनों के विवाह की स्मृति में चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी प्रकार की मुद्रा जारी की, और गुप्त वंशावली में उसे 'लिच्छवि' दौहित्र' कहा गया। अलतेकर एलन से सहमत नहीं हैं। यदि चन्द्रगुप्त I ने लिच्छवियों को पराजित किया होता, तो समुद्रगुप्त उनसे अपना सम्बन्ध जोड़ने में गौरव का अनुभव न करता।

स्वयं अलतेकर का विचार है कि चन्द्रगुप्त I और कुमारदेवी के विवाह के परिणामस्वरूप गुप्त और लिच्छवि राज्यों का एकीकरण हो गया। इस राजनीतिक व्यवस्था में कुमारदेवी राजा की पत्नी होने के साथ-साथ स्वयं सहशासिका भी थी। इस कारण सहशासन के दौरान जारी चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी प्रकार की मुद्रा के अग्रभाग पर चन्द्रगुप्त I एवं कुमारदेवी, दोनों के नाम तथा आकृतियाँ,

तथा पृष्ठभाग पर लिच्छवियों का उल्लेख किया गया। प्रभाव क्षेत्र एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होने पर चन्द्रगुप्त I ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर 'महाराजाधिराज' को उपाधि धारण की। अधिकांश विद्वान 319 ईसवी में गुप्त संवत् के प्रवर्तन का श्रेय भी चन्द्रगुप्त I को देते हैं।

‘वायुपुराण’ तथा ‘विष्णुपुराण’ से ज्ञात होता है कि गुप्त के वंशज गंगा के किनारे के क्षेत्रों , प्रयाग, साकेत, एवं मगध के सभी जनपदों का, अथवा गंगा के किनारे स्थित प्रयाग, तथा साकेत एवं मगध के सभी जनपदों का उपभोग करेंगे। गुप्त राज्य का यह विस्तार गुप्त और घटोत्कच जैसे अधीनस्थ शासकों के लिए बहुत अधिक प्रतीत होता है। समुद्रगुप्त से स्कन्दगुप्त तक गुप्त शासकों का अधिकार क्षेत्र इससे कहीं अधिक विस्तृत था। स्कन्दगुप्त के उपरान्त गुप्त साम्राज्य की सीमाएँ संकुचित होने लगीं। फिर भी बंगाल पर गुप्तों का अधिकार लगभग अंत तक रहा। यदि पुराणों में उल्लिखित उपरोक्त विस्तार स्कन्दगुप्त के बाद की स्थिति की ओर संकेत कर रहा होता, तो उसमें बंगाल का उल्लेख होना चाहिए था। इस कारण अधिकांश विद्वान इसे चन्द्रगुप्त प् का राज्य विस्तार मानते हैं। अतः चन्द्रगुप्त प् ने पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के क्षेत्रों पर शासन किया होगा।

प्रयाग प्रशस्ति की खण्डित आरम्भिक पंक्तियों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त प् ने अपने पुत्र, समुद्रगुप्त, की योग्यता की प्रशंसा करते हुए उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। समुद्रगुप्त के एरण प्रस्तर लेख से संकेत मिलता है कि चन्द्रगुप्त I, समुद्रगुप्त से उसकी वीरता, भक्ति और सच्चरित्र के कारण अत्यंत प्रसन्न था। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार चन्द्रगुप्त I की उत्तराधिकार सम्बन्धी घोषणा से राजसभा में उपस्थित सिंहासन के अन्य दावेदारों के मुख म्लान पड़ गए। इससे यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं होगा कि समुद्रगुप्त को पिता द्वारा उत्तराधिकारी चुने जाने के बाद भी सिंहासन पर अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए प्रतिद्वन्द्वियों से संघर्ष करना पड़ा। सम्भवतः इसी कारण उसके द्वारा जारी सर्वप्रथम मुद्रा प्रकार, दण्डधारी प्रकार, के अग्रभाग के लेख में उसके द्वारा सौ युद्धों में विजय प्राप्त किए जाने का उल्लेख मिलता है।

## 1.4 समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्त के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के विषय में हरिषेण रचित प्रयाग प्रशस्ति से विस्तृत सूचना प्राप्त होती है। अभिलेख में उत्तर भारतीय, दक्षिण भारतीय, तथा विदेशी शक्तियों के साथ उसके सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। उत्तर भारत में उसकी सैन्य गतिविधियों की चर्चा दो बार की गई है-उसके दक्षिण भारतीय अभियान के वर्णन से पूर्व, तथा उसके पश्चात् भी। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने यह अनुमान व्यक्त किया है कि उसने उत्तर भारतीय राज्यों की विजय हेतु कम से कम दो अभियान किए। किन्तु अन्य विद्वानों की धारणा है कि एक उत्तर भारतीय राजा, उत्तर भारत में अपनी स्थिति को सुदृढ़ किए बिना दक्षिण की ओर अभियान नहीं करेगा, और समुद्रगुप्त ने उत्तर

भारत के एक विस्तृत भूभाग पर अपना अधिकार स्थापित करने के उपरांत ही दक्षिण भारत की विजय की योजना बनाई होगी।

समुद्रगुप्त के शासन के आरम्भिक वर्षों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष के परिणामस्वरूप व्याप्त राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर सम्भवतः अच्युत, नागसेन, गणपतिनाग, तथा कोतकुलज जैसे कुछ राजाओं ने गुप्तों के मूल्य पर अपने अधिकार क्षेत्र के विस्तार का प्रयास किया। समुद्रगुप्त ने इन सभी को पराजित किया। इनमें अच्युत सम्भवतः अहिच्छत्रा का नाग शासक था, जिसकी मुद्राएं पंचाल क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। नागसेन और गणपतिनाग भी नागवंशीय शासक थे जो क्रमशः पदमावती तथा मथुरा पर राज्य करते थे। कोतकुलज का राज्य ऊपरी गंगा घाटी में स्थित प्रतीत होता है। देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर के अनुसार इन चारों शासकों ने गुप्तों के विरुद्ध एक संघ का गठन किया था। प्रयाग प्रशस्ति में दक्षिणापथ अभियान के विवरण के पश्चात् पंक्ति 21 में समुद्रगुप्त की आर्यावर्त विजय का पुनः उल्लेख मिलता है। यहाँ उसके द्वारा पराजित नौ राजाओं का नामोल्लेख है। इनमें रुद्रदेव की पहचान पहले के 0 एन 0 दीक्षित द्वारा वाकाटक राजा, रुद्रसेन I, से की गई थी। किन्तु रुद्रदेव का उल्लेख आर्यावर्त के राजा के रूप में किया गया है, जबकि वाकाटक राज्य दक्षिणापथ में स्थित था। दिनेश चन्द्र सरकार रुद्रदेव की पहचान कार्दमक क्षत्रप रुद्रसेन I अथवा रुद्रसेन III से करने का सुझाव देते हैं, जबकि एम 0 एम 0 नागर और परमेश्वरी लाल गुप्त जैसे विद्वान उसका सम्बन्ध कौशाम्बी से जोड़ते हैं, जहाँ से श्रीरुद्र नाम वाली मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। नागदत्त की पहचान पुण्ड्रवर्द्धन के दत्त सामन्त परिवार के पूर्वज के रूप में की गई है। मतिल को बुलन्दशहर से प्राप्त एक मुहर के मत्तिल से अभिन्न माना गया है, किन्तु एलन तथा जगन्नाथ अग्रवाल जैसे विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। चन्द्रवर्मन् की पहचान सुसुनिया अभिलेख के चन्द्रवर्मन् से की गई है, जिसे उस अभिलेख में पुष्करण (पश्चिम बंगाल में सुसुनिया से 25 मील उत्तरपूर्व में स्थित पोखरण) का राजा कहा गया है। गणपतिनाग और नागसेन के विषय में ऊपर भी चर्चा की जा चुकी है। बलवर्मन् का सम्बन्ध कामरूप अथवा कौशाम्बी से जोड़ने के प्रयास किए गए हैं जो मान्य नहीं हैं। अश्विनी अग्रवाल उसे एरण का शक शासक मानते हैं। सरकार और कुछ अन्य विद्वान अच्युत और नन्दिन् को दो अलग-अलग राजा न मानकर एक ही नाम, अच्युतनन्दिन्, मानने का सुझाव देते हैं। ऊपर हमने देखा कि अच्युत अहिच्छत्रा का नाग राजा प्रतीत होता है। यदि नन्दिन् एक अलग राजा का नाम है तो उसकी पहचान अज्ञात है। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के राजाओं का उच्छेद कर दिया। इससे उसके अधिकार क्षेत्र में विस्तार हुआ होगा।

उत्तर भारत में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के उपरान्त समुद्रगुप्त ने गंगा-यमुना दोआब के दक्षिणपूर्व के वन्यक्षेत्र की वन्य जातियों (आटविक राज्य) पर अपना प्रभाव स्थापित किया। प्रयाग प्रशस्ति की पंक्ति 21 से स्पष्ट है कि वह इन आटविक राज्यों से अपनी सेवा करवा कर संतुष्ट हो

गया। इस प्रकार समुद्रगुप्त ने अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ का परिचय दिया, क्योंकि इन वन्य जातियों पर प्रत्यक्ष शासन स्थापित रखना किसी भी शासक के लिए कठिन था।

प्रयाग प्रशस्ति की पंक्ति 19-20 में उसके दक्षिणापथ अभियान का वर्णन मिलता है। इस संदर्भ में दक्षिण भारत के उन 12 राज्यों और उनके राजाओं का नामोल्लेख है, जिन्हें समुद्रगुप्त ने पराजित किया। इनमें कोसल की पहचान दक्षिण कोसल से की गई है, जिसके अंतर्गत रायपुर, बिलासपुर, और सम्भलपुर क्षेत्र आते हैं। वहाँ पर महेन्द्र का शासन था। महाकान्तार ऊपरी दक्षिणापथ का वन्य क्षेत्र था, जहाँ व्याघ्रराज शासन करता था। कुराल की पहचान फ्लीट द्वारा केरल से की गई। किन्तु अब विद्वान इसे पश्चिमी गोदावरी जिले में एल्लूर के निकट कोल्लैर झील के आस-पास का क्षेत्र, अथवा गंजाम के निकट कोलड, अथवा दक्षिण कोसल के निकट स्थित मानते हैं। कुराल का राजा मण्टराज था। पिष्टपुर की पहचान पूर्वी गोदावरी जिले में स्थित आधुनिक पीठापुरम् से की गई है। उस पर महेन्द्रगिरि राज्य कर रहा था। कोटूर महेन्द्रपर्वत के निकट कोथूर था जिस पर स्वामिदत्त का शासन था। एरण्डपल्ल को फ्लीट ने महाराष्ट्र के खानदेश में स्थित एरण्डोल पहचाना था। किन्तु अब अधिकांश विद्वान उसे उड़ीसा के गंजाम क्षेत्र अथवा आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम् क्षेत्र में स्थित बताते हैं। वहाँ के राजा का नाम दमन था। काञ्ची पल्लव राज्य की राजधानी थी, और वहाँ का शासक, विष्णुगोप, स्कन्दवर्मन् II का पुत्र और सिंहवर्मन् का अनुज था। अवमुक्त की पहचान के विषय में अनिश्चिता की स्थिति है। हेमचन्द्र रायचौधरी उसे गोदावरी घाटी में स्थित मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान इसका संबंध कडापा, कुर्नूल, अथवा खारवेल के हाथीगुम्फा लेख के अव (घ) और पिथुण्ड से जोड़ते हैं। अवमुक्त का शासक नीलराज था। वेंगी आन्ध्रप्रदेश के कृष्णा जिले में स्थित पेड्डवेगी है। वहाँ समुद्रगुप्त द्वारा पराजित राजा हस्तवर्मन् था, जो शालंकायन वंश का था। पालक्क की पहचान नेल्लूर क्षेत्र में स्थित पलक्कड से की गई है। अधिकतर विद्वान वहाँ के राजा का नाम उग्रसेन मानते हैं, किन्तु कुछ लेखक उसे उग्रवर्मन् पढ़ कर उसका सम्बन्ध पल्लव वंश से जोड़ते हैं। फ्लीट ने देवराष्ट्र की पहचान महाराष्ट्र से की है। किन्तु जूवो-दुब्रुआ उसे विशाखापत्तनम् के निकट येल्लमंचिली क्षेत्र मानते हैं। वहाँ के राजा का नाम कुबेर बताया गया है। स्मिथ ने कुस्थलपुर को कुशास्थलपुर (द्वारका) पहचानने का सुझाव दिया था, किन्तु अधिकांश विद्वान एल0 डी0 बार्नेट के इस विचार से सहमत हैं कि कुस्थलपुर की पहचान आंध्र प्रदेश के उत्तरी आर्कोट जिले में स्थित कुट्टलूर से की जानी चाहिए। समुद्रगुप्त ने वहाँ के राजा धनंजय को पराजित किया था।

फ्लीट ने एरण्डपल्ल की पहचान खानदेश में एरण्डोल से, कुराल की पहचान केरल से, और देवराष्ट्र की पहचान महाराष्ट्र से करके यह सुझाव दिया कि समुद्रगुप्त अपने दक्षिणापथ अभियान के दौरान पूर्वी समुद्रतट के मार्ग से आगे बढ़ता हुआ कांची पहुँचा, और वहाँ से पश्चिमी समुद्रतट पर केरल, महाराष्ट्र आदि होते हुए उत्तर भारत वापस लौटा। किन्तु ऊपर हमने देखा कि अन्य विद्वानों ने प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित दक्षिणापथ के सभी विजित राज्यों को पूर्वी समुद्रतट ही स्थित सिद्ध कर

दिया है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त पाटलिपुत्र से चलकर मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के मार्ग से उड़ीसा पहुँचा, और पूर्वी समुद्रतट के मार्ग से आगे बढ़ता हुआ कांची तक गया, और फिर पूर्वी समुद्रतट के मार्ग से ही उत्तर भारत वापस लौटा। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार उसने दक्षिणापथ के पराजित शासकों से कर ग्रहण कर उन्हें उनका राज्य वापस लौटा दिया, और एक बार पुनः अपनी राजनीतिक समझदारी का परिचय दिया। पूर्वी समुद्रतट के ये राज्य गुप्त शासक के राजनीतिक प्रभाव में आ गए।

प्रयाग प्रशस्ति में पाँच प्रत्यन्त राज्यों और नौ गणतन्त्रात्मक राज्यों के उल्लेख हैं, जिन्होंने समुद्रगुप्त का राजनीतिक प्रभाव स्वीकार कर लिया था। प्रत्यन्त राज्यों के अंतर्गत समतट की पहचान दक्षिणपूर्वी बंगाल से, डवाक की असम के नौगाँग जिले में आधुनिक डबोका से, कामरूप की असम के गुवाहाटी क्षेत्र से, तथा कर्तूपुर की पहचान जालंधर के निकट आधुनिक करतारपुर अथवा कुमाँऊ, गढ़वाल एवं रुहेलखण्ड के कत्यूरी राज्य से की गई है। पाँचवा प्रत्यंत राज्य नेपाल है। अभिलेख में जिन गणराज्यों का उल्लेख है, उसमें मालव गणराज्य राजस्थान और पश्चिमी मालवा में स्थित था। अर्जुनायन गणराज्य मथुरा और ब्रज क्षेत्र में स्थित प्रतीत होता है। यौधेय गणराज्य का विस्तार पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में था। माद्रक गणराज्य की राजधानी शाकल (आधुनिक स्यालकोट) थी। आभीर गणराज्य अपरान्त अर्थात् कोंकण क्षेत्र में स्थित था। प्रार्जुन गणराज्य के अंतर्गत मध्यप्रदेश का नरसिंहपुर क्षेत्र आता था। सनकानीक गणराज्य पूर्वी मालवा में स्थित था। काक गणराज्य की स्थिति काकनादबोट (सांची) बताई गई है। खरपरिक गणराज्य के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इन प्रत्यन्त राज्यों और गणराज्यों ने समुद्रगुप्त को सभी कर प्रदान किए, उसकी आज्ञापालन को स्वीकार किया, तथा स्वयं उपस्थित होकर उसके प्रति आदर व्यक्त किया।

प्रयाग प्रशस्ति की पंक्ति 23-24 में विदेशी शक्तियों की चर्चा की गई है। उन्होंने स्वयं समुद्रगुप्त का राजनीतिक प्रभाव स्वीकार किया, अपनी कन्याओं का विवाह गुप्त वंश में किया, तथा समुद्रगुप्त से आग्रह किया कि वह गरुड़ मुद्रा से अंकित राजाज्ञा जारी करके उन्हें अपने-अपने राज्य पर शासन करने की अनुमति प्रदान करे। ऐसी विदेशी शक्तियों में दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहि को पश्चिमोत्तर भारत के परवर्ती कुषाण शासक माना गया है। फ्लीट, एलन, जायसवाल आदि विद्वानों के अनुसार शक-मुरुण्ड दो अलग-अलग शक्तियाँ, शक और मुरुण्ड हो सकती हैं। किन्तु कुछ विद्वान मानते हैं कि शक भाषा में 'मुरुण्ड' शब्द का अर्थ स्वामी है, और अभिलेख में 'शक-मुरुण्ड' का अर्थ शक-स्वामी अर्थात् परवर्ती शक राजा से लगाया जाना चाहिए। सिंहल की पहचान श्रीलंका से की गई है। सर्वद्वीप से तात्पर्य सम्भवतः दक्षिणपूर्वी एशिया के द्वीपों से है।

इस प्रकार कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजस्थान, सिंध और गुजरात को छोड़कर लगभग पूरे उत्तर भारत पर समुद्रगुप्त का शासन था। दक्षिण भारत के पूर्वी समुद्रतट पर स्थित कम से

कम 12 राज्यों की उसने विजय की थी। अन्य दिशाओं में उसके करद राज्यों की लगभग अक्षुण्ण शृंखला थी। निःसंदेह समुद्रगुप्त अपने समय का भारत का सर्वप्रमुख शासक था। सम्भवतः अपने शासनकाल के अंतिम वर्षों में उसने अश्वमेध का आयोजन किया। प्रयाग प्रशस्ति में इसका उल्लेख उपलब्ध नहीं है। किन्तु इस अवसर पर पुरोहितों को दक्षिणा प्रदान करने हेतु उसने अश्वमेध प्रकार की स्वर्ण मुद्राएं जारी कीं, जो उसके द्वारा अश्वमेध के सम्पादन की एकमात्र समकालिक साक्ष्य हैं। किन्तु उसके उत्तराधिकारी उसके लिए 'चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्ता' की उपाधि का प्रयोग करते हैं। अधिकांश विद्वान समुद्रगुप्त द्वारा केवल एक अवश्वमेध के आयोजन की बात स्वीकार करते हैं। किन्तु अजय मित्र शास्त्री ने अश्वमेध प्रकार के दो भिन्न वृत्ताकार लेखों के आधार पर समुद्रगुप्त द्वारा दो अश्वमेध के सम्पादन का सुझाव दिया है। प्रभावतीगुप्ता के पूना ताम्रपत्र लेख में समुद्रगुप्त को 'अनेकाश्वमेधयाजिन्' कहा गया है।

प्रयाग प्रशस्ति से समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश पड़ता है। उसे 'कविराज' कहा गया है। अलतेकर का सुझाव है कि गुप्त मुद्रा पर छन्दबद्ध वृत्ताकार लेख अंकित करने की जो परम्परा समुद्रगुप्त के काल में आरम्भ हुई, उसका कारण समुद्रगुप्त का कवि होना था: सम्भव है कि अपनी मुद्राओं के लिए छन्दबद्ध लेखों की रचना स्वयं समुद्रगुप्त ने की हो। प्रयाग प्रशस्ति की पंक्ति 27 के अनुसार उसने अपनी विलक्षण बुद्धि से बृहस्पति को, और संगीत में अपनी दक्षता से तुम्बुरु और नारद को लज्जित कर दिया था। समुद्रगुप्त के संगीतानुरागी होने की पुष्टि उसकी वीणावादक प्रकार की मुद्रा से भी होती है। वह दीनों एवं असहायों के कल्याण के प्रति सजग रहता था। उसके द्वारा बड़ी संख्या में स्वर्ण मुद्राएं दान किए जाने की चर्चा प्रयाग प्रशस्ति के अतिरिक्त उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में भी की गई है।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. विद्वान 319 ईसवी में गुप्त संवत् के प्रवर्तन का श्रेय चन्द्रगुप्त I को देते हैं (सत्य/असत्य)
2. चन्द्रगुप्त I के विषय में हरिषेण रचित प्रयाग प्रशस्ति से सूचना प्राप्त होती है(सत्य/असत्य)
3. प्रभावतीगुप्ता के पूना ताम्रपत्र लेख में समुद्रगुप्त को 'अनेकाश्वमेधयाजिन्' कहा गया है(सत्य/असत्य)
4. कर्तृपुर की पहचान कुमाँऊ, गढ़वाल एवं रुहेलखण्ड के कत्यूरी राज्य से की गई है(सत्य/असत्य)
5. प्रयाग प्रशस्ति में पाँच प्रत्यन्त राज्यों और नौ गणतन्त्रात्मक राज्यों के उल्लेख हैं(सत्य/असत्य)
6. प्रयाग प्रशस्ति की पंक्ति 20-21 में विदेशी शक्तियों की चर्चा की गई है।

## 1.5 चन्द्रगुप्त II

चन्द्रगुप्त II गुप्त वंश का एक प्रभावशाली शासक हुआ। उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की और भारतीय परम्परा के विक्रमादित्य से उसका सम्बन्ध जुड़ने के कारण उससे सम्बन्धित अनेक कथाएँ प्रचलित हुईं, जिनके ऐतिहासिक महत्त्व के विषय में कुछ कहना कठिन



है। गुप्त संवत् 82 के उदयगिरि अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त II दिग्विजय पर निकला था। किन्तु उसकी कार्दमक शक विजय के अतिरिक्त किसी सैन्य गतिविधि के विषय में निश्चित सूचना उपलब्ध नहीं है।

दिनेश चन्द्र सरकार जैसे विद्वानों के अनुसार समुद्रगुप्त द्वारा पराजित आर्यावर्त के राजाओं में सम्मिलित रुद्रदेव की पहचान कार्दमक क्षत्रप, रुद्रसेन प्प अथवा रुद्रसेन III, से की जानी चाहिए। यदि यह विचार सही है तो ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त द्वारा पराजित किए जाने के उपरान्त भी कार्दमक क्षत्रप काठियावाड़ में एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल रहे। चन्द्रगुप्त II ने उन्हें पराजित करने के उद्देश्य से पश्चिम की ओर अभियान किया। इसके लिए उसने मालवा में अपनी शक्ति केन्द्रित की। उसके अनेक मन्त्रियों, अधिकारियों, और अधीनस्थ राजाओं ने इस अभियान में उसकी सहायता की। इस संदर्भ में गुप्त संवत् 82 के उदयगिरि लेख से ज्ञात वीरसेन शाब, तिथिविहीन उदयगिरि लेख से ज्ञात सनकानीक महाराज, और गुप्त संवत् 93 के साँची लेख से ज्ञात आम्रकार्दव आदि उल्लेखनीय हैं। गुप्त संवत् 82 के उदयगिरि लेख से स्पष्ट है कि उस समय चन्द्रगुप्त II अपने पश्चिमी अभियान के संदर्भ में वहाँ उपस्थित था। गुप्त संवत् 93 के साँची अभिलेख से संकेत मिलता है कि उस समय तक पश्चिमी अभियान सफल हो चुका था। अतः चन्द्रगुप्त II कार्दमक क्षत्रपों के विरुद्ध अपने संघर्ष में लगभग 10 वर्ष तक संलग्न रहा। किन्तु इस अभियान में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई, और काठियावाड़ गुप्त साम्राज्य का अंग बन गया। अंतिम ज्ञात कार्दमक क्षत्रप रुद्रसिंह III है, जो चन्द्रगुप्त II का समकालिक भी है। इससे ऐसा अनुमान लगाया गया है कि चन्द्रगुप्त प्प ने उसे ही पराजित किया होगा।

राधा कुमुद मुखर्जी का सुझाव है कि काठियावाड़ क्षेत्र पर अपनी विजय की स्मृति में चन्द्रगुप्त II ने सिंह-निहन्ता प्रकार की स्वर्ण मुद्राएं जारी कीं। इन मुद्राओं के अग्रभाग पर उसे सिंह का आखेट करते दिखाया गया है। यह पशु आज भी भारत में काठियावाड़ क्षेत्र में पाया जाता है।

चन्द्रगुप्त II की इस विजय से पूर्व गुप्त शासकों ने केवल स्वर्ण और ताम्र मुद्राएँ जारी की थीं। किन्तु नवविजित काठियावाड़ क्षेत्र में पिछले लगभग 300 वर्षों से शकों की रजत मुद्राएँ प्रचलित थीं, और वहाँ के निवासी उनके प्रयोग के अभ्यस्त थे। इस कारण चन्द्रगुप्त II ने काठियावाड़ क्षेत्र के लिए रजत मुद्राएँ निर्गत थी, जो कार्दमक रजत मुद्राओं से प्रभावित थीं।

चन्द्रगुप्त II की अन्य उपलब्धियों का अनुमान लगाने से पूर्व मेहरौली लौह स्तम्भ लेख पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। इस अभिलेख में चन्द्र नामक एक राजा की प्रशस्ति उसके मरणोपरांत दी गई है। लेख के अनुसार चन्द्र दिग्विजय पर निकला और उसने वंग में शत्रुओं को पराजित किया, और सिंधु के सात मुखों को पार कर वाजीकों पर विजय प्राप्त की। उसने अपनी भुजाओं के बल से पृथ्वी का राज्य प्राप्त किया, और दीर्घ अवधि तक शासन किया। दक्षिण समुद्र का जल उसकी शक्ति की वायु से सुगन्धित था। वह वैष्णव मतावलम्बी था। इस लेख में उल्लिखित चन्द्र की पहचान विवादास्पद है। विभिन्न विद्वानों ने उसकी पहचान चन्द्रवर्मन्, चन्द्रांश, सदाचन्द्र, और देवरक्षित जैसे राजाओं से करने का सुझाव दिया है, जिनके विषय में विस्तृत सूचना उपलब्ध नहीं है। चन्द्र की पहचान चन्द्रगुप्त मौर्य से करने के सुझाव को स्वीकार करने में सबसे बड़ी कठिनाइयाँ मेहरौली लेख की लिपि और चन्द्रगुप्त मौर्य का जैन धर्म की ओर झुकाव है। रमेश चन्द्र मजुमदार चन्द्र को 'चन्द्र' कनिष्क पहचानते हैं किन्तु कनिष्क की रुचि बौद्ध धर्म में होने के साक्ष्य उपलब्ध हैं। एस० के० आयंगर, जे० एफ० फ्लीट, और राधा गोविन्द बसाक जैसे विद्वान चन्द्र को चन्द्रगुप्त I मानते हैं। किन्तु चन्द्र का प्रभावक्षेत्र चन्द्रगुप्त I के प्रभावक्षेत्र से कहीं अधिक विस्तृत है। श्रीराम गोयल ने चन्द्र की पहचान समुद्रगुप्त से की है। किन्तु समुद्रगुप्त की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि, अश्वमेध के सम्पादन, का उल्लेख मेहरौली लेख में न मिलने से श्रीराम गोयल से सहमत होना कठिन है। अधिकांश विद्वान ए० एफ० आर० हर्नले के इस विचार से सहमति व्यक्त करते हैं कि मेहरौली लेख के 'चन्द्र' की पहचान चन्द्रगुप्त II से की जानी चाहिए। जिस प्रकार लेख में राजा का नाम चन्द्र बताया गया है, उसी प्रकार चन्द्रगुप्त II की कुछ ताम्र मुद्राओं पर लेख 'चन्द्र' प्राप्त होता है। चन्द्रगुप्त II ने रामगुप्त और काच से राज्य अपनी भुजा के बल पर प्राप्त किया था, और दीर्घकाल तक शासन किया था। चन्द्रगुप्त II की पुत्री, प्रभावतीगुप्ता, वाकाटक रानी थी, और पति की मृत्यु होने पर जब वह संरक्षिका के रूप में शासन संभाल रही थी, उस समय दक्षिण भारत के वाकाटक राज्य पर चन्द्रगुप्त II का पर्याप्त प्रभाव था। इसके अतिरिक्त तालगुण्ड अभिलेख की सूचना है कि एक कदम्ब राजकन्या का विवाह गुप्तवंश में हुआ था। चन्द्र वैष्णव मतावलम्बी था, और चन्द्रगुप्त II को मुद्रा-लेखों में 'परमभागवत' कहा गया है।

यदि चन्द्रगुप्त II से मेहरौली लेख के चन्द्र की पहचान सही मानी जाती है, तो चन्द्रगुप्त II ने वंग और वाह्लीक की विजय की होगी। वंग की पहचान समतट अर्थात् दक्षिणपूर्वी बंगाल से की गई है, और वाह्लीक की पहचान बल्ल्ख अर्थात् बैक्ट्रिया से। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है

कि समतट क्षेत्र पर, तथा परवर्ती कुषाणों पर गुप्तों का प्रभाव था। चन्द्रगुप्त II ने उन्हें गुप्तों के प्रत्यक्ष शासन के अंतर्गत लाने के लक्ष्य से वंग एवं वाह्लीक विजय की होगी। यह भी सम्भव है कि रामगुप्त/काच प्रकरण का लाभ उठाकर वे गुप्त प्रभाव से मुक्त हो गए हों, और उन्हें गुप्तों के प्रत्यक्ष शासन के अंतर्गत लाना चन्द्रगुप्त II का उत्तरदायित्व बन गया हो। वाह्लीक क्षेत्र पर चन्द्रगुप्त II के अधिकार का संकेत हुंजा से प्राप्त उन अभिलेखों से मिलता है जिनमें उस राजा का उल्लेख है। वंग पर चन्द्रगुप्त II की विजय सम्भवतः उसके शासनकाल के अंतिम वर्षों में हुई होगी। इसी कारण वह उस क्षेत्र में कोई अभिलेख जारी नहीं कर सका, और बंगाल से प्रथम ज्ञात गुप्त अभिलेख चन्द्रगुप्त पप् के पुत्र और उत्तराधिकारी, कुमारगुप्त I, के काल का है। किन्तु कुछ समय पूर्व बंगाल से चन्द्रगुप्त II की कुछ ताम्र मुद्राएं प्राप्त हुई हैं, जो उस क्षेत्र पर उसके अधिकार का संकेत करती हैं। इन मुद्राओं पर अश्व की आकृति और लेख 'श्री-विक्रम' अंकित है। इससे कुछ विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि चन्द्रगुप्त II ने भी अश्वमेध का सम्पादन किया था। किन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है।

## 1.6 सारांश

चन्द्रगुप्त I ने साम्राज्य की जो आधारशिला निर्मित की उसपर अपने सफल युद्धों के फलस्वरूप भारतीय नेपोलियन समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। डॉ० मजूमदार के अनुसार उसके साम्राज्य में "कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजपूताना, सिन्धु और गुजरात के अतिरिक्त शेष सारा भरत सम्मिलित था और छत्तीसगढ़ तथा उड़ीसा प्रदेश तथा पूर्वी तट के साथ साथ दक्षिण तक के प्रदेश साम्राज्य में सम्मिलित थे। इस प्रकार यह साम्राज्य छः सदियों पूर्व के अशोक के साम्राज्य के पश्चात् भारत में सबसे बड़ा था। समुद्रगुप्त ने जो विजय कार्य आरंभ किया, उसे चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सम्पूर्ण किया। साम्राज्य की रूप रेखा में उसने न केवल सीमावर्ती जातीय राज्यों तथा राजतन्त्रों को ही विलीन नहीं किया बल्कि शकों और कुषाणों के राज्यों को भी साथ मिला दिया। शान्तिमय और सुगठित विशाल साम्राज्य जो उसने अपने उत्तराधिकारी को सौंपा, यह एक महान् सेनानी और सुयोग्य राजनीतिज्ञ के ही नहीं, एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के प्रयत्नों का भी परिणाम था।

## 1.7 तकनीकी शब्दावली

महाराजाधिराज - महाराजाओं का भी राजा  
 महाक्षत्रप - शक शासकों की उपाधि  
 विक्रमादित्य - प्राचीन भारतीय शूरवीर शासकों द्वारा धारण की जाने वाली उपाधि, भारतीय इतिहास में कुल मिलाकर 14 शासकों द्वारा यह उपाधि धारण की गयी।

## 1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

- भाग 1.4 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.4 के प्रश्न 2 का उत्तर- असत्य  
 भाग 1.4 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.4 के प्रश्न 4 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.4 के प्रश्न 5 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.4 के प्रश्न 6 का उत्तर- असत्य

## 1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- अग्रवाल, अश्विनी, राइज एण्ड फॉल ऑव द इम्पीरियल गुप्ताज, दिल्ली, 1989.  
 अलतेकर, ए0 एस0, क्वाइनेज ऑव द गुप्त एम्पायर, वाराणसी, 1957. (हिन्दी संस्करण, गुप्तकालीन मुद्राएँ, उपलब्ध).  
 गुप्त, परमेश्वरीलाल, गुप्त साम्राज्य, 2 खण्ड, वाराणसी, 1991.  
 गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, 1984.  
 गोयल, श्रीराम, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, मेरठ, 1987.  
 फ्लीट, जे0 एफ0, भारतीय अभिलेख संग्रह, 3 (प्रारम्भिक गुप्त शासकों के अभिलेख), हिन्दी अनुवाद, जयपुर, 1974.

## 1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- मजुमदार, आर0 सी0, तथा ए0 डी0 पुसालकर (सं0), द क्लासिकल एज (द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव दि इण्डियन पीपल, 3), बॉम्बे, 1988. (हिन्दी संस्करण, श्रेण्ययुग, उपलब्ध).  
 मजुमदार, आर0 सी0, तथा ए0 एस0 अलतेकर (सं0), द वाकाटक-गुप्त एज, लाहौर, 1946. (हिन्दी संस्करण, वाकाटक-गुप्त युग, उपलब्ध).  
 राय, उदय नारायण, गुप्त राजवंश तथा उसका युग, इलाहाबाद, 1996.  
 सिंह, उपिन्दर, ए हिस्ट्री ऑफ एशियण्ट एण्ड अर्ली मेडीएवल इण्डिया, दिल्ली, 2009.

## 1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. समुद्रगुप्त के शासनकाल की प्रमुख उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
2. समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ अभियान और दक्षिण भारत में उसके मार्ग का वर्णन कीजिए।

---

## इकाई दो- गुप्तकाल में व्यापार तथा वाणिज्य

---

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 आन्तरिक व्यापार
  - 2.3.1 व्यापार के नियम
  - 2.3.2 व्यापार की सामग्री
  - 2.3.3 व्यापार के साधन
  - 2.3.4 मापतोल तथा मुद्राप्रणाली
- 2.4 बाह्य व्यापार
  - 2.4.1 पश्चिम के साथ व्यापार
  - 2.4.2 श्रीलंका के साथ व्यापार
  - 2.4.3 व्यापार सामग्री
- 2.5 सारांश
- 2.6 तकनीकी शब्दावली
- 2.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.10 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

मानव की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं होतीं, और इस कारण कच्चे माल और तैयार माल के एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानान्तरण और वितरण हेतु व्यापार और वाणिज्य आवश्यक हैं। भारत में सर्वप्रथम हड़प्पा युग में बड़े पैमाने पर व्यापार और वाणिज्य के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। वैदिक युग में भी व्यापार हो रहा था, किन्तु उसकी मात्रा घट गयी थी। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के आस-पास लोहे का बड़े पैमाने पर प्रयोग हुआ और मुद्रा पर आधारित अर्थव्यवस्था का आरम्भ हुआ। परिणामस्वरूप इस काल से व्यापारिक और वाणिज्यिक सक्रियता एक बार पुनः बढ़ गयी।

गुप्तकाल में भी व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति हुई, जिसके परिणामस्वरूप कुछ विद्वानों ने इसे भारतीय इतिहास का 'स्वर्ण युग' कहा, यद्यपि इसकी पृष्ठभूमि गुप्त युग से पहले कुषाण और कुषाणोत्तर कालों में ही तैयार हो गयी थी। गुप्तकाल में व्यापार और वाणिज्य के महत्व का अनुमान उस काल की स्मृतियों, कामन्दक के 'नीतिसार', 'महाभारत', 'पंचतन्त्र', तथा 'हितोपदेश' जैसे स्रोतों से लगाया जा सकता है।

उन्नत आन्तरिक व्यापार के अतिरिक्त उस काल में भारत के व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिम में ईरान, अरेबिया, सीरिया, रोम, यूनान, और मिस्र के साथ; उत्तर में चीन के साथ; तथा पूर्व में कम्बोडिया, स्याम, सुमात्रा, और मलाया द्वीपसमूह के साथ थे। श्रीलंका इन सभी दिशाओं में भारतीय व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। गुप्तकालीन व्यापार और वाणिज्य के विषय में गुप्तों और उनकी समकालीन शक्तियों के अभिलेखों और मुद्राओं जैसे पुरातात्विक स्रोतों; तथा याज्ञवल्क्य, कात्यायन, बृहस्पति और नारद की स्मृतियों; कालिदास, शूद्रक और अन्य लेखकों के कल्पनाप्रधान ग्रन्थों; 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश'; और फा-ह्यान तथा कॉस्मस जैसे विदेशी लेखकों के वृत्तान्त आदि से सूचना प्राप्त होती है।

## 2.2 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में आपको प्राचीन भारतीय इतिहास के विविध पक्षों की जानकारी दी गयी थी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। इस इकाई का उद्देश्य प्राचीन भारत में गुप्तवंशीय शासकों के काल में व्यापार एवं वाणिज्य की उपलब्धियां किस प्रकार रही, इससे संबंधित तथ्यों से आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

- गुप्तकाल में आन्तरिक व्यापार एवं तत्संबंधित तथ्य

- गुप्तकाल में बाह्य व्यापार एवं तत्संबंधित तथ्य

## 2.3 आन्तरिक व्यापार

गुप्तकाल में आन्तरिक व्यापार उन्नत दशा में था, जिसमें वैश्यों के अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, और यहाँ तक कि शूद्र भी सक्रियता से भाग लेते थे। गुप्तकाल में व्यापारियों के लिये 'क्रयिक', 'विक्रयिक', 'वणिक्', 'विपणि' आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। किन्तु उस काल में व्यापारियों के दो प्रमुख वर्ग 'श्रेष्ठिन्' और 'सार्थवाह' थे। इनमें से प्रथम धनी व्यापारी थे, जो ऋण के रूप में धन भी देते थे। इस कारण उन्हें व्यापारी-साहूकार कहा जा सकता है। वे उत्पादकों से अतिरिक्त उत्पाद प्राप्त करते थे, स्वदेशी और विदेशी बाजारों तक उनके वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे, और स्वयं लाभ कमाते थे। वे सामान्यतः श्रेणियों के महत्वपूर्ण सदस्य होते थे और अपने आर्थिक महत्व के कारण समाज में प्रतिष्ठित स्थान रखते थे। दामोदरपुर ताम्रपत्र लेखों से ज्ञात होता है कि नगर का प्रमुख व्यापारी-साहूकार 'अधिष्ठान' नामक उस परिषद का सदस्य होता था जो जिला प्रशासन में विषयपति की सहायता करती थी। 'मृच्छकटिकम्' से ऐसा संकेत मिलता है कि कभी-कभी राज्य की ओर से राज्य के सभी नगरों के लिए एक ही प्रमुख व्यापारी नियुक्त किया जा सकता था।

यद्यपि कालिदास जैसे लेखक इससे भिन्न सूचना देते हैं, तथापि यह भलीभांति विदित है कि गुप्तकाल में स्थल मार्गों पर दस्यु दलों का और जल मार्गों पर जलदस्युओं का भय रहता था। इसके अतिरिक्त वर्षा और तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाएँ और वनों में हिंसक जीव व्यापारियों के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते थे। इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से व्यापारी सामान्यतः बड़े समूहों में और सार्थवाह नामक अनुभवी कारवाँ व्यापारी के निर्देशन में यात्रा करते थे। इन यात्राओं में अनेक बार बड़े संकटों का सामना करना पड़ता था। किन्तु व्यापारिक यात्रा के सफल रहने पर सार्थवाहों को व्यापार में बड़े पैमाने पर लाभ भी प्राप्त होता था। कभी-कभी यह लाभ सौ गुना तक हो सकता था। नारद जैसे गुप्तयुगीन स्मृतिकारों ने इन व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिए अनेक नियम बनाए। दामोदरपुर ताम्रपत्र लेखों से ज्ञात है कि नगर-श्रेष्ठिन् के समान सार्थवाह भी जिला प्रशासन से सम्बन्धित 'अधिष्ठान' का सदस्य होता था।

'अमरकोष' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ग्रामीण स्तर पर बाजार होते थे, जिनका उपयोग एक से अधिक ग्राम के वासी करते थे। इन बाजारों में ग्रामवासी दैनिक उपयोग की वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे। अनेक बार ये बाजार अस्थायी होते थे और निश्चित दिनों पर लगते थे।

नगरों में नियमित और स्थायी बाजार होते थे, जिनके लिये कालिदास, अमरसिंह और शूद्रक जैसे लेखकों ने 'विपणि' शब्द का प्रयोग किया है। इन बाजारों में छोटी-बड़ी सड़कों के दोनों ओर बड़ी और माल से भरी दुकानें होती थीं। 'कुमारसम्भवम्' से ज्ञात होता है कि विशिष्ट अवसरों

पर बाज़ार की मुख्य सड़क, 'अपणमार्ग', को भलीभांति सुसज्जित किया जाता था। अयोध्या, आनन्दपुर, भीटा, भृगुकच्छ, चम्पा, दशपुर, कौशाम्बी, मथुरा, पाटलिपुत्र, राजघाट, शाकल, ताम्रलिप्ति, उज्जयिनी, वाराणसी, और विदिशा जैसे नगर गुप्तकाल में व्यापार और वाणिज्य के सक्रिय केन्द्र थे।

ऊपर हमने देखा कि नगरों के व्यापारी और वणिक ग्रामों से अतिरिक्त उत्पाद प्राप्त करते थे और उसे नगर और व्यापारिक केन्द्र तक ले जाते थे, जहाँ से कभी-कभी उसका निर्यात भी होता था। अनेक बार ये व्यापारी विभिन्न स्रोतों से व्यापारिक माल आयातित करते थे, और उसे नगर और ग्राम के बाज़ारों तक पहुँचाते थे। इस प्रकार व्यापारिक माल की प्राप्ति और उसके वितरण में ये व्यापारी और वणिक दोहरी भूमिका निभाते थे, और लाभ कमाते थे।

### 2.3.1 व्यापार के नियम

बाज़ार के महत्व को ध्यान में रखते हुए गुप्तकाल के धर्मशास्त्रकारों ने बाज़ार की गतिविधियों को नियमित करने के लिए विस्तृत नियम बनाए। क्रय-विक्रय और बिक्री हुई वस्तु की वापसी से सम्बन्धित अनेक नियमों की जानकारी प्राप्त होती है। यदि विक्रेता भावी क्रेता को दोषमुक्त वस्तु दिखाने के उपरान्त उसे दोषयुक्त वस्तु बेचता था, तो बृहस्पति और नारद के अनुसार वह दण्ड का भागी था। नारद व्यापारियों और वणिकों को कपटपूर्ण गतिविधियों के प्रति सावधान करता है। बृहस्पति और नारद, दोनों की यह धारणा थी कि अधिकांश व्यापारी बेईमान होते थे। इस कारण उन्होंने मिलावट के विरुद्ध कठोर नियम बनाए। खरीदी हुई वस्तु को बिना हानि पहुँचाए एक निश्चित अवधि के भीतर वापस किया जा सकता था। भावी क्रेता वस्तु का क्रय करने से पूर्व एक निश्चित अवधि तक उस वस्तु की स्वयं जाँच कर सकता था, अथवा किसी अन्य व्यक्ति से जाँच करवा सकता था। विभिन्न वस्तुओं के लिए जाँच की यह अवधि अलग-अलग थी। जाँच के बाद खरीदी गयी वस्तु को सामान्य परिस्थितियों में लौटाया नहीं जा सकता था। बृहस्पति और अमरसिंह विक्रयपत्र का उल्लेख करते हैं, जिसमें बेची गयी वस्तु का विवरण और उसका मूल्य अंकित किया जाता था।

बृहस्पति निर्देश देता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु का क्रय किसी बुद्धहीन व्यक्ति, अथवा मदहोश व्यक्ति, अथवा मूर्ख, अथवा किसी ऐसे व्यक्ति से करता है, जो उस वस्तु का स्वामी नहीं है, अथवा बहुत कम मूल्य पर करता है, अथवा बल-पूर्वक करता है, तो क्रेता को उस वस्तु को लौटा देना चाहिए। यदि वह वस्तु लौटने के लिए तैयार नहीं है, तो उसे बल-पूर्वक ऐसा करने के लिए बाध्य किया जा सकता था। यदि किसी वस्तु का विक्रय किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाए जो उसका स्वामी नहीं है, तो बृहस्पति और नारद, दोनों ऐसे क्रय-विक्रय को अमान्य घोषित करते हैं। नारद और विष्णु के अनुसार चोरी की वस्तु बेचने वाले को वह वस्तु उसके स्वामी को लौटा देनी

चाहिए, उसके मूल्य के रूप में ली गयी धनराशि क्रेता को लौटा देनी चाहिए, और राज्य को अर्थदण्ड के रूप में निर्धारित धनराशि चुकानी चाहिए। स्मृतिकारों के अनुसार गुप्त रूप से किया गया क्रय-विक्रय चोरी के समान है।

यह सामान्य धारणा है कि गुप्त काल में विभिन्न वस्तुओं के मूल्य राज्य द्वारा निर्धारित नहीं किये जाते थे। परिणामस्वरूप बाज़ार में मूल्य अस्थिर रहते थे और विभिन्न वस्तुओं की माँग और आपूर्ति के अनुपात में घटते-बढ़ते रहते थे। इससे व्यापारी कभी बहुत अधिक लाभ कमाते थे, और कभी उन्हें बहुत अधिक हानि होती थी। किन्तु याज्ञवल्क्य व्यापारियों को निर्देश देता है कि वे वस्तुओं का क्रय-विक्रय राजा द्वारा निर्धारित मूल्यों पर ही करें। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल में भी कम से कम कुछ व्यापारिक वस्तुओं का मूल्य राज्य द्वारा निर्धारित किया जाता था।

### 2.3.2 व्यापार की सामग्री

गुप्त काल के व्यापारी विलासिता की वस्तुओं और दैनिक उपयोग की वस्तुओं, दोनों का व्यापार करते थे। व्यापारिक वस्तुएँ विलक्षण भी थीं और सामान्य भी। इन वस्तुओं में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सोना, चांदी, तांबा, लोहा तथा टिन जैसी धातुएँ; पंजाब, हिमाचल प्रदेश, और समुद्रतटीय क्षेत्रों से प्राप्त नमक; मुख्य रूप से दक्षिण भारत, और सामान्य रूप से पूर्वोत्तर क्षेत्रों, बंगाल, और नेपाल से प्राप्त काली मिर्च और मसाले; कश्मीर से प्राप्त केसर, और दक्षिणी तथा अन्य क्षेत्रों से प्राप्त चंदन जैसे सुगंधित द्रव्य; दक्षिण भारत से प्राप्त मूंगा; पश्चिमोत्तर भारत के अश्व, और उड़ीसा, बिहार, और असम के हाथी; दुग्ध और दुग्ध उत्पाद, माँस, मछली, अनाज, तिल, मदिरा, शाक, और जड़ी-बूटी जैसे खाद्य पदार्थ; अस्त्र-शस्त्र और उपकरण; विभिन्न प्रकार के वस्त्र--रेशमी, सूती, क्षौम, और ऊनी; तथा लकड़ी, पशुचर्म, हाथी-दाँत, पशुओं की अस्थियाँ, मृद्भाण्ड, पात्र, जैसी सामान्य वस्तुएँ सम्मिलित थीं।

### 2.3.3 व्यापार के साधन

स्थल मार्गों पर व्यापारिक माल ढोने के लिए गुप्त काल के व्यापारी सामान्यतः बैलगाड़ी का उपयोग करते थे। 'बृहत्कल्पभाष्य' में उल्लेख मिलता है कि व्यापारिक माल ढोने के लिए ऊँटों और खच्चरों का प्रयोग भी किया जाता था। इस कार्य के लिए कभी-कभी किराए पर श्रमिक भी लगाए जाते थे। इस सबसे अनुमान लगाया जा सकता है कि व्यापारिक माल के वितरण की गति धीमी रही होगी। याज्ञवल्क्य और नारद जैसे स्मृतिकारों ने श्रमिक और व्यापारी, दोनों के हितों की रक्षा के लिए विस्तृत नियम निर्धारित किए, जिनके आधार पर व्यापारी माल ढोने के लिए श्रमिक किराए पर लगाते थे। नदियों और खाड़ियों के जल मार्गों से व्यापारिक माल का स्थानान्तरण अपेक्षाकृत कम व्यय पर किया जा सकता था। समुद्रतटीय क्षेत्र के निवासी, और कालिदास के अनुसार वंग जैसे

नदीय क्षेत्रों के निवासी, नौचालन में दक्ष होते थे। आन्तरिक जल मार्गों में विभिन्न आकार की नौकाएँ यातायात के सामान्य साधन थे।

### 2.3.4 मापतोल तथा मुद्राप्रणाली

साहित्यिक रचनाओं और अभिलेखों से 'कुल्यवाप' और 'द्रोणवाप' जैसी भूमि की मापों, और 'पल', 'आढक', 'प्रस्थ', और 'खारि' जैसे तोल के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु कुछ विद्वानों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि अन्य कालों के समान गुप्तकाल में भी माप और तोल के मानकों में स्थानीय विभिन्नताएँ रही होंगी। अमरसिंह 'तुला' का उल्लेख करता है, जिसका उपयोग व्यापारिक माल तोलने में किया जाता होगा।

गुप्त काल में आदान-प्रदान का मानक माध्यम सिक्के थे, और भारत में पहली बार स्वदेशी स्वर्ण मुद्राएँ बड़े पैमाने पर जारी की गयीं। आरम्भ में इनकी तोल लगभग 120 ग्रेन थी। किन्तु समय के साथ विभिन्न गुप्त राजाओं के कालों में सिक्के की तोल में वृद्धि हुई, और कुमारगुप्त II और विष्णुगुप्त जैसे बाद में राजाओं के काल में गुप्त स्वर्ण मुद्रा का भार लगभग 150 ग्रेन तक पहुँच गया। चन्द्रगुप्त प्लू सम्भवतः पहला गुप्त राजा था जिसने चाँदी के सिक्के जारी किए। ये गुप्त रजत मुद्राएँ कार्दमक रजत मुद्रा पर आधारित थीं, और इनका वजन लगभग 36 ग्रेन था। गुप्त ताम्र मुद्राओं की तोल में इतनी अधिक विभिन्नता मिली है कि इनके तोलमान का निर्धारण करना कठिन है। फा-ह्यान की सूचना से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में क्रय-विक्रय हेतु कौड़ियों का प्रयोग भी माध्यम के रूप में किया जाता था। 'अमरकोष' से साक्ष्य मिलता है कि गुप्तकाल में व्यापार हेतु कुछ पैमाने पर वस्तु विनिमय भी अस्तित्व में था।

#### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. दामोदरपुर ताम्रपत्र लेखों के अनुसार सार्थवाह भी नगर प्रशासन से सम्बन्धित 'अधिष्ठान' का सदस्य होता था(सत्य/असत्य)
2. बृहस्पति और नारद, दोनों की यह धारणा थी कि अधिकांश व्यापारी बेईमान होते थे(सत्य/असत्य)
3. अमरकोष' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ग्रामीण स्तर पर बाजार होते थे(सत्य/असत्य)
4. गुप्तकाल में माप और तोल के मानकों में स्थानीय विभिन्नताएँ नहीं थीं(सत्य/असत्य)
5. चन्द्रगुप्त II पहला गुप्त राजा नहीं था जिसने चाँदी के सिक्के जारी किए (सत्य/असत्य)
6. गुप्तकाल में क्रय-विक्रय हेतु कौड़ियों का प्रयोग भी माध्यम के रूप में नहीं किया जाता था(सत्य/असत्य)

## 2.4 बाह्य व्यापार

गुप्तकाल में भारत का बाह्य व्यापार जल मार्ग और स्थल मार्ग, दोनों के माध्यम से हो रहा था, यद्यपि इसके लिए जलमार्गों का प्रयोग अधिक प्रचलन में था। समुद्री यात्राओं में अधिक जोखिम रहता था, और इसमें आने वाले संकटों का विवरण चीनी बौद्ध यात्री, फा-ह्यान, तथा कालिदास और वराहमिहिर जैसे भारतीय लेखक, भलीभाँति प्रस्तुत करते हैं। इसलिए आश्चर्य नहीं है कि वे भारतीय व्यापारी, जो न केवल पश्चिमी देशों, अपितु दक्षिणपूर्वी एशिया, और चीन तक के साथ व्यापार में संलग्न थे, बड़े पैमाने पर लाभ कमाते थे। जल यातायात के सामान्य साधन विभिन्न आकारों के जलपोत और नौकाएँ थीं। ताम्रलिप्ति (तामलुक), शूर्पारक (सोपारा), प्रतिष्ठान (पैठन), भृगुकच्छ (भड़ौच), कावेरीपत्तनम्, सिंधु, ओराथा (गुजरात), कैलियाना (कल्याण), सिबोर (मुम्बई के निकट चौल), माले (मालाबार), मेंगारुथ (मंगलौर), सलोपताना, नलोपताना (नेल्सण्डा), और मंगलौर एवं कालीकट के मध्य पोन्दोपताना, कुछ महत्वपूर्ण भारतीय बन्दरगाह थे, जहाँ से व्यापारी अपने माल के साथ समुद्री यात्रा आरम्भ करते थे। पश्चिम और उत्तर के देशों के साथ कुछ भारतीय व्यापार स्थल मार्गों से भी हो रहा था, जो समुद्री मार्गों के समान जोखिम भरे थे। ये पथ कभी-कभी दुर्गम थे, और इन पर दस्युओं, और वनों में हिंसक पशुओं का भय रहता था। फिर भी गुप्तकाल में बाह्य व्यापार और वाणिज्य में उन्नति हुई।

### 2.4.1 पश्चिम के साथ व्यापार

ईसाई सम्बत् की आरम्भिक शताब्दियों में भारत और रोम के मध्य बड़े पैमाने पर व्यापार हो रहा था, जिसमें भारतीय मसालों की प्रमुख भूमिका थी। किन्तु रोमन साम्राज्य की अवनति, चौथी शताब्दी ईसवी के उत्तरार्द्ध में साम्राज्य के विभाजन, और पाँचवी शताब्दी ईसवी में उस पर होने वाले गॉथ और हूण आक्रमणों का इस व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। फिर भी भारत के विभिन्न भागों से चौथी, पाँचवी, और छठी शताब्दी ईसवी के बाइजैण्टाइन सिक्के प्राप्त हुए हैं। साथ ही विदेश से रोम पहुंचने वाली व्यापारिक वस्तुओं की जस्टिनियन द्वारा दी गयी सूची में भारत से आयातित अनेक वस्तुओं के उल्लेख मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि गुप्तकाल में भी भारत और बाइजैण्टियम के मध्य व्यापार हो रहा था। जस्टिनियन की सूची में भारत से आयातित व्यापारिक वस्तुओं में कालीमिर्च, दालचीनी, और सोंठ जैसे मसाले; रेशमी और सूती वस्त्र; हीरे, नीलम, और फ्रीरोजा जैसे बहुमूल्य पत्थर; तेंदुए जैसे विलक्षण पशु; तथा हाथीदाँत, लोहा, सुगन्धित द्रव्य आदि सम्मिलित हैं। रेशम का चीन के साथ निकट सम्बन्ध है। किन्तु इस बात के संकेत मिलते हैं कि भारत में उत्पादित रेशमी वस्त्र रोम और बाइजैण्टियम पहुँचता था। कुमारगुप्त प् और बन्धुवर्मन् के काल के मन्दसौर अभिलेख में रेशम के बुनकरों की एक श्रेणी का उल्लेख है। अभिलेख के अनुसार उस श्रेणी ने अपने बुने रेशमी वस्त्र से पूरी पृथ्वी को ढक दिया था। इससे प्रतीत होता है कि उसके द्वारा

उत्पादित रेशमी वस्त्र का निर्यात होता था। अभिलेख में बताया गया है कि स्त्रियों में इस श्रेणी द्वारा उत्पादित रेशमी वस्त्र इतना लोकप्रिय था कि सुन्दरियाँ जब तक उसे धारण नहीं कर लेती थीं, तब तक अपना शृंगार पूरा नहीं समझती थीं। भारत और रोम के मध्य होने वाले रेशम के व्यापार में ईरान के व्यापारी मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे, और इस व्यापार में बड़े पैमाने पर लाभ कमाते थे। जस्टिनियन और इथियोपिया के राजा, हेलीस्थियस, के मध्य एक समझौता हुआ था, जिसके अन्तर्गत इथियोपिया के व्यापारी भारतीय रेशमी वस्त्र प्राप्त करके उसे उचित लाभ पर बाइजैण्टियम भेजते। किन्तु ईरान के व्यापारियों द्वारा भारतीय रेशमी वस्त्र का पूरा-पूरा नौभार क्रय कर लेने के कारण इथियोपिया के व्यापारी भारतीय रेशमी वस्त्र प्राप्त कर पाने में असमर्थ रहे। अन्ततः बाइजैण्टियम ने स्वयं अपना रेशम उत्पादन आरम्भ कर दिया। इसमें कुछ ऐसे धर्म प्रचारकों ने उसकी सहायता की, जिन्होंने चीन में कुछ समय बिताया था, और वे रेशम उत्पादन का रहस्य जानते थे।

गुप्त काल में भारत का पश्चिम की ओर इथियोपिया के साथ व्यापारिक सम्पर्क था। कॉस्मस की सूचना से ज्ञात होता है कि इथियोपिया से मिस्र के पन्ने और इथियोपिया के हाथी, भारत द्वारा आयातित किये जाते थे। ये हाथी बड़े आकार के दाँतों वाले होते थे, और इसलिए भारत में इनकी मांग थी। भारत में अश्व वनयु से आते थे, जिसकी पहचान अरेबिया से की गयी है। ऊपर हमने देखा कि भारत और बाइजैण्टियम के मध्य होने वाले रेशम व्यापार में ईरान के व्यापारी मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे। इसके अतिरिक्त इस बात के साक्ष्य उपलब्ध हैं कि भारत से कालीमिर्च ईरान को निर्यात की जाती थी।

एस0 के0 मैती जैसे विद्वानों का विचार है कि गुप्तकाल में भारत और पश्चिमी देशों के मध्य होने वाले व्यापार को देखते हुए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त प् जैसे गुप्त सम्राटों ने पश्चिमी देशों से होने वाले भारतीय व्यापार के लिये महँवपूर्ण पश्चिमी समुद्र तट और उस पर स्थित बन्दरगाहों पर नियंत्रण स्थापित करने के लक्ष्य से पश्चिम की ओर अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार करने का प्रयास किया, और स्कन्दगुप्त ने हूणों से अपने साम्राज्य की पश्चिमी सीमा की रक्षा की समुचित व्यवस्था की।

### 2.4.2 श्रीलंका के साथ व्यापार

श्रीलंका भारत में सिंहलद्वीप के नाम से जाना जाता था। यह द्वीप पूर्व को पश्चिम से जोड़ने वाले जलमार्गों के मध्य स्थित था, जिसके परिणामस्वरूप यह अत्यन्त प्राचीन काल से विश्व व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। भारत के श्रीलंका के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे। कॉस्मस के अनुसार भारत से कालीमिर्च, लौंग, और दालचीनी जैसे मसाले; चन्दन और कस्तूरी जैसे सुगन्धित द्रव्य; भारतीय हाथी और ईरान के अश्व जैसे पशु; रेशमी और सूती वस्त्र; तथा तांबा, रेण्डी का तेल आदि पदार्थ श्रीलंका को निर्यात किए जाते थे। फा-ह्यान और वराहमिहिर के साक्ष्य से ज्ञात

होता है कि भारत द्वारा श्रीलंका से मोती आयातित किए जाते थे। कल्हण और 'तीर्थकल्प' की सूचना है कि श्रीलंका से वस्त्र भी भारत लाए जाते थे। कुछ मात्रा में चांदी भी श्रीलंका से भारत पहुँचती थी। भारत और श्रीलंका के मध्य होने वाले व्यापार में ताम्रलिप्ति की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

गुप्तकाल में भारत के चीन और दक्षिणपूर्वी एशिया के देशों के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस व्यापार हेतु अधिकांशतः समुद्री मार्ग का प्रयोग किया जाता था, यद्यपि चीनी बौद्ध तीर्थयात्रियों और चीन से भारत भेजे गये राजदूतों के वृत्तान्तों से स्पष्ट है कि समुद्री यात्रा संकटों से परिपूर्ण थी। चीन के व्यापारिक जलपोत ईरान, अरेबिया, और इनके भी आगे पश्चिमी देशों की यात्रा के समय भारत और श्रीलंका के बन्दरगाहों पर रुकते थे, और व्यापार करते थे।

### 2.4.3 व्यापार सामग्री

'सुंग-चू' से ज्ञात होता है कि भारत से गैंडे की सींग से बनी वस्तुएँ, कोडिल्ला पत्थर, और एस्बेस्टस का कपड़ा, जैसी विलक्षण वस्तुएँ चीन भेजी जाती थीं। इसके अतिरिक्त चीनी स्रोतों से ज्ञात होता है कि केसर और चन्दन जैसे सुगन्धित द्रव्य, और कालीमिर्च जैसे मसाले, भारत से चीन के अतिरिक्त तिब्बत, कम्बोडिया, स्याम, जावा, सुमात्रा, इण्डोनेशिया, बाली, बोर्नियो, मलाया द्वीपसमूह, तथा अन्य देशों को भी निर्यात किए जाते थे।

चीन प्राचीन काल से ही अपने रेशमी वस्त्र के कारण विश्व में प्रसिद्ध रहा है, और कॉस्मस के अनुसार चीन को 'रेशम की भूमि' कहा जाता था। अन्य क्षेत्रों के समान भारत में भी चीन के रेशमी वस्त्र (चीनाशुक) की अत्यधिक माँग थी, विशेष रूप से सम्भ्रान्त वर्ग में। भारत में चीन की मुद्राएँ, और रेशम के अतिरिक्त अन्य चीनी उत्पाद, बहुत कम प्राप्त हुए हैं। इसके आधार पर यह सुझाव दिया गया है कि सम्भवतः भारत और चीन के मध्य होने वाले व्यापार में वस्तुविनिमय की महत्वपूर्ण भूमिका थी। भारतीय व्यापारी अपने उत्पादों के बदले चीनी व्यापारियों से मुख्य रूप से चीनी रेशमी वस्त्र प्राप्त करते थे। चीन तथा दक्षिणपूर्वी एशिया के देशों के साथ होने वाला अधिकांश भारतीय व्यापार समुद्री मार्ग से होता था, जिसमें भारत के पूर्वी तट के बन्दरगाहों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। सम्भव है कि इन देशों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध ही चीन तथा दक्षिणपूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के मुख्य कारक रहे हों।

## 2.5 सारांश

गुप्तकाल की चतुर्दिक उन्नति के पीछे वस्तुतः उस काल की आर्थिक समृद्धता थी। बाह्य एवं आंतरिक व्यापार फलफूल रहा था तथा वाणिज्य एवं उद्योग धन्धों की अधिकता थी। उपरोक्त अध्ययन से हमें यह भी पता चला कि व्यापार संगठित था और माप-तौल के साधनों के साथ ही मुद्रा प्रणाली भी पर्याप्त विकसित थीं। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे गुप्त सम्राटों ने पश्चिमी देशों

से होने वाले भारतीय व्यापार के लिये महत्वपूर्ण पश्चिमी समुद्र तट और उस पर स्थित बन्दरगाहों पर नियंत्रण स्थापित करने के लक्ष्य से पश्चिम की ओर अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार करने का प्रयास किया, और स्कन्दगुप्त ने हूणों से अपने साम्राज्य की पश्चिमी सीमा की रक्षा की समुचित व्यवस्था की।

---

## 2.6 तकनीकी शब्दावली

---

श्रेष्ठिन् - प्रथम धनी व्यापारी

सार्थवाह - व्यापारियों के कारवें का मुखिया

बन्दरगाह - पानी के जहाजों के ठहरने का स्थान

---

## 2.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

---

भाग 1.3 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य

भाग 1.3 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य

भाग 1.3 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य

भाग 1.3 के प्रश्न 4 का उत्तर- असत्य

भाग 1.4 के प्रश्न 5 का उत्तर- असत्य

भाग 1.4 के प्रश्न 6 का उत्तर- असत्य

---

## 2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

1. अल्लेकर, ए0 एस0, क्वाइनेज ऑव द गुप्त एम्पायर, वाराणसी, 1957 (हिन्दी संस्करण, गुप्तकालीन मुद्राएँ, उपलब्ध).
2. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 1991.
3. थपलियाल, के0 के0, गिल्ड्स इन एंशियण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1996.
4. पाठक, विशुद्धानन्द, प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास, लखनऊ, 2004.

---

## 2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

1. बाजपेयी, कृष्ण दत्त , भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, 1951.
2. मिश्र, श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, इलाहाबाद, 1997.
3. मैती, एस0 के0, इकोनॉमिक लाइफ़ इन द गुप्त पीरियड, दिल्ली, 1970.

---

4. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पटना, 1953.

5. सिंह, उपिन्दर, ए हिस्टरी ऑव एंशियण्ट एण्ड अर्ली मिडीएवल इण्डिया, दिल्ली, 2009.

---

## 2.10 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. गुप्तकालीन व्यापार एवं वाणिज्य के स्रोतों पर प्रकाश डालिए।
2. गुप्तकालीन आन्तरिक व्यापार का वर्णन कीजिए।
3. गुप्तकालीन बाह्य व्यापार के विषय में आप क्या जानते हैं?
4. गुप्तकालीन व्यापारिक वस्तुओं पर एक निबन्ध लिखिए।
5. गुप्तकालीन व्यापार एवं वाणिज्य में आदान-प्रदान के माध्यम, और यातायात के साधनों की विवेचना कीजिए।

---

## इकाई तीन- गुप्तकालीन एवं हर्षकालीन सांस्कृतिक जीवन

---

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 गुप्तकालीन सांस्कृतिक जीवन
  - 3.3.1 शिक्षा
  - 3.3.2 विज्ञान एवं ज्योतिष
  - 3.3.3 गणित
  - 3.3.4 आयुर्वेद
  - 3.3.5 रसायन शास्त्र
- 3.4 साहित्य
  - 3.4.1 काव्य
  - 3.4.2 नाटक
  - 3.4.3 कथा
  - 3.4.4 अन्य साहित्य
- 3.5 कला
  - 3.5.1 वास्तुकला
  - 3.5.2 मूर्तिकला
  - 3.5.3 चित्रकला
- 3.6 हर्षकालीन सांस्कृतिक उपलब्धियां
  - 3.6.1 कन्नौज की धर्म परिषद
  - 3.6.2 प्रयाग का पंचवर्षीय दानोत्सव (मोक्ष-परिषद्)
  - 3.6.3 जनहितकारी कार्य
  - 3.6.4 विद्या व्यसनी एवं विद्वानों का आश्रयदाता
- 3.7 सारांश
- 3.8 तकनीकी शब्दावली
- 3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 3.12 निबंधात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में अपने सांस्कृतिक महत्व के कारण ही गुप्तकाल की तुलना पेरिक्लियन, ऑगस्टन और एलिजबेथन कालों से की गयी है। सांस्कृतिक दृष्टि से गुप्तकाल में शिक्षा, साहित्य, विज्ञान और कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की गयीं।

इस काल में महान् लेखक , कवि ,नाटककार , दार्शनिक , एवं विधिवेत्ता हुए जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में उच्चकोटि के मानदण्ड स्थापित किये और आगे आने वाले समय में इन मानदण्डों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता रहा। कला तथा स्थापत्य का भारतीयकरण हुआ और उनमें विदेशी तत्वों की पूर्णतः समाप्ति हुई। स्थापत्यकला की नवीन शैलियां विकसित हुई और

मूर्तिकला तथा चित्रकला का अत्यधिक विकास हुआ। गुप्तकाल की अनेक प्रवृत्तियां हर्ष के काल में भी दिखाई देती हैं विशेषकर साहित्य के क्षेत्र में इस काल में अत्यधिक चेतना दिखाई देती है। प्राचीन भारत की इस विरासत के विविध पहलुओं का हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

### 3.2 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में आपको गुप्तकालीन इतिहास के विविध पक्षों की जानकारी दी गयी थी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। इस इकाई का उद्देश्य गुप्तकालीन एवं हर्षकालीन सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों से संबंधित तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

- गुप्तकालीन शिक्षा ,विज्ञान ,ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, रसायन शास्त्र
- गुप्तकालीन साहित्य, काव्य, नाटक, कथा, अन्य साहित्य
- गुप्तकालीन वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला
- हर्षकालीन सांस्कृतिक उपलब्धियां

### 3.3 गुप्तकालीन सांस्कृतिक जीवन

गुप्तकालीन सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-

#### 3.3.1 शिक्षा

शिक्षा की दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण है, इसी युग में महान् नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और बुद्धगुप्त आदि ने उसके विकास में प्रोत्साहन दिया। वेदों की शिक्षा के साथ ही

पुराण, स्मृति, तर्क, दर्शन, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष आदि शिक्षा के प्रमुख अंग थे। शैक्षिक विकास में श्रेणी, नियम आदि ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस काल में बनारस, बल्लभी, नासिक आदि में भी विश्वविद्यालय थे। शैक्षिक विकास के कारण ही हमें इस काल में विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण विकास दिखाई देता है।

### 3.3.2 विज्ञान एवं ज्योतिष

ज्योतिष के क्षेत्र में इस काल का प्रमुख विद्वान आर्यभट्ट था। उसने यह सिद्ध किया कि पृथ्वी अपनी धुरी में घूमती है। उसकी प्रसिद्ध रचना 'आर्यभट्टीयम्' थी। इस काल का दूसरा गणितज्ञ तथा ज्योतिषी वाराहमिहिर था। वह धातु-विज्ञान का पण्डित था। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'वृहत संहिता' है इसमें उसने ज्योतिष तथा वनस्पति विज्ञान का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त उसने लघुजातक, वृहज्जातक तथा पंचसिद्धान्तिका की भी रचना की।

### 3.3.3 गणित

इस काल में गणित के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। दशमलव प्रणाली का प्रचार इसी समय हुआ। आर्यभट्ट का 'आर्यभट्टीयम्' अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। आर्यभट्ट ने पाइ का मान निकाला और वर्गमूल तथा घनमूल निकालने की विधि प्रतिपादित की।

### 3.3.4 आयुर्वेद

आयुर्वेद का इस काल में अत्यधिक विकास हुआ। इसी समय रस-चिकित्सा का प्रारंभ हुआ। चरक तथा सुश्रुत इस काल के प्रसिद्ध चिकित्सक थे। पशु-चिकित्सा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य हुआ और पलकाप्व ने 'हस्तायुर्वेद' की रचना की। धन्वतरि इस काल का श्रेष्ठ चिकित्सक था। इस काल में चीर-फाड़ का विज्ञान भी विकसित हुआ। श्रेष्ठान्ग संग्रह, सुश्रुत संहिता, चरक संहिता आदि इस काल के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

### 3.3.5 रसायन शास्त्र

रसायन के क्षेत्र में भी विशिष्टता प्राप्त हुयी थी, यद्यपि इस सम्बन्ध में निश्चित प्रमाण नहीं है। तथापि महरौली का लौह-स्तंभ तथा भागलपुर जिले से प्राप्त साढ़े सात फीट ऊँची बुद्ध की ताम्र मूर्ति इस काल की धातु-विज्ञान की उन्नति की परिचायक है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

- 1- गुप्तयुग में महान् नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी सत्य/असत्य
- 2- आर्यभट्ट की प्रसिद्ध पुस्तक 'वृहत् संहिता' है सत्य/असत्य
- 3- गुप्तयुग में पलकाप्व ने 'हस्तायुर्वेद' की रचना की सत्य/असत्य
- 4- महरौली का लौह-स्तंभ इस काल की धातु-विज्ञान की उन्नति के परिचायक है सत्य/असत्य

### 3.4 साहित्य

किसी युग को महान् बनाने में उस काल के साहित्य का महत्वपूर्ण हाथ होता है। गुप्त काल की महानता का अधिकांश श्रेय भी इस काल के साहित्य को ही जाता है।

#### 3.4.1 काव्य

इस काल के कवियों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है, प्रथम वे जिनके बारे में केवल अभिलेखीय ज्ञान है, इस श्रेणी में हरिषेण, वीरसेन तथा वत्सभट्ट उल्लेखनीय हैं। दूसरे वर्ग में वे कवि आते हैं जिनके ग्रंथ हमें प्राप्त हैं। इनमें कालिदास एवं भारवि प्रमुख थे। कालिदास की प्रमुख कृतियां कुमारसंभवम्, मेघदूतम्, रघुवंशम् आदि हैं। भारवि ने किरातार्जुनीयम् की रचना की। भट्टी ने 'भट्टिकाव्य' लिखा। प्रसिद्ध कवि मातृगुप्त काश्मीर के सम्राट थे।

#### 3.4.2 नाटक

इस काल में संस्कृत के तीन महान् नाटककार हुए-कालिदास, शूद्रक और विशाखदत्त। कालिदास ने तीन नाटक लिखे- मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् और अभिज्ञानशाकुन्तलम्। शूद्रक ने मृच्छकटिकम् की रचना की कुछ विद्वान् मुद्राराक्षस और वीरचन्द्रगुप्तम् के रचयिता विशाखदत्त को भी गुप्तकाल का मानते हैं।

#### 3.4.3 कथा

इस काल में विष्णुशर्मा ने पंचतन्त्र की रचना की और हितोपदेश भी इसी काल में रचा गया। 'वासवदत्तानाल्यधारा' के लेखक सुबन्धु भी इसी काल में हुए थे।

#### 3.4.4 अन्य साहित्य

गुप्त काल में चन्द्रगोमिन ने 'चन्द्रव्याकरण', अमरसिंह ने 'अमरकोश', दण्डी ने 'काव्यादर्श' की रचना की। इसी समय महाभारत, याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यायन और वृहस्पति स्मृतियों के नवीन संस्करण निकाले गये। ईश्वरकृष्ण ने 'सांख्यकारिका', दिगनाथ ने 'प्रमाण

समुच्चय', बुद्धघोष ने विशुद्ध मार्ग' आदि का प्रणयन किया। इसी समय भामह का 'काव्यालंकार' कामन्दक का 'नीतिशास्त्र' तथा वात्सायन का 'कामसूत्र' लिखे गये।

स्पष्ट है कि विशाल एवं श्रेष्ठ साहित्य के कारण ही गुप्तकाल की तुलना यूनान के पेरीक्लियन युग, इंग्लैण्ड के एलिजबेथियन युग और चीन के तुंग काल से की जाती है।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- 1- गुप्तकाल में .....ने किरातार्जुनीयम् की रचना की।
- 2- कुछ विद्वान मुद्राराक्षस और वीरचन्द्रगुप्तम् के रचयिता .....को भी गुप्तकाल का मानते हैं।
- 3- गुप्तकाल में .....ने पंचतन्त्र की रचना की।

## 3.5 कला

गुप्तकालीन कला का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

### 3.5.1 वास्तुकला

कुछ स्तूप और मन्दिर इस काल की वास्तुकला के उदाहरण हैं। इस काल के मन्दिरों को ऊँचे चबूतरे में निर्मित किया जाता था जिसके चारों ओर सीढियाँ होती थीं। प्रारंभ में मन्दिरों की छतें चपटी होती थीं। गर्भ गृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ बनाये जाते थे, जो ऊपर से ढखे रहते थे। मन्दिरों की छत चार स्तंभों पर टिकी रहती थी। स्तंभों के ऊपर वर्गाकार पत्थर का एक टुकड़ा रखा रहता था। प्रत्येक पत्थर पर सामान्यतः चार-चार सिंह एक दूसरे से पीठ सटाये हुए दिखाये जाते थे। इस काल में ईंट तथा पत्थर दोनों के ही मन्दिर बनाये गये। मन्दिरों में अलंकरण हेतु व्याल, गंगा-यमुना, कीर्तिमुख, पुष्पपत्र, गवाक्ष आदि की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की जाती थीं। इस काल की वास्तु कला के दर्शन- भूभरा के शिव मन्दिर, देवगढ के दशावतार मन्दिर, भीतरगांव का मन्दिर, टिबुआ का बिष्णु मन्दिर, नचना का पार्वती मन्दिर, धमेख स्तूप, अजन्ता की गुफाओं (16,17,19) तथा उदयगिरी की गुफाओं में होते हैं।

### 3.5.2 मूर्तिकला

यह काल मूर्तिकला के चर्मोत्कर्ष का काल था। कुषाण काल में जन्म लेने वाली विभिन्न शैलियों का विस्तृत रूप इस काल में दिखाई देता है। गुप्तकाल में मूर्ति-निर्माण के तीन केन्द्र थे- पाटलिपुत्र, सारनाथ और मथुरा। इस काल में पाषाण, धातु और मिट्टी की मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। गुप्त

युग में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित, पौराणिक जैन मूर्तियां और धर्मनिरपेक्ष मूर्तियों बनायीं गयीं। इन मूर्तियों में भद्रता, आध्यात्मिकता, सरलता, अनुपातशीलता, तथा सौन्दर्यप्रियता दिखाई देती है। भारतीयकरण इन मूर्तियों की एक अन्य विशेषता है। प्रमुख मूर्तियों में- सारनाथ की बुद्ध मूर्ति, सुलतानगंज की बुद्ध मूर्ति, मथुरा की खडी बुद्ध मूर्ति, देवगढ की विष्णुमूर्ति, उदयगिरि की बाराहअवतार की मूर्ति, मथुरा की विष्णु मूर्ति, काशी की कार्तिकेय मूर्ति, कौशाम्बी की सूर्य-मूर्ति हैं।

### 3.5.3 चित्रकला

गुप्त काल में फ्रेस्को और टेम्परा दोनों ही प्रणालियों का विकास हुआ। चित्रकला के अंग के रूप में रूप-भेद, प्रभाण, भाव, लावण्य-योजना, सादृश्य तथा वर्णिक भेद का विधान मिलता है। गुप्त काल की चित्रकला में कलाकार का नाम अज्ञात है, रेखा प्रधानता, प्राचीरांकन, असाम्प्रदायिकता, अभिव्यक्ति प्रधानता तथा सौन्दर्य बोध के दर्शन होते हैं। इस काल की चित्रकला की उत्कृष्टता का पता अजन्ता, एलोरा, बाघ तथा श्रीलंका से प्राप्त चित्रों में होता है। अजन्ता के चित्रों में मरती हुई राजकुमारी, माता और पुत्र तथा बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के चित्र विशेष दर्शनीय है।

इसके अतिरिक्त मुद्रा, धातु-विज्ञान, संगीत, नृत्य तथा अभिनय के क्षेत्र में भी गुप्त काल में महत्वपूर्ण अभिवृद्धि हुई। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कृतिक दृष्टि से गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल था।

## 3.6 हर्षकालीन सांस्कृतिक उपलब्धियां

हर्ष ने उत्तरी भारत में सैनिक विजय एवं राजनीतिक प्रभाव स्थापित करने के पश्चात सांस्कृतिक विजय का अभियान प्रारंभ किया, जिसका आखों देखा वर्णन चीनी यात्री व्हेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में तो अंकित किया ही साथ ही इसका विशद वर्णन उसके जीवन वृत्त के लेखक हुई ली ने उसकी जीवनी में भी किया है।

### 3.6.1 कन्नौज की धर्म परिषद

643 ई0 में हर्ष ने कन्नौज में एक धर्म परिषद का आयोजन किया। इस धर्म परिषद का उद्देश्य बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के न केवल हीनयान के सिद्धान्तों से श्रेष्ठतर सिद्ध करना था। वरन् भारत के तत्कालीन अन्य धर्मों में भी उसे सर्वोच्च स्थान प्रदान करना था। धर्म परिषद समारोह का प्रारंभ बुद्ध की मूर्ति की एक विशाल शोभा यात्रा के साथ हुआ। धर्म परिषद का अध्यक्ष पद व्हेनसांग को दिया गया जिसने महायान की प्रशंसा में एक भाषण दिया और वाद विवाद का षिष्य निर्धारित किया। प्रतीत होता है कि वाद विवाद के लिए विरोधियों को आमंत्रित तो किया गया, परन्तु विवाद की शर्तें न्यायसंगत न थीं राजा इस बात के लिए कृत संकल्प था कि उसका

कृपापात्र शास्त्रार्थ में पराजित ना हो पाये। हर्ष द्वारा महायान का पक्ष लेने के कारण इस धर्म परिषद में षडयन्त्र भी रचा गया, सी-यू-की इस षडयंत्र को सम्राट के विरुद्ध और जीवनी व्हेनसांग के विरुद्ध बतलाती है। इस धर्म परिषद की कार्यवाही इक्कीस या तेईस दिन चली थी।

### 3.6.2 प्रयाग का पंचवर्षीय दानोत्सव (मोक्ष-परिषद्)

हर्ष के शासन का दूसरा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्य प्रयाग के पंचवर्षीय दानोत्सव (मोक्ष-परिषद्) का आयोजन था। व्हेनसांग ने हर्ष के इस छोटे पंचवर्षीय दानोत्सव का वर्णन किया है। यह आयोजन तीर्थराज प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम में किया गया था, तथा इस परिषद में हर्ष तथा व्हेनसांग के अठारह राजसी मित्रों के अलावा लगभग 500000 व्यक्तियों ने भाग लिया। 75 दिनों तक चलने वाली इस परिषद में हर्ष ने पांच वर्ष का संचित सभी धन दान में दे दिया, घोड़ों, हाथियों और सैनिक उपकरण के अतिरिक्त जो रक्षा तथा व्यवस्था के लिए आवश्यक थे शेष कुछ भी न बचा। हर्ष ने स्वयं राज्य श्री से पुराने वस्त्र मांगकर दस दिशाओं के बुद्धों की पूजा की। हर्ष द्वारा आयोजित यह पचहत्तर दिवसीय दानोत्सव इतिहास में अपने ढंग का बेजोड कार्य है। हमें किसी राजा का ज्ञान नहीं जिसके मानवता का कष्ट निवारण के लिए सर्वस्व दान दिया हो।

### 3.6.3 जनहितकारी कार्य

हर्ष ने जनहितकारी कार्यों में भी विशेष रूचि ली और प्रजा के भौतिक उत्थान तथा सांस्कृतिक विकास में हाथ बंटाय। उसने सम्राट अशोक के आदर्श पर यात्रियों, निर्धनों तथा रोगियों के हित के लिए सारे साम्राज्य में अनेक परोपकारी संस्थाएँ स्थापित कीं। शहरों और देहातों में धर्मशालायें बनवाई गयी, खाद्य एवं पेय वस्तुओं तथा बिना किसी बन्धन के बीमारों की सेवा के लिए वैद्य की व्यवस्था की। हर्ष सही अर्थ में राजा था और प्रजा का रंजन ही उसके जीवन का प्रमुख लक्ष्य बन गया था।

### 3.6.4 विद्या व्यसनी एवं विद्वानों का आश्रयदाता

हर्ष महान विद्या व्यसनी एवं विद्वानों का आश्रयदाता भी था। बाण ने अपने आश्रयदाता के साहित्य प्रेम का विशद् वर्णन किया है। हर्ष के दरबारी कवियों में सर्वश्रेष्ठ महाकवि बाण था, जिसने “हर्षचरित” एवं “कादम्बरी” की रचना की, उसे “चण्डी शतक” का रचयिता भी माना जाता है। अन्य कवियों में मयूर एवं मातंग दिवाकर का नाम प्रमुख है। मयूर ने मयूर शतक और सूर्य शतक की रचना की। बाण का पुत्र भूषण भट्ट भी हर्ष के दरबार का एक अन्य रत्न था, उसने अपने पिता की मृत्यु के बाद “कादम्बरी” को पूरा किया। अभिलेखीय साक्ष्य से ज्ञात होता है कि हर्ष ने हरिदत्त नामक एक विद्वान को सम्मानित किया था। वस्तुतः विद्या एवं विद्वानों के प्रति हर्ष का प्रेम एवं सम्मान इससे भी स्पष्ट होता है कि वह राजकीय आय का चतुर्थ भाग विद्वानों को सम्मानित करने में

व्यय करता था। विद्या के क्षेत्र में उसकी दानशीलता का दूसरा उदाहरण नालन्दा विश्वविद्यालय हैं, जहाँ न केवल निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी, वरन् वहाँ के समस्त निवासियों के लिए निःशुल्क भोजन, वस्त्र, आवास एवं चिकित्सा आदि की व्यवस्था भी थी। व्हेनसांग के अनुसार देश के राजा ने उस विश्वविद्यालय के व्यय के लिए सौ गांवों का राजस्व दान में दे रखा था। स्पष्टतः यह राजा हर्ष ही था। जयदेव ने अपने ग्रन्थ “प्रसन्नराघव” में महाकवि भास एवं कालिदास के साथ ही हर्ष को भी पूर्ववर्ती महान् कवियों में स्थान दिया है। साधारणतः हर्ष को, “प्रियदर्शिका, रत्नावली एवं नागानन्द का प्रणेता स्वीकार किया जाता है। साथ ही सुप्रभातस्तोत्रम् तथा अष्टमहाभिचैत्यसंस्कृतस्तोत्रम् की रचना का श्रेय भी हर्ष को दिया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार मधुबन एवं बांसखेडा के ताम्रपत्र भी हर्ष द्वारा लिखित थे। अतः कहा जा सकता है कि हर्ष विद्वानों का आश्रयदाता ही नहीं वरन् स्वयं भी विद्वान था।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

- 1- 543 ई० में हर्ष ने कन्नौज में एक धर्म परिषद का आयोजन किया था
- 2- व्हेनसांग ने हर्ष के छठे पंचवर्षीय दानोत्सव का वर्णन किया है
- 3- हर्ष ने “हर्षचरित” एवं “कादम्बरी” की रचना की थी

## 3.7 सारांश

गुप्तकाल शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, इस काल में बनारस, बल्लभी, नासिक आदि में भी विश्वविद्यालय थे। शैक्षिक विकास के कारण ही हमें इस काल में विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण विकास दिखाई देता है। विशाल एवं श्रेष्ठ साहित्य के कारण ही गुप्तकाल की तुलना यूनान के पेरीक्लीयन युग, इंग्लैण्ड के एलिजबेथियन युग और चीन के तुंग काल से की जाती रही है। इस काल की कला में भद्रता, आध्यात्मिकता, सरलता, अनुपातशीलता, तथा सौन्दर्यप्रियता दिखाई देती है। भारतीयकरण इस काल की कला की एक अन्य विशेषता है। हर्ष ने भी यह सांस्कृतिक प्रयास जारी रखा, प्रजा का रंजन ही उसके जीवन का प्रमुख लक्ष्य बन गया था। हर्ष विद्वानों का आश्रयदाता ही नहीं वरन् स्वयं भी विद्वान था। उसकी दानशीलता भी प्रसिद्ध थी, हमें किसी राजा का ज्ञान नहीं जिसके मानवता का कष्ट निवारण के लिए सर्वस्व दान दिया हो। गुप्तकालीन एवं हर्षकालीन सांस्कृतिक जीवन के उपरोक्त विविध पक्षों से संबंधित तथ्यों से अवगत होने के उपरांत हम कह सकते हैं कि गुप्तकाल एवं हर्ष के काल में भारत का सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक विकास हुआ था।

---

### 3.8 तकनीकी शब्दावली

---

हस्तायुर्वेद - हाथी की चिकित्सा से संबंधित वेद  
अभिलेखीय ज्ञान - जिनका उल्लेख केवल अभिलेखों में हो  
प्राचीरांकन - दीवारों में अंकन  
सी-यू-की - व्हेनसांग के मित्र हई ली द्वारा लिखित पुस्तक  
दानोत्सव - दान से संबंधित उत्सव  
महायान - बौद्ध धर्म का एक संप्रदाय

---

### 3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

---

भाग 3.3 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य  
भाग 3.3 के प्रश्न 2 का उत्तर- असत्य  
भाग 3.3 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य  
भाग 3.3 के प्रश्न 4 का उत्तर- सत्य  
भाग 3.4 के प्रश्न 1 का उत्तर- भारवि  
भाग 3.4 के प्रश्न 2 का उत्तर- विशाखादत्त  
भाग 3.4 के प्रश्न 3 का उत्तर- विष्णुशर्मा  
भाग 3.6 के प्रश्न 1 का उत्तर- असत्य  
भाग 3.6 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य  
भाग 3.6 के प्रश्न 3 का उत्तर- असत्य

---

### 3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

Banerji, R.D. : The Age of Imperial Guptas, Varanasi, Banaras Hindu University.  
Basham, A.L. : The Origin and Development of Classical, Hinduism, new Delhi,  
Majumdar, R.C.: Age of Imperial Kanauj, Bombay, Bhartiya Vidya Bhawan 1955  
Sharma, Baijnath ; Harsha and His Times, Varanasi, Sushama Prakashan.  
Tripathi, R.S. : History of Kanauj, Delhi, Motilal, Banarasidas, 1964.

---

### 3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

Jain, K.C. : Kalidas and his times, Delhi, Agam Kala Prakashan, 1990

---

Majumdar, R.C. and A.S. Altekar(ed): The Vakataka-Gupta Age ,Delhi, Motilal Banarasidas, Delhi, 1946

Majumdar , R.C.: Age of Imperial Kanauj, Bombay, Bhartiya Vidya Bhawan 1955

Sharma, Baijnath ; Harsha and His Times, Varanasi, Sushama Prakashan.

Tripathi, R.S. : History of Kanauj, Delhi, Motilal, Banarasidas, 1964.

---

### 3.12 निबंधात्मक प्रश्न

---

- 1- गुप्तकालीन संस्कृति पर एक निबंध लिखिए।
- 2- हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियों की चर्चा कीजिए।

---

## इकाई चार-प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति तथा उनके अधिकार

---

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति
- 4.4 स्त्रीधन
- 4.5 स्त्री का सम्पत्ति का अधिकार
- 4.6 सारांश
- 4.7 तकनीकी शब्दावली
- 4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। उनकी अवस्था पुरुषों के सदृश थी। वे अपना मनोनुकूल आत्मविकास और उत्थान कर सकती थीं। उन्हें विवाह, शिक्षा, सम्पत्ति आदि में अधिकार प्राप्त थे। कन्या, पत्नी, बधू और माँ के रूप में किये गये उनके कार्य परिवार और समाज में आदृत थे। उनके प्रति समाज की स्वाभाविक निष्ठा और श्रद्धा रही है।

भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्व-शक्ति-सम्पन्न मानी गई तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक समझी गई। गृह की सामग्री के रूप में उसे प्रतिष्ठापित किया गया तथा घर के अन्य सदस्यों को उसके शासन में रहने के लिए निर्देशित किया गया। धीरे-धीरे समाज में उनका महत्व इतना अधिक बढ़ा कि उसके बिना अनेक पुरुष अपूर्ण और अधूरा समझा गया। शास्त्रकारों का कथन है कि केवल पुरुष कोई वस्तु नहीं, अर्थात् वह अपूर्ण रहता है, किन्तु स्त्री, स्नेह तथा सन्तान, ये तीनों मिलकर ही पुरुष होता है।

स्त्री, पुरुष की शरीरार्द्ध और अर्द्धांगिनी मानी गई तथा श्री और लक्ष्मी के रूप में वह मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्ति और पुंजित करने वाली कही गई। उसका आगमन पुरुष के लिए शुभ, सौरभमय, और सम्मानजनक था जिसके सम्पर्क में उसका व्यक्तित्व मुखर और सन्निवृष्टि हो उठता था। स्त्रियों की दशा में युग के अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। भारत की प्राचीनतम सभ्यता, सैन्धव सभ्यता के धर्म में मातृ देवी को सर्वोच्च पद प्रदान किया उससे इसके सामाजिक स्तरीकरण का आभास होता है।

## 4.2 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में आपको प्राचीन भारतीय इतिहास के विविध पक्षों की जानकारी दी गयी थी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। इस इकाई का उद्देश्य प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति विविध कालखण्डों में किस प्रकार रही, इससे संबंधित तथ्यों से आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

- प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति
- स्त्री-धन
- स्त्री के सम्पत्ति अधिकार

### 4.3 प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति

वैदिक युग में उनकी अवस्था अत्यन्त उन्नत और परिष्कृत थी। उनके सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार पुरुषों के ही समान थे। विवाह एक धार्मिक संस्कार माना जाता था। दम्पति घर के संयुक्त अधिकारी होते थे, लेकिन कहीं-कहीं राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक संकीर्णता के कारण उनकी स्थिति में परिवर्तन दिखाई पड़ता है, लेकिन कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं जहाँ पिता विदुषी एवं योग्य कन्याओं की प्राप्ति के लिए विशेष धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन करता था। कन्या को पुत्र सदृश शैक्षणिक अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त थीं। कन्याओं का उपनयन संस्कार होता था तथा वे भी ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती थीं। ऋग्वेद में ऐसी स्त्रियों के नाम मिलते हैं, जो विदुषी तथा दार्शनिक थीं और उन्होंने कई मन्त्रों एवं ऋचाओं की रचना भी की थी। विश्ववारा को 'ब्रह्मवादिनी' तथा मन्त्रद्रष्टी कहा गया है जिसने ऋग्वेद के स्तोत्र की रचना किया था। घोषा, लोपामुद्रा, शाश्वती, अपाला, इन्द्राणी सिकता आदि विदुषी स्त्रियों के नाम ज्ञात होते हैं।

ऋग्वेद में बृहस्पति तथा उनकी पत्नी की कथा का उल्लेख मिलता है। बृहस्पति अपनी पत्नी को छोड़कर तपस्या करने गये, किन्तु देवताओं ने उन्हें बताया कि पत्नी के बिना अकेले तप करना अनुचित है। इस प्रकार स्त्री पुरुष की ही तरह तपस्या करने की अधिकारिणी थी।

हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समान रूप से आदृत और प्रतिष्ठित थी। शिक्षा धर्म व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उनका योगदान महान था। वह स्वतन्त्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी और स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करती थी। नव वधू श्वसुर-गृह की सामग्री होती थी। वस्तुतः स्त्री और पुरुष दोनों यज्ञ रूपी रथ के जुड़े हुए दो बैल थे।

वैदिक युगीन शिक्षा के क्षेत्र में उनका स्थान पुरुषों के समकक्ष था। शिक्षिता कन्या की प्राप्ति के लिए विशेष अनुष्ठान का आयोजन किया जाता था। पुरुषों की तरह वह भी ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती हुई शिक्षा ग्रहण करती थी। महिला छात्राओं के दो वर्ग थे- ब्रह्मवादिनी जो आजीवन एकनिष्ठता के साथ विद्याध्ययन में लगी रहती थीं। जबकि दूसरा वर्ग सद्योद्वाहा विवाह के समय तक ही विद्याध्ययन करती थीं। कन्याओं का विवाह प्रायः पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में होता था। समाज में सती तथा पर्दा-प्रथा जैसी किसी प्रथा का प्रचलन नहीं था। धीरे-धीरे वैदिक कर्मकाण्ड की भी जटिलता बढ़ती गई और याज्ञिक कार्यों में शुद्धता और पवित्रता के नाम पर आडम्बर का बोलवाला बढ़ता गया। फलस्वरूप स्त्रियों को याज्ञिक कार्यों से अलग रखनेका उपक्रम किया जाने लगा तथा उन्हें वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के उपयुक्त नहीं माना गया।

उत्तर वैदिक काल में भी स्त्रियों की दशा पूर्ववत् बनी रही, यद्यपि अथर्ववेद में एक स्थान पर कन्या को चिन्ता का कारण बताया गया, किन्तु उनकी स्थिति सन्तोषजनक बनी रही। उनकी शिक्षा

पर विशेष ध्यान दिया जाता था, उपनयन संस्कार भी होता था तथा ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए वह अध्ययन करती थी। अथर्ववेद में वर्णित है कि “ब्रह्मचर्य द्वारा ही कन्या योग्य पति को प्राप्त करने में सफल होती है। विवाहिता स्त्रियों को यज्ञों में भाग लेते हुए पाते हैं। कुछ स्त्रियों ने धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में विद्वता एवं निपुणता प्राप्त कर लिया था। इस युग में व्यावहारिक शिक्षा में वे नृत्यगान, चित्रकला आदि विधाओं की शिक्षा ग्रहण करती थी। कन्याओं की गुरुकुल में शिक्षा प्राप्ति हेतु भेजने की प्रथा समाप्त हो गई तथा घर पर ही शिक्षा देने का समर्थन किया गया। वे अब केवल पिता, भाई आदि से शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। ऐसी स्थिति में केवल कुलीन परिवार की कन्यायें ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। कन्या का विवाह वयस्क होने पर होता था। कभी-कभी वे स्वयं पति का चुनाव करती थीं। क्षत्रिय समाज में स्वयंवर प्रथा विद्यमान थी। सती-प्रथा का अभाव था तथा विधवा विवाह होते थे। स्त्रियों का सामाजिक समारोहों में जाना बन्द हो गया था। स्त्री के धन सम्बन्धी अधिकार को मान्यता नहीं प्रदान की गई। डॉ० ए०एस० अल्तेकर का विचार है कि वैदिक काल की राजनैतिक आवश्यकताएँ ही प्रागैतिहासिक सती प्रथा की समाप्ति तथा नियोग एवं पुनर्विवाह को मान्यता प्रदान किये जाने के लिए उत्तरदायी थीं।

ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि इस काल में स्त्री की दशा सन्तोषजनक थी। शतपथ ब्राह्मण से विदित है कि गृह कार्य एवं उत्तरदायित्वों के निर्वाह में स्त्री पुरुष की समान भागीदार होती थी। अविवाहित व्यक्ति यज्ञों तथा धार्मिक कर्मकाण्डों का अनुष्ठान करने योग्य नहीं था। यज्ञों के अवसर पर मन्त्रों के गायन का कार्य वस्तुतः पत्नी द्वारा ही सम्पन्न किया जाता था।

उपनिषद्काल में कई महिलाओं को दार्शनिक श्रेणी में पाते हैं। इस काल में दर्शन जैसे गूढ़ विषयों में स्त्रियों के पारंगत होने का प्रमाण मिलता है। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी विख्यात दार्शनिका थी। जिसकी रुचि सांसारिक वस्तुओं और अलंकारों में न होकर दर्शनशास्त्र में थी। उसने अपने पति की सम्पत्ति में अपने अधिकार को अपने पति की दूसरी पत्नी के हित में त्यागकर केवल ज्ञान व्याप्त करने की याचना की थी। जनक की राजसभा में होने वाली विद्गोष्ठी में गार्गी ने अपनी अब्जुत तर्कशक्ति से याज्ञवल्क्य जैसे महर्षि को चौका दिया तथा अपनी पृच्छाओं से उन्हें ही नहीं, बल्कि पूरे विद्वत समाज को स्तब्ध कर दिया। इस काल में कुछ महिलायें आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करती हुई दर्शन का अध्ययन करती थीं। अनेक शिक्षित महिलायें अध्यापन कार्य का भी अनुसरण करती थीं।

ब्राह्मण ग्रन्थों से पता चलता है कि स्त्री, पुरुष की अपेक्षा दुर्बल एवं कामुक मस्तिष्क की होती है तथा ब्राह्म आकर्षणों के प्रति आसानी से लुभा सकती है। ललित कलाओं के प्रति भी उनका विशेष आकर्षण हुआ करता था।

सूत्रकाल में इनकी दशा पतनोन्मुख हो गई। इनका जन्म अभीष्ट नहीं था। उनका उपनयन संस्कार नहीं होता था। विवाह के अलावा वे किसी अन्य संस्कारों में वैदिक मन्त्रों का उच्चारण नहीं करती थी। उनकी विवाह की आयु कम कर दी गई जिससे उनका विधिवत शिक्षा ग्रहण करना कठिन हो गया। उनका विवाह नौ से लेकर बारह वर्ष तक की आयु में किया जाने लगा। उनको शूद्र की श्रेणी में रखा जाने लगा। सभी याज्ञिक अनुष्ठानों से उन्हें वंचित कर दिया गया। कुलीन परिवारों की स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी। राजपरिवार की महिलायें भी शिक्षित होती थीं। उन्हें ललित कलाओं जैसे, संगीत, नृत्य, चित्र, मालाकारी आदि की विधिवत शिक्षा प्रदान की जाती थी। वात्स्यायन ने कामसूत्र में लिखा है कि स्त्रियों को चौसठ कलाओं में दक्ष होना चाहिए। सूत्रकाल में स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया गया। वशिष्ठ ने मत व्यक्त किया है कि “स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है। बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं। मनु आदि कुछ अन्य स्मृतिकारों ने इस मत का समर्थन किया है। मनु ने कहा है कि पति के दुराचारी तथा चरित्रहीन होने की दशा में भी पत्नी का कर्तव्य है कि वह देवता के समान उसकी पूजा करे।

महाकाव्य काल में स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक थी। रामायण में सीता का विचरण तथा महाभारत में द्रौपदी का भ्रमण उनकी उन्मुक्ता और स्वच्छन्दता को व्यक्त करता है। सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। उनके प्रति समाज की उदान्त भावना थी। महाभारत में भीष्म पितामाह का कथन है कि स्त्री को सर्वदा पूज्य मानकर उससे स्नेह का व्यवहार करना चाहिए। जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ देवताओं का वास होता है, उनकी अनुपस्थिति में सभी पूर्ण कार्य अपवित्र हो जाते हैं। रामायण में भी सीता के लिए आदर और सम्मान की बातें कही गई हैं। ईसापूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी तक का समय उत्तरी भारत में विदेशी आक्रमणों का काल रहा जिससे समाज में भारी अव्यवस्था फैल गयी। इसने स्त्रियों की स्थिति को प्रभावित किया। नियोग तथा पुनर्विवाह की प्रथा बन्द हो गई। स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह के स्थान पर सन्यास द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। समाज में सती प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। वैदिक काल में उसे सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्रदान नहीं किये गये।

पाँचवीं से बारहवीं शताब्दी तक स्त्रियों की दशा में उतार-चढ़ाव दिखाई पड़ता है। इस काल में उनकी दशा निरन्तर पतनोन्मुख होती गई। एकमात्र उनके धन सम्बन्धी अधिकार को ही समाज में मान्यता प्रदान की गई। 12वीं सदी तक आते-आते सम्पूर्ण देश में विधवा के मृत पति पर उत्तराधिकारी होने का सिद्धान्त व्यवहारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया।

बौद्ध युग में स्त्रियाँ प्रायः शिक्षित और विद्वान हुआ करती थीं। विद्या, धर्म एवं दर्शन के प्रति उनकी अगाध रुचि होती थी। बौद्ध साहित्य की शिक्षिकाओं के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी। थेरी गाथा की कवयित्रियों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी और 18 विवाहित भिक्षुणियाँ थीं। उनमें शुभा, सुमेधा और अनोपमा उच्च वंश की कन्याएं थीं, जिनसे विवाह करने के लिए राजकुमार और

सम्पत्तिशाली सेठों के पुत्र उत्सुक थे। भिक्षुणी खेमा उस युग की उच्च शिक्षाप्राप्त स्त्री थी जिसकी विद्वता की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। संयुक्त निकाय से ज्ञात होता है कि सुभद्रा नामक भिक्षुणी व्याख्यान देने के क्षेत्र में प्रसिद्ध थी। राजगृह के सम्पत्तिशाली सेठ की पुत्री भद्राकुण्डकेश अपनी विद्या और ज्ञान से सबको आकृष्ट करती थी। इस युग में स्त्रियाँ ज्ञान-पिपासु थी तथा अन्वेषण और प्राप्ति में तल्लीन रहती थीं।

स्त्री की स्वयं सम्पत्ति जिस पर उसका अधिकार होता था स्त्रीधन होता था। इस काल में स्त्रीधन का क्षेत्र व्यापक कर उसमें उत्तराधिकार एवं विभाजन की सम्पत्ति को भी सम्मिलित कर दिया गया।

मिताक्षरा तथा दायभाग में स्त्री को मृत पति की सम्पत्ति की पूर्ण उत्तराधिकारी घोषित किया गया। लेकिन जीवन के अन्य क्षेत्र में उनकी दशा दयनीय थी।

उपनयन संस्कार की समाप्ति एवं बाल-विवाह के प्रचलन ने उन्हें दयनीय स्थिति में ला दिया था। इस युग में विवाह की आयु घटा दी गई और आठ से लेकर दस वर्ष की आयु में कन्या का विवाह होने लगा था।

विधवा विवाह बन्द हो गया और सती प्रथा का प्रचलन राजपूत काल में प्रारम्भ हो गया था। राजपूत वंशों में कन्याओं का विवाह चौदह या पन्द्रह वर्ष की आयु में होता था।

कई कन्याओं को संरक्षिका के रूप में शासन-भार भी ग्रहण करना पड़ता था। उन्हें प्रशासनिक एवं सैनिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। कुछ कुलीन परिवार की कन्याएं साहित्य की शिक्षा ग्रहण करती थीं। इनमें से कुछ ने काफी ख्याति अर्जित की थी, लेकिन मुस्लिम सत्ता की स्थापना के साथ ही उनकी शिक्षा की स्थिति पतन की ओर अग्रसर होने लगी। उनका कार्य क्षेत्र घर के भीतर तक ही सीमित हो गया समाज में पर्दा-प्रथा का प्रचलन हुआ जिससे कन्याओं का सार्वजनिक जीवन समाप्त हो गया। स्त्रियों की अज्ञानता के कारण स्मृतिकारों ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि पति ही पत्नी का एकमात्र देवता है तथा उसका धर्म केवल उसकी आज्ञा मानना एवं पूजा करना है। कुलीन परिवारों में बहुविवाह का प्रचलन हो गया। बाल-विधवाओं की संख्या भी निरन्तर बढ़ती गयी।

आठवीं शताब्दी तक समाज में विधवाओं के मुण्डन की प्रथा का भी प्रचलन हो गया। स्त्रियों को शुद्र की कोटि में गणना होने के कारण उन्हें वैदिक साहित्य एवं दर्शन के अध्ययन से वंचित कर दिया गया।

देश के कुछ भागों में देवदासी प्रथा प्रचलित थी। जिसके अन्तर्गत कुमारी कन्यायें नृत्य, गान के लिए मन्दिरों को समर्पित की जाती थी। प्रारम्भ में इसका स्वरूप विशुद्ध धार्मिक था, किन्तु बाद में

यह महिलाओं के देह शोषण का माध्यम बन गया। पूर्व मध्यकाल तक आते-आते देवदासियों की भूमिका राजाओं और सामन्तों की कामवासना को शान्त करने तक सीमित हो गयी। अलबरूनी लिखता है कि देवदासियाँ अविवाहित सैनिकों की काम पिपासा शान्त करने में भी सहायक थी। दक्षिण में यह प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित थी। तन्जौर मन्दिर में चार सौ तथा तथा सोमनाथ मन्दिर में पाँच सौ देवदासियों के होने की सूचना मिलती है। उड़ीसा के मन्दिरों में भी देवदासियाँ रहती थीं। यह स्त्रियों की हीन एवं पतनोन्मुख दशा का सूचक है।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. ऋग्वेद में ऐसी स्त्रियों के नाम मिलते हैं, जो विदुषी तथा दार्शनिक थीं( सत्य/ असत्य )
2. थेरी गाथा की कवयित्रियों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी थी ( सत्य/ असत्य )
3. मिताक्षरा तथा दायभाग में स्त्री को मृत पति की सम्पत्ति की पूर्ण उत्तराधिकारी घोषित किया गया( सत्य/ असत्य )
4. सोमनाथ मन्दिर में पाँच सौ देवदासियों के होने की सूचना मिलती है( सत्य/ असत्य )

## 4.4 स्त्री-धन

हिन्दू व्यवस्थाकार ने स्त्रीधन के अन्तर्गत नारी की विभिन्न सम्पत्ति का उल्लेख किया है। स्त्री की अपनी स्वयं की सम्पत्ति, जिसपर उसका पूर्ण स्वत्व होता है, वह स्त्रीधन कहा जाता है। मनु के अनुसार वैवाहिक अग्नि के सम्मुख जो कुछ कन्या को दिया जाता है, जो कन्या को पतिगृह जाते समय मिलता है, जो स्नेहवश उसे दिया जाता है, जो माता-पिता और भाई से मिलता है, वह सब स्त्रीधन है, भाष्यकार, विज्ञानेश्वर ने भी स्त्रीधन को छः प्रकार का बताया है-पिता-माता, भ्राता और पति द्वारा दिया हुआ, अग्नि की सन्निधि में विवाह के समय कन्यादान के साथ प्राप्त तथा अधिवेदन के निमित्त मिला हुआ धन। यही नहीं विवाह के पश्चात् प्रीतिपूर्वक सास-श्वसुर आदि से पाद वन्दननादि प्रथा में स्त्री को जो प्राप्त होता था, वह भी स्त्रीधन था।

वस्तुतः पति द्वारा स्त्री को दी गई, उत्तराधिकार में उसे मिली हुई, आदि सम्पत्ति स्त्री का धन थी। आसुर विवाह में अभिभावक द्वारा कन्या के निमित्त जो धन लिया जाता था वह स्त्रीधन के अन्तर्गत आता था। थेरी गाथा से विदित है कि धर्मदिन्ना को उसके पति ने यह निर्देश दिया था कि अपने माता-पिता के यहाँ जाते समय जो भी धन वह ले जाना चाहे, ले जाये। इससे यह स्पष्ट होता है कि परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति में स्त्री का भाग होता था और वह अपनी इच्छानुसार उसमें से अपने पास रख सकती थी। स्त्रीधन के अन्तर्गत परिवार की भूमि के अलावा उसके मूल्यवान वस्त्राभूषण भी

होते थे, जिनका वह स्वयं उपयोग करती थी। कात्यायन ने स्त्री के स्वामित्व और उसके स्वत्व का प्रतिपादन किया है और मत व्यक्त किया है कि स्त्री अपने स्त्रीधन के साथ अचल सम्पत्ति को बंधक रख सकती थी अथवा बेच सकती थी। मिताक्षरा और दायभाग दोनों ने कात्यायन द्वारा विवृत स्त्रीधन की सूची देते हुए उसका विमर्श किया है। माता-पिता, पति तथा भाई से जो धन प्राप्त हो, विवाहकाल में अग्नि के सम्मुख मातुल आदि द्वारा प्राप्त धन हो, अधिवेदन के निमित्त अधिविन्न स्त्री को पति द्वारा दिया गया धन।

उपरोक्त से ज्ञात होता है कि रिक्थ (उत्तराधिकार), क्रय, संविभाग प्रतिग्रह, अधिगम से प्राप्त, ये सभी स्त्रीधन थे। इस प्रकार स्त्रीधन के अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार की सम्पत्तियों को सम्मिलित कर दिया गया।

स्त्रीधन को भी दो भागों में विभाजित किया गया है। सौदायिक, असौदायिक।

प्रथम वर्ग में माता-पिता अथवा पति द्वारा स्त्री को दिये गये उपहार रखे गये तथा इसे उसके पूर्ण अधिकार में कर दिया गया। असौदायिक धन को केवल स्त्री ही उसका उपयोग कर सकती थी। नारद का विचार है कि स्त्री को स्त्रीधन में निहित केवल चल सम्पत्ति को ही बेच सकने का अधिकार होता है। हिन्दू व्यवस्थाकारों का मत है कि स्त्रीधन का उपयोग स्त्री के अलावा कोई भी अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता लेकिन आपत्ति काल में वह इस धन का उपयोग परिवार का सदस्य कर सकता था।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. विज्ञानेश्वर ने भी स्त्रीधन को पांच प्रकार का बताया है( सत्य/ असत्य )
2. नारद के अनुसार स्त्री को स्त्रीधन में चल सम्पत्ति बेचने का अधिकार नहीं है( सत्य/ असत्य )

## 4.5 स्त्री का सम्पत्ति का अधिकार

स्त्रियों की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर हिन्दू समाज में उनका सम्पत्ति-विषयक अधिकार स्वीकार किया गया है तथा उन विशेष परिस्थितियों का भी विश्लेषण किया गया है जिनके कारण सम्पत्ति में वे अपना हिस्सा प्राप्त करती थीं। जैसे वैदिक कालीन कुछ ऐसे विवरण हैं, जो उसके उत्तराधिकार पर आक्षेप करते हैं, किन्तु ये अपवाद ही हैं। सम्पत्ति में प्रायः उसका हिस्सा रहता है। परिवार में वह पुत्र से किसी प्रकार कम नहीं समझी जाती थीं। दत्तक पुत्र से श्रेष्ठ पुत्री समझी जाती थी। अपने भाई के न रहने पर पिता की उत्तराधिकारी होती थी। अतः वैदिक युग में स्त्री सम्पत्ति के अधिकार को माना जाता था। चौथी शताब्दी ई०पू० तक यह व्यवस्था समाज में प्रचलित थी, किन्तु दूसरी सदी ई०पू० में आकर स्त्री-शिक्षा पर अनेक प्रतिबन्ध लग गये, जिनके कारण स्त्री का सम्पत्ति

विषयक अधिकार भी क्षतिग्रस्त हुआ। इस युग में ऐसे अनुदार धर्मशास्त्रकारों के एक वर्ग का आगमन हुआ जिसने भाई के न रहने पर भी बहन के उत्तराधिकार को स्वीकार किया। आपस्तम्भ सूत्र ने यह व्यवस्था दी कि उत्तराधिकारी के अभाव में जब सपिण्ड व गुरु या शिष्य कोई न कोई तब पुत्री उत्तराधिकारी हो सकती है, यद्यपि उसने पुत्री को उत्तराधिकारी न स्वीकार करके सारी सम्पत्ति धर्मकार्य में लगा देने के लिए निर्देश दिया है। वशिष्ट-गौतम और मनु ने भी उत्तराधिकारिणी के रूप में पुत्री का कहीं नाम नहीं लिया है। इन व्यवस्थाकारों ने सम्पत्ति से पुत्री के अधिकार और उसके उत्तराधिकारी के अधिकार को नहीं स्वीकार किया है, परन्तु इसके विपरीत दूसरे शास्त्रकारों ने अत्यन्त उदारतापूर्वक उत्तराधिकारी होने का मत का प्रतिपादित किया है। महाभारत में उसके इस स्वतत्त्व को पुत्र के समकक्ष स्वीकार किया गया है और यह कहा गया है कि अगर अभ्रातृका को पूरी सम्पत्ति नहीं मिलती तो आधी अवश्य मिलनी चाहिए। याज्ञवल्क्य ने दृढतापूर्वक पुत्रों के हित में अपना विचार प्रकट किया है तथा निर्देश दिया है कि पुत्र और विधवा के अभाव में पुत्री उत्तराधिकारिणी होगी। बृहस्पति और नारद ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि पुत्री अपने पिता के पुत्र के समान सन्तान नहीं, फिर पुत्र के न होने पर उसके अधिकारों को कैसे अस्वीकारा जा सकता? इस आधार पर कात्यायन जैसे व्यवस्थाकारों ने अपने विचारों का विकास किया तथा पुत्र के अभाव में पिता की सम्पत्ति में पुत्री के उत्तराधिकारिणी होने के नियम की पुष्टि की है। कन्या को पुत्र के हिस्से का चौथाई पाने की संस्तुति जीमूतवाहन और विज्ञानेश्वर दोनों शास्त्रकारों ने की है तथा यह स्पष्ट कर दिया है कि कन्या का परिवार में अधिकार प्राप्त है। निश्चय ही पुत्र के रहते हुए कन्या का सम्पत्ति में अधिकार वैदिक काल से रहा है। परवर्ती धर्म शास्त्रकारों ने भी इसे स्वीकार किया है। विष्णु और नारद ने कन्या के हिस्से का समर्थन किया है, किन्तु उसके द्वारा अपने हिस्से को ले जाने का अनुमोदन नहीं किया है। नारद का अभिमत है कि कन्या उतना ही हिस्सा प्राप्त करे जितना उसके अविवाहित रहने तक व्यय होता है। पिता के दिवंगत हो जाने पर कन्या का विवाह करना पुत्र का परम कर्तव्य था तथा अपने हिस्से का एक चौथाई भाग विवाह कार्य में व्यय कर सकता था। अगर बहन के विवाह में किसी भी प्रकार की कठिनाई थी, तो भाई का कर्तव्य था कि वह अपने हिस्से से जितना अपनी बहन के विवाह में व्यय करता इसके साथ ही यह भी निर्देश किया गया था कि अपने परिवार की सम्पत्ति अधिक है तथा विवाह में कम व्यय हुआ तो शेष सम्पत्ति को कन्या अपने साथ ले जा सकती थी। विधवा का सम्पत्ति में अधिकार माना गया है, यद्यपि वैदिक साक्ष्य इसके विरुद्ध हैं। संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में पति की मृत्यु पर विधवा के अधिकार को स्वीकार नहीं किया गया है। परवर्ती काल में विधवा के अधिकार को समाज में स्वीकृति मिली तथा पति की मृत्यु के बाद प्रायः विधवा ही सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी। तीसरी सदी ई०पू० तक विधवा के सम्पत्ति विषयक अधिकार को नहीं स्वीकार किया है तथा यह मत व्यक्त किया है कि व्यक्ति की मृत्यु के बाद पुत्र के अभाव में उसका उत्तराधिकारी सपिण्ड व्यक्ति होता था। इसके न रहने पर मृत व्यक्ति का आचार्य या उसके न रहने पर अन्तेवासी सम्पत्ति का अधिकारी होता था मनु के अनुसार पुत्र के

अभाव में पुरुष के धन का उत्तराधिकारी पिता या भाई था। अगर ऐसा कोई उत्तराधिकारी नहीं था तो सपिण्डों में निकट सम्बन्धी मृतक के धन का भागी था तथा इसके आभाव में क्रमशः सनमोदक, आचार्य तथा शिष्य मृत व्यक्ति के धन का भागीदार था। इस मत पर भाष्य करते हुए मेधातीथि ने लिखा है सम्पत्ति में विधवा कहीं भागीदार नहीं होती थी पहली सताब्दी ईसा पूर्व तक व्यवस्थाकारों ने यह विमर्श किया कि यदि विधवा पुनर्विवाह नहीं करती है अथवा नियोग द्वारा पुत्र नहीं उत्पन्न करती है तो उसके भरण-पोषण के लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध अवश्य होना चाहिए। ऐसी स्थिति में विधवा को पति की सम्पत्ति में हिस्सा के प्रदान किया गया। कौटिल्य ने सम्पत्ति में विधवा के भाग को स्वीकार किया है। गौतम ने सपिण्डों, गोत्रियों और सम्बन्धियों के साथ विधवा के समान भाग माना है। विष्णु का अभिमत था कि पुत्रों के अयोग्य होने पर सम्पत्ति की उत्तराधिकारी विधवा होती थी। इन मतों के विपरीत कुछ ऐसे अनुदार धर्म शास्त्रकार हुए जिन्होंने मृत पति की सम्पत्ति में विधवा के भाग को स्वीकार नहीं किया। कात्यायन और भोज ऐसे ही अधिकार को स्वीकार किये हैं तथा विधवा को केवल भरण पोषण के लिए धन प्रदान करने के निर्देश दिये हैं। किन्तु दायभाग और मिताक्षरा के अनुसार मृत पति के सम्पूर्ण धन को पुत्र के अभाव में विधवा प्राप्त करती रही है। इस प्रकार ऐसे विचारकों का वर्ग विकसित हुआ जिसने नारी के समान अधिकार का प्रतिपादन तथा उनकी आर्थिक स्थिति का आंकलन किया। नारी के समान अधिकार की संपुष्टि करने वाले ऐसे शास्त्रकारों ने नारी के प्रति उत्पन्न उदार और संवेदनशील मन की अभिव्यंजना की। पुरुषों की तुलना में नारी के सम्पत्ति-विषयक अधिकार में किसी प्रकार निम्न दृष्टि ऐसे विचारकों ने नहीं प्रदर्शित की। पूर्व मध्य युग में निश्चय ही स्त्री के प्रति सहानुभूति और स्नेह का वातावरण निर्मित दिखता है। विशेषकर उसके आर्थिक जीवन को अधिक सुगम और सुधार बनाने के विचार से शास्त्रकारों ने सम्पत्ति में उसके अधिकार को स्वीकार किया। स्त्रियों में विधवा का विवाह जीवन कठोरता और निर्गमता पर आधृत था इसलिए उदार विचारकों ने उसके सम्पत्ति-विषयक भाग को स्वीकार किया और तत्सम्बन्धी तर्क प्रस्तुत किया।

## 4.6 सारांश

श्रुवैदिक काल में स्थापित स्त्री-पुरुष समानता अधिक समय तक स्थापित नहीं रह सकी और उत्तर वैदिक काल आते-आते स्त्रियों पर नियोग्यताओं का थोपा जाना प्रारंभ हो गया। ऐतिहासिक युग में यद्यपि हमें अनेक विदुषी और वीरांगनाओं के उदाहरण मिलते हैं तथापि सामान्य स्त्रियों की स्थिति निरंतर गिरती हुई दिखाई देती है, और समाज में उनका स्थान निम्नतम श्रेणी का दिखाई देता है। स्त्रियों में अशिक्षा, अंधविश्वासों और कुरीतियों की अधिकता के कारण हम उन्हें निरंतर नवीन नियोग्यताओं में जकड़ा पाते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास के अंतिम चरण में तो स्त्रियां भोग्या के रूप में वर्णित मिलती हैं।

---

## 4.7 तकनीकी शब्दावली

---

विदुषी - विद्वान स्त्री

ब्रह्मवादिनी - ब्रह्म अर्थात् ज्ञान का अनुशीलन करनेवाली

मन्त्रद्रष्टी - मन्त्रों का दर्शन करनेवाली

स्मृतिकारों - कानून निर्माता

---

## 4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

---

भाग 4.3 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य

भाग 4.3 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य

भाग 4.3 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य

भाग 4.3 के प्रश्न 4 का उत्तर- सत्य

भाग 4.4 के प्रश्न 1 का उत्तर- असत्य

भाग 4.4 के प्रश्न 2 का उत्तर- असत्य

---

## 4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

सिंह, उपिन्दर, ए हिस्टरी ऑव एंशियण्ट एण्ड अर्ली मेडीएवल इण्डिया, दिल्ली, 2009.

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005

ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984

ए.एल.बाशम: अब्दुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972

Altekar, A.S: The Position of Women in Hindu Civilization, Motilal Banarsidas, Delhi, 1965.

---

## 4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

सिंह, उपिन्दर, ए हिस्टरी ऑव एंशियण्ट एण्ड अर्ली मिडीएवल इण्डिया, दिल्ली, 2009.

- 
- मजुमदार, आर० सी०, तथा ए० डी० पुसालकर (सं०), द क्लासिकल एज (द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव दि इण्डियन पीपल, 3), बॉम्बे, 1988. (हिन्दी संस्करण, श्रेण्ययुग, उपलब्ध).
- मजुमदार, आर० सी०, तथा ए० एस० अलतेकर (सं०), द वाकाटक-गुप्त एज, लाहौर, 1946. (हिन्दी संस्करण, वाकाटक-गुप्त युग,).
- रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2010
- वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
- ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984
- ए.एलबाशम: अब्दुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972
- Altekar, A.S: The Position of Women in Hindu Civilization, Motilal Banarsidas, Delhi, 1965.

---

## 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

---

1 प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति पर एक निबंध लिखिए।

---

## इकाई एक-सप्तसैन्धव ,दशराज्ञ युद्ध ,भारतवर्ष ,पंचजन ,हरियूपिया,दिलबन तथा मकन ,बोगजकोई,मातृदेवी, सभा-समिति,यज्ञ,श्रुति,स्मृति

---

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3. संकल्पनाएं, विचार तथा शब्दावली
  - 1.3.1 दशराज्ञ युद्ध
  - 1.3.2 मातृदेवी
  - 1.3.3 भारतवर्ष
  - 1.3.4 हरियूपिया
  - 1.3.5 दिलबन तथा मकन
  - 1.3.6 बोगजकोई
  - 1.3.7 सभा-समिति
  - 1.3.8 यज्ञ
  - 1.3.9 पंचजन
    - 1.3.9.1 राजनीतिक संगठन में परिवर्तन
    - 1.3.10 श्रुति
    - 1.3.11 स्मृति
    - 1.3.12 सप्तसैन्धव
      - 1.3.12.1आर्य ब्रह्मर्षि प्रदेश के ही मूल निवासी थे
      - 1.3.12.2आर्यों का मूल निवास स्थान सप्त सैन्धव का मैदान था
- 1.4 सारांश
- 1.5 तकनीकी शब्दावली
- 1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के स्रोत के रूप में हमें विभिन्न साहित्यिक, पुरातात्विक एवं धार्मिक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। इस साक्ष्यों से माध्यम से ही हम प्राचीन भारत की कला, समाज, अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक जीवन आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इन साक्ष्यों के माध्यम से हमें यह भी ज्ञात होता है कि किस प्रकार भारतीय समाज में कला, संस्कृति, व्यापार-वाणिज्य, कृषि आदि का क्रमिक विकास सम्भव हो सका।

प्राचीन भारतीय समाज में अनेक परम्पराएं विचार एवं रीतियाँ प्रचलित थीं जो उस समय के समाज के विविध पक्षों के उत्थान के विषय में जानकारी प्रस्तुत करती हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए उस समय के समाज में व्याप्त विभिन्न संकल्पनाओं विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। इनके अभाव में आप प्राचीन भारतीय शासको, समाज, कला धर्म, संस्कृति की पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इस पाठ में इसी बात को ध्यान में रखकर आप प्राचीन भारतीय इतिहास का भलीभाँति अध्ययन कर पायेंगे।

## 1.2 उद्देश्य

इस पाठ/इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राचीन में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाओं, विचार एवं शब्दावली के ज्ञान से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रकृत के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाएँ।
2. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न विचार
3. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न शब्दावली

## 1.3 संकल्पनाएँ, विचार तथा शब्दावली

आगे आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में बारबार प्रयुक्त होने वाली कुछ संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय दिया गया है, आप इनका अध्ययन, मनन कर आत्मसात करने का प्रयत्न करें।

### 1.3.1 दशराज युद्ध

ऋग्वेद का अधिकांश भाग देव-स्रोतों में भरा हुआ है और इस प्रकार उसमें ठोस ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम मिलती है। परन्तु इसके कुछ मित्र ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करते हैं जैसे एक स्थान “दस राजाओं के युद्ध” दशराज का वर्णन आया है जो भरत कबीले के राजा सुदास के साथ हुआ था। यह ऋग्वैदिक काल की एकमात्र महत्वपूर्ण ऐतिहासिक धारणा है। यह युद्ध आर्यों के दो प्रमुख जनो-पुरू तथा भरत के बीच हुआ था। भरत जन का नेता सुदास था जिसके पुरोहित वशिष्ठ थे इनके विरुद्ध दस राजाओं का एक संघ था जिसमें अनु, द्रुह्यु, यदु, पुरू, तुर्वस पांच जनो के अतिरिक्त पांच लघु जनजातियों अनिल, पक्थ, भलानासे, शिव तथा विषाणिन के राजा सम्मिलित थे। ऋषि विश्वामित्र इस संघ के पुरोहित थे। यह युद्ध परिश्रमोत्तर प्रदेश से बसे पूर्वकालीन जन तथा ब्रह्मावर्त के उत्तरकालीन आर्यों के बीच उत्तराधिकार के प्रश्न पर लड़ा गया था। इसमें भरत जन के स्वामी सुदास ने रावी नदी के तट पर एक भीषण युद्ध में दस राजाओं के इस संघ को परास्त किया और इस प्रकार वह ऋग्वैदिक कालीन भारत का सर्वोपरि सम्राट बन गया। भरत जन के नाम पर ही हमारे देश का नाम “भारत” पड़ा। यह ऋग्वैदिक काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण जन था जो सरस्वती तथा यमुना नदियों के बीच के प्रदेश में निवास करता था।

युद्ध के समय पुरोहित राजा के साथ जाता था तथा उसकी विजय के लिये देवताओं से प्रार्थना करता था। शिक्षक, पथ-प्रदर्शक तथा मित्र के रूप में पुरोहित राजा का मुख्य साथी होता था। राजा पुरोहितों का बड़ा सम्मान करते थे। उनका प्रभाव शासन पर भी था। ऋग्वेद में वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि पुरोहितों के नाम मिलते हैं जिनकी बहुत अधिक प्रतिष्ठा थी। सेनानी, राजा के आदेशानुसार युद्ध में कार्य करता था। शान्तिकाल में संभवत उसे नागरिक कार्यों का भी करना पड़ता था। ग्रामीण, प्रशासनिक और सैनिक कार्यों के लिए ग्राम का नेता होता था। वह ग्रामीण जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करता था।

### 1.3.2 मातृदेवी

सर जॉन माश्रल के अनुसार मातृदेवी के सम्प्रदाय का सैन्धव सभ्यता में प्रमुख स्थान था। इडप्पा, मोहनजोदड़ो, चान्हूदड़ो आदि स्थलों से मिट्टी की बहुसंख्यक नारी मूर्तियां मिलती हैं तथा मुहरों के उपर भी नारी आकृतियों का अंकन विविध रूपों में प्राप्त होता है। इनके सिर पर पंखे के समान फैला हुआ आभरण है, लड़ियों वाला हार, चूड़ियां, मेखला, कर्णफूल आदि पहने हुए हैं। शिराभरण के दोनों ओर दीपक जैसी आकृतियां बनी हैं जिनमें धुएँ के चिन्ह दिखाई देते हैं। मैके का विचार है कि इनमें तेलबत्ती डालकर इनका प्रयोग दीपक की तरह किया गया होगा। मोहनजोदड़ो से एक स्त्री की मूर्ति मिली है जिसे देवी कहा गया है। देवी के सिर पर पंखे के समान फैला हुआ एक आभरण है तथा वह करधनी, हार, कर्णफूल, कण्ठहार आदि आभूषण पहने हुए हैं। मैके को कुछ

ऐसी मूर्तियां मिली हैं जिन पर धुएं के चिन्ह दिखाई देते हैं। सम्भव है कि देवी को प्रसन्न करने के लिए उसके सामने धूप आदि सुगन्धित द्रव्य जलाये जाते रहे होंगे। व्यंकटेश महोदय, ने दक्षिणी भारत से प्राप्त “दीपलक्ष्मी” की मूर्तियों की पहचान मातृदेवी की मूर्तियों से करते हैं।

हड़प्पा से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर विशेष प्रकार की चित्रकारियां दिखाई देती हैं। एक मुद्रा पर उपर की ओर पैर तथा नीचे की ओर सिर किये हुए एक नग्न नारी का चित्र है। देवी के पैर फैले हुए हैं तथा उसके गर्भ से एक पौधा निकल रहा है। पृष्ठ भाग पर एक तरफ एक हाथ उपर उठाये हुए बैठी हुई एक नारी का चित्र तथा दूसरी तरफ हंसिये के प्रकार का चाकू लिए हुए खड़ा आदमी चित्रित किया गया है। स्पष्टतः यह मानव बलि का दृश्य है। मार्शल का विचार है कि उस समय देवी को प्रसन्न करने के लिए मनुष्यों की बलि का विधान था। एक दूसरी मुद्रा पर पीपल के वृक्ष की दो शाखाओं के बीच एक स्त्री का चित्र है। पेड़ के नीचे मनुष्य एक बकरा लिए हुए खड़ा है। नीचे मनुष्यों की एक भीड़ का चित्रण है। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं- (1) बकरे की बलि मातृदेवी की उपासना से सम्बन्धित थी। (2) सम्भवतः पीपल के पेड़ की उपासना मातृदेवी की उपासना से सम्बन्ध रही होगी। मुहरों पर अंकित कुछ नारी मूर्तियों में उनकी गोद में बच्चा दिखाया गया है जिससे उनका मातृत्व सूचित होता है नारी मृण्मूर्तियां रौद्र रूप की भी है। इनसे सूचित होता है कि देवी के सौम्य तथा रौद्र दोनों की रूपों की कल्पना की गयी थी। हीलर के अनुसार मातृदेवी का सम्प्रदाय राजधर्म नहीं था, वरन् यह एक पारिवारिक सम्प्रदाय था।

### 1.3.3 भारतवर्ष

भारत एक महान देश है। इसकी सभ्यता एवं संस्कृति उतनी पुरानी है जितना स्वयं मानवा। इसकी विशालता के कारण इसे उपमहाद्वीप की संज्ञा दी गयी है। यह एशिया महाद्वीप के दक्षिण भाग में स्थित है लेकिन स्वयं एक महाद्वीप है। यह विश्व का अकेला ऐसा देश है जिसका नाम हिन्द महासागर से जुड़ा है। इसका प्राचीन नाम आर्यावर्त है। इस देश का नामकरण ऋग्वेदिक काल के प्रमुख जन भरत के नाम पर रखा गया प्रतीत होता है। विष्णु पुराण में उल्लिखित है “समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में जो स्थित है, वह भारत देश है तथ वहां की संस्कृति भारतीय है।”

सिन्धु द्वारा सिंचित प्रदेश को “इण्डिया” नाम सबसे पहले अखमनी ईरानियों द्वारा दिया गया। पारसियों के पवित्र ग्रन्थ “जिन्द अवेस्ता” में सरस्वती की सात नदियों के क्षेत्र का उल्लेख करते हुए “सप्त सैन्धव” शब्द का प्रयोग किया गया है। ईरानियों की पुस्तक “मेहरेयास्त” और “यास्ना” में सप्त सिन्धु के स्थान पर “हप्त हिन्दु” का उल्लेख मिलता है। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने इण्डोस शब्द का प्रयोग परसियन साम्राज्य की “क्षत्रपी” के लिए किया है।

एक प्रदेश के रूप में भारत का प्रथम सुनिश्चित उल्लेख छठी-पांचवीं शताब्दी ई0पू0 की पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिलता है। तब भारत नाम का जनपद कम्बोज से मगध तक निर्दिष्ट 22

जनपदों में से एक था। बौद्ध साहित्य में प्राचीन सप्त सिन्धु के अनुरूप सात भारत प्रदेशों का उल्लेख है। इत्सिंग ने भारत के लिए आर्य देश और ब्रह्मराष्ट्र जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है।

पुराणों में भारतवर्ष शब्द की परिभाषा इस प्रकार की गई है- “वह देश जो समुद्र (हिन्द महासागर) क उत्तर में और बर्फीले पर्वतों (हिमालय) के दक्षिण में स्थित है, जहाँ पर सात मुख्य पर्वत श्रृंखलायें अर्थात् महेन्द्र, मलय, सहि, सुक्तिमतरिक्षि (आयोनियन) रहते हैं और इसके अपने लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और हिन्दू है”। भागवत पुराण और मनुस्मृति जैसे धार्मिक ग्रन्थों में भारतवर्ष को देवताओं द्वारा निर्मित भूमि बताया गया है और यह कहा गया है कि देवता भी पृथ्वी के इस स्वर्ग में जन्म लेने की इच्छा रखते हैं।

### 1.3.4 हरियूपिया

वहीलर ने हड़प्पा में अपने उत्खनन के दौरान एक टीले के चारों ओर सुरक्षा भित्ति का पता लगाया। साथ ही ऋग्वेद में उल्लिखित पुरन्दरी तथा हरियूपिया शब्दों की जानकारी उन्हें प्राप्त हुई। इस आधार पर आर्य आक्रमण का सिद्धान्त गढ़ने में उन्हें सफलता मिली क्योंकि पुरन्दर का अर्थ होता है दुर्गों का विनाशक। उन्होंने तुरन्त यह घोषणा कर दी कि सरसरी तौर पर इन्द्र को (आर्यों के प्रतीक) सैन्धव पुरों के विनाश के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। हरियूपिया का तादात्म्य हड़प्पा से स्थापित करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि आर्यों ने लगभग 1500 ई० पू० आक्रमण करके सैन्धव नगरों को ध्वस्त कर दिया तथा वहाँ के नागरिकों को मार डाला किन्तु अब आर्य आक्रमण का सिद्धान्त कल्पना की उपज सिद्ध हो गया है। मोहनजोदड़ों के जिन जन-कंकालों का विद्वानों ने उल्लेख किया है वे न तो एक ही स्तर के हैं और न ही वह इस सभ्यता का अंतिम स्तर है। ये कंकाल ऊपरी स्तर से भी नहीं मिलते। इन पर शारीरिक घाव के चिन्ह बहुत कम हैं। कुछ के मस्तक पर कटने के ऐसे निशान हैं जो अंशतः भर गये हैं। इससे सूचित होता है कि चोट लगने तथा मृत्यु के बीच काफी अन्तराल था। जिस स्तर से ये कंकाल मिलते हैं।

वहाँ अथवा उसके बाद के स्तरों से युद्ध में प्रयुक्त होने वाली कोई भी सामग्री बाण, भाला, फरसा, कवच आदि नहीं प्राप्त होता है। कहीं भी इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि इतने बड़े पैमाने पर आक्रमण हुआ था। कुछ विद्वानों के अनुसार इनमें से अधिकांश की मृत्यु प्लेग, मलेरिया जैसी बीमारियों से हुई होगी। जहाँ तक हरियूपिया के हड़प्पा से तादात्म्य का प्रश्न है, इसके लिए दोनों शब्दों में मात्र ध्वनिसाम्य के अतिरिक्त अन्य कोई आधार नहीं है। अतः अब आर्यों को सैन्धव सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

मोहनजोदड़ों क्षेत्र से प्राप्त नर-कंकालों की दशा तथा भीषण अग्नि से पिछले पाषाण अवशेष से दिमित्रिदेव के निष्कर्ष का समर्थन भी होता है। उन्होंने इस संबंध में महाभारत में

उल्लिखित इसी प्रकार के विस्फोट की ओर संकेत किया है जो मोहनजोदड़ों के समीप हुआ था। सैन्धव सभ्यता का अन्त अचानक न होकर एक दीर्घकालीन प्रक्रिया का परिणाम था।

### 1.3.5 दिलबन तथा मकन

जैसा कि हम जानते हैं कि सिन्धु सभ्यता का व्यापार-वाणिज्य अत्यधिक विकसित था और इस क्षेत्र में घरेलू व्यापारिक सम्पर्कों के अलावा उन्होंने विदेशों के साथ भी अपने सम्पर्क स्थापित किये थे। हमें सुमेर सभ्यता के मिथकों में दिलबन और मकन का उल्लेख भी मिलता है। पुराविदों ने इन स्थलों को सिन्धु सभ्यता के क्षेत्रों से समीकृत किया है। सुमेर के दस्तावेजों में व्यापारियों द्वारा दिलबन जाने और वहां से हाथी दांत लाने का उल्लेख मिलता है, हम जानते हैं कि सिन्धु सभ्यता अपने हाथी दांत के लिए विख्यात थी। अभिलेखों में अनेक सुमेरियाई शासकों द्वारा दिलबन के साथ सम्पर्क होने की बात भी मिलती है।

### 1.3.6 बोगजकोई

मध्य एशिया के बोगजकोई नामक स्थल में 14वीं सदी ईस्वी पूर्व के प्रारंभ का एक अभिलेख मिला है जिसमें हिट्टाइट और मिटानी शासकों के बीच सन्धि का उल्लेख मिलता है। सन्धि की साक्षी के रूप में ये शासक मित्र, वरूण, इन्द्र और नासत्य जैसे देवताओं का उल्लेख करते हैं। ये देवता हमारे श्रृग्वेद में भी आये हैं। इस अभिलेख से पता चलता है कि आर्यों के भारत आगमन से पूर्व अभिलेख में वर्णित शासकों के पूर्वज और श्रृग्वेदिक लोगों के पूर्वज किसी निश्चित स्थान में दीर्घकाल तक साथ रहे थे और दोनों के धार्मिक विश्वास समान थे।

### 1.3.7 सभा-समिति

उत्तर वैदिक युग में सभा और समिति के अधिकारों में भी पर्याप्त वृद्धि हो गयी है। सभा और समिति नामक संस्थायें इस समय भी राजा की निरकुंशता पर रोक लगाती थीं। राजा के निर्वाचन में भी जनता का हाथ होता था। अथर्ववेद में सभा और समितियों को “प्रजापति की दो पुत्रियाँ” कहा गया है। इन दोनों संस्थाओं के स्वरूप के विषय में विवाद है। लुडविग का विचार है सभा उच्च सदन थी जिसमें पुरोहित तथा कुलीन लोग भाग लेते थे। इसके विपरीत समिति निम्न सदन थी जिसमें सामान्य जन के प्रतिनिधि बैठते थे। जिमर का मत है कि सभा, ग्राम की संस्था थी तथा समिति सम्पूर्ण जन की केन्द्रीय समिति होती थी। हिलब्रान्ट के अनुसार समिति संस्था थी जबकि सभा उसकी बैठक स्थल थी। के० पी० जायसवाल का विचार है कि समिति राष्ट्रीय संस्था थी जबकि सभा उसकी स्थायी समिति होती थी। अल्तेकर के अनुसार सभा प्रायः ग्राम संस्था थी और उसमें सामाजिक और राजनीतिक दोनों विषयों पर विचार किया जाता था। सभा में बहुमत से निर्णय लिए जाते थे यह न्यायालय का भी काम करती थी। समिति का स्वरूप केन्द्रीय शासन की व्यवस्थापिका

सभी के समान था। सभी से बड़ी जनता की संसद होती थी। केन्द्रीय शासन और सेना पर समिति का बहुत अधिक प्रभाव था। समिति के समर्थन पर ही राजा का भविष्य निर्भर करता था। समिति के विरुद्ध हो जाने पर राजा की स्थिति संकटपूर्ण हो जाती थी किन्तु इसकी रचना एवं कार्य-पद्धति के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। सम्भवतः इसका स्वरूप एवं कार्य-पद्धति गणराज्यों की केन्द्रीय समितियों जैसा ही रहा होगा, जिसमें सैनिक एवं कुलीन वर्ग के प्रमुख व्यक्ति भाग लेते होंगे। अपनी सेवाओं के बदले राजा को अपनी प्रजा के कर तथा सेवा प्राप्त करने का अधिकार था। प्रारम्भ में यह भेंट, उपहार आदि के रूप में ऐच्छिक था, किन्तु धीरे-धीरे इसने नियमित कर का रूप प्राप्त कर लिया। करों का बोझ मुख्यतः कृषकों, व्यापारियों, कलाकारों, शिल्पियों आदि पर ही पड़ता था। ब्राह्मण तथा राजन्य वर्ग के लोग अधिकांशतः राजकीय करों से मुक्त थे। संहिता और ब्राह्मण काल तक आते आते समिति का प्रभाव कम हो गया और यह केवल परामर्शदायिनी परिषद् ही रह गयी।

### 1.3.8 यज्ञ

वैदिक काल में हवन व यज्ञ को विशेष महत्व दिया जाता था और गृहस्थ जीवन को मोक्ष के मार्ग में बाधक स्वीकार नहीं किया जाता था। पति-पत्नी दोनों यज्ञ में भाग लेते थे और यज्ञ विधि अत्यन्त सरल थी, परन्तु समय के साथ उसका स्वरूप जटिल होता गया और उसमें अनेक आडम्बरों के आ जाने के कारण वे अत्यन्त खर्चीले हो गये। सामान्यतः इतिहास में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता है। प्रथम गृह यज्ञ से तात्पर्य उस यज्ञ से है जो वेद के अनुकूल हो। धीरे धीरे यज्ञों के रूप में परिवर्तन होने लगा और पौराणिक काल में यज्ञ की पूजा स्वीकार कर ली गयी। वर्तमान समाज में यज्ञ से तात्पर्य पूजा से ही है।

पूर्व वैदिक कालीन धार्मिक जीवन बड़ा सरल था। वह प्रकृति से प्रभावित होकर उसकी देव रूप में उपासना करता था। उसकी देवोपासना में भक्ति व आत्मसमर्पण प्रधान था पर उत्तर वैदिक काल में स्थिति बदली मनुष्य ने प्रकृति से स्वतंत्र हो, अपने अहंकार को संभाला और अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु देवताओं को मंत्र से मुग्ध करना चाहा। फलतः इस काल में वैदिक मंत्रों का महत्व अधिक बढ़ा। वैदिक मंत्रों के साथ तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, इंद्रजाल व वशीकरण आदि में भी लोगों का विश्वास बढ़ने लगा। इसी के साथ ही धार्मिक कर्मकाण्डों का भी विस्तार हुआ। धार्मिक कृत्यों में यज्ञ मुख्य था। पहले ये यज्ञ बड़े सरल व साधारण ढंग से होते थे। यज्ञों की सादगी लुप्त हो गई और उनमें अनेक कर्मकाण्डीय जटिलताएं पैदा हो गयीं। इसी के साथ यज्ञों की संख्या एवं स्वरूप में भी विस्तार हुआ। यज्ञों की बहुलता व जटिलता से पुरोहितों अर्थात् ब्राह्मणों की महत्ता बढ़ी। जहां एक यज्ञ में 7 पुरोहित भाग लेते थे, वहीं उनकी संख्या 17 हो गयी। अब यज्ञ इतने खर्चीले हो गये कि साधारण जनता की आर्थिक शक्ति से परे हो गए। बड़े- बड़े यज्ञ जैसे राजसूय, बाजपेय और अश्वमेध आदि यज्ञों का विकास इसी युग में हुआ। कुछ यज्ञ तो वर्षों तक चलते रहते थे। यज्ञों को

इतना अधिक महत्वशाली बना दिया गया कि देवता भी उसके अधीनस्थ माने जाने लगे। यज्ञीय विश्वास यहाँ तक दृढ़ हो गया कि यज्ञकर्ता जीवन मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। यज्ञ में बलि का महत्व भी बढ़ा। अब भोज्य पदार्थों के बलि के अतिरिक्त पशुबलि भी प्रचलित हो गयी। यह बलि जो पूर्व वैदिक काल में देवताओं का उपहार मानी जाती थी। अब देवता व पूर्वजों को संतुष्ट करने का साधन बन गई। इन कर्मकाण्डों में यद्यपि बाह्य आडम्बर बहुत थे, फिर भी उनमें कुछ नीति के सिद्धान्त थे। इन्हीं में पंच महायज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ व भूतयज्ञ और तीन ऋणों देवऋण, ऋषिऋण व पितृऋण की कल्पना की गई थी, जिनका विकास परवर्ती कालों में हुआ।

### 1.3.9 पंचजन

आर्य कई जनो में विभक्त थे। इनमें पाँच जनो के नाम अक्सर मिलते हैं। अनु, द्रुहन्, यदु, पुरु, तुर्वसा। इन्हें पंचजन कहा गया है। जन के अधिपति को राजा कहा गया है। उत्तरवैदिक काल में आर्यों के प्राचीन जनो और कबीलो के संगठन में भारी परिवर्तन हुआ। प्राचीन जनो में कुछ अपना महत्व खो चुके थे तो कुछ की महत्ता काफी बढ़ गई थी। ऋग्वेद के भरतो की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और उसका स्थान कुरूओ ने ले लिया था। संभवतः भरतो और कुरूओ के जन कुरूओ में मिलकर खा गये थे। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि पांचालो का जन कई जनो के मिश्रण से बना था। तत्कालीन साहित्य में मत्स्यो का उल्लेख मिलता है। ये जयपुर आपैर अलवर के आस पास फैले हुए थे। बडी बडी आर्य बस्तियां बनने लगी थी और बडे बडे जन स्थापित होने लगे थे। अतः राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन तथा सांस्कृतिक चेतनाओ में युगान्तकारी परिवर्तन होने लगा। समाज में पुरोहितो और क्षत्रियो का वर्चस्व बढ़ने लगा। अतः इन अनेक परिवर्तनो ने उत्तर वैदिक संस्कृति को भारत के इतिहासकार के प्रवेश द्वार को लांघकर ऐतिहासिक युग में खडा कर दिया।

#### 1.3.9.1 राजनीतिक संगठन में परिवर्तन

उत्तर वैदिक काल में आर्यों के राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ था। आर्य सभ्यता के भौगोलिक क्षेत्र के विस्तार के साथ साथ आर्यों के राजनीतिक संगठन में परिवर्तन हुआ। ऋग्वैदिक काल में राज्यों की निश्चित सीमाएं नहीं थीं और अधिकतर राज्यों का संगठन जनजातियों द्वारा हुआ था, लेकिन इस काल में आकर राज्यों का प्रसार दूर-दूर तक हुआ और बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना हुई। उत्तर वैदिक काल को राजनीतिक परम्परा में सार्वभौम और अधिराज्य आदि विविध सत्ताओं का उदय हुआ।

उत्तर वैदिक काल में प्राचीन कबीलो का अस्तित्व भंग होने लगा। उनकी जगह बड़े बड़े जन होने लगे। जन के स्वरूप से नृपतंत्र के स्वरूप में परिवर्तन होने लगा। राजा या राज्य की उत्पत्ति

के युद्धमूलक सिद्धान्त की जगह राजा या राज्य की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त प्रकट होने लगा। ब्राह्मण ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उत्तर वैदिक राजा देवता या देवता की संतान नहीं, वरन् देवताओं जैसा माना जाने लगा था। उनके लिए देवताओं के गुणों या शक्तियों को प्राप्त करना अनिवार्य था। राजा के लिए तीन प्रकार के यज्ञों का अलग से विधान किया गया था। राजसूय यज्ञ राजपद के लिए, गौमेध यज्ञ पशुधन की प्राप्ति के लिए तथा अश्वमेध साम्राज्य विस्तार के लिए आवश्यक बन गया था।

### 1.3.10 श्रुति

श्रुति का शाब्दिक अर्थ है- 'जो सुना गया है', श्रुति साहित्य के अंतर्गत उन ग्रंथों को सम्मिलित किया जाता है जिनके मन्त्र श्रुवेदिक काल के मनीषियों को प्रत्यक्षतः प्रकट किये गये थे। इन ग्रंथों के अंतर्गत संहिता ग्रंथ आते हैं। संहिताओं की संख्या चार है, इनमें प्रथम तीन संहिताएँ वैदिक धर्म के यज्ञ अनुष्ठानों से संबंधित हैं यद्यपि इनमें अन्यान्य सूचनाएँ भी मिलती हैं-

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:- वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'जानना' सामान्यतः इसका अर्थ 'ज्ञान' से है। वेदों की संख्या चार है, यथा- ऋक, साम, यजुः और अथर्व। प्रथम तीन कभी कभी त्रयी कहे जाते हैं और सर्वप्रथम यहीं धर्म ग्रंथ माने गये। ऋग्वेद प्राचीनतम है इसमें 10 मण्डल तथा कुल मिलाकर 1028 सूक्त हैं। प्रत्येक सूक्त में रचयिता ऋषि का नाम अथवा गो., स्तुति की जाने वाले देवता का नाम तथा विनियो मिलता है। होत नामक पुरोहित इनका पाठ करते थे। 2 से 7 तक मण्डल सर्वाधिक प्राचीन हैं जबकि 10 वॉ मण्डल उत्तर-वैदिक काल में जुड़ा प्रतीत होता है। सामवेद में शायद ही कोई स्वतन्त्र विषय है केवल 75 मन्त्रों को छोड़कर इसके सभी मन्त्र सीधे ऋग्वेद से लिये गये हैं। इसके मन्त्र सोमयज्ञ के अवसर पर उद्गातृ नामक एक विशेष वर्ग के पुरोहितों द्वारा गाये जाते थे। सामवेद, गायन से सम्बन्धित है और भारतीय संगीत का जन्म सामवेद से ही माना जाता है। यजुः का अर्थ यज्ञ है, इस वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ विधियों का प्रतिपादन किया गया है इसीलिए यह यजुर्वेद कहलाया। यजुर्वेद में ऋग्वेद की ऋचाओं के अतिरिक्त मौलिक गद्य के मन्त्र भी थे जिन्हें अध्वर्यु नामक पुरोहित पढ़ते थे। इस संहिता में दो भिन्न पाठ हैं- तैत्तिरीय, मैत्रायनी और काठन पाठान्तर-ग्रन्थों में सुरक्षित कृष्णयजुर्वेदसंहिता और वाजसनेयी पाठान्तरग्रन्थ में सुरक्षित शुक्लयजुर्वेद संहिता उपरोक्त संहिताओं के बहुत समय बाद अथर्ववेद ने धर्म ग्रन्थ की स्वीकृति प्राप्त की। इसमें 40 अध्ययन हैं। इसके विषयों में ब्रह्म ज्ञान, समाज निष्ठा, औषधि प्रयोग, शत्रु दमन, रोग निवारण, जन्म मन्त्र, रोना टोटका आदि सम्मिलित हैं। विषय विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस समय तक आर्य और अनार्य विचारधाराओं का समन्वय हो गया था।

### 1.3.11 स्मृति

स्मृति से तात्पर्य है वह जो स्मरण रखा गया है। इसका यह भी अर्थ लिया जाता है कि जिसे समाज ने परम्परा से स्मरण कर समाज को दिया है, इसका प्रयोग धर्मशास्त्र के लिए किया गया है। इन स्मृतियों के प्रधानतया तीन वर्ण विषय है- आचार, व्यवहार, प्रायश्चित। आचार का तात्पर्य आचरण से है। इसमें चारों वर्णों और चारों आश्रमों के कर्तव्य कर्मों का विधान पाया जाता है। समाज में चारों वर्णों का क्या दायित्व है इसे इसमें स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही समाज तथा व्यक्ति को आश्रमों से कैसे गुजरना है उनका क्या कर्तव्य है इसे व्यक्त किया गया है?

आचार के बाद व्यवहार एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका तात्पर्य विधि से है। व्यवहार के अन्तर्गत आज के समस्त दीवानी व फौजदारी कानून आ जाते हैं। विविध कानूनों की इसमें विषय व्याख्या की गयी है। तदोपरान्त प्रायश्चित का विधान है। इसमें धार्मिक एवं सामाजिक कृत्यों के न करने से या विपरीत ढंग से करने से जिन पापों का प्रादुर्भाव होता है, उसके प्रायश्चित का विधान दिया गया है। भारतीय समाज की व्यवस्था करना स्मृतिकारों का प्रमुख कार्य था, जिसे उन्होंने विविध स्मृतियों में किया है। स्मृतिकारों को यह ज्ञान था कि समाज और व्यक्ति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। समाज की उन्नति व्यक्ति पर निर्भर है तो व्यक्ति की उन्नति समाज पर। इन सबको दृष्टि में रखते हुए स्मृतियों ने समाज के अभ्युदय के निर्मित अनेक व्यापक नियमों का निर्माण किया है, जिनसे समाज के साथ ही व्यक्ति का विकास भी सम्भव है।

स्मृति ग्रन्थ पद्य में लिखे गये हैं। स्मृतियों में मनुस्मृति सबसे प्राचीन तथा प्रामाणिक मानी जाती है। व्यूहलर के अनुसार इसकी रचना ई0 पू0 दूसरी शताब्दी से लेकर ई0 की दूसरी शताब्दी के मध्य हुई थी। अन्य स्मृतियों में याज्ञवल्क्य, नार, बृहस्पति, कात्यायन, देवल आदि की स्मृतियाँ उल्लेखनीय हैं। मनुस्मृति को शुंग काल का मानक ग्रन्थ माना जाता है। इसके अध्ययन से शंगकालन भारत की राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक दशा का बोध होता है। नारद स्मृति गुप्त युग के विषय में महत्वपूर्ण सूचनायें प्रदान करती हैं कालान्तर में इन पर अनेक विद्वानों द्वारा टीकायें लिखी गयीं। मनुस्मृति के प्रमुख टीकाकार वररूचि, मेघतिथि, गोविन्दराज तथा कुल्लूक भट्ट हैं। विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, तथा अपरार्क, याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रमुख टीकाकार हैं। इन टीकाओं से भी हम हिन्दू समाज के विविध पक्षों के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त करते हैं।

### 1.3.12 सप्तसैन्धव

सिन्धु घाटी की सभ्यता के पतन के उपरान्त भारत में सिन्धु और उसके आस पास के मैदान में एक भिन्न ग्रामीण संस्कृति का आभिर्भाव हुआ उसे साहित्य के आधार पर “वैदिक सभ्यता” पुरातात्विक खोज के आधार पर “हडप्पोतर ताम्र पाषाण सभ्यता” और संस्कृति निर्माता के आधार पर “आर्य सभ्यता” के नाम से जाना जाता है चूंकि इस सभ्यता के

निर्माता आर्य थे और इस सभ्यता की जानकारी हमें ऋग्वेद में मिलती है यही कारण है कि इस सभ्यता को “आर्य सभ्यता” या “वैदिक सभ्यता” कहा जाता है।

आर्यों का निवास स्थान कहां था? यह प्राचीन भारतीय इतिहास का सबसे विवादास्पद पक्ष माना जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकारों ने पाँच प्रमुख साधनों का सहारा लिया है, यथा इतिहास, पुरातत्व, शरीर रचना शास्त्र, भाषा शास्त्र और शब्द विकास शास्त्र किन्तु इन साधनों से निष्कर्ष इतने अलग अलग लिये गये हैं कि किसी एक मत पर पहुंचना असंभव सा प्रतीत होता है। अतः इस सम्बन्ध में प्रचलित मतों को मोटे तौर पर दो भागों में बांटकर अध्ययन किया जाता है:-

आर्य भारत के ही मूल निवासी थे।

आर्य भारत से बाहर के निवासी थे।

### 1.3.12.1 आर्य ब्रह्मर्षि प्रदेश के ही मूल निवासी थे

इस मत के समर्थक डॉ० गंगानाथ झा का मानना है कि ऋग्वेद में आर्यों के कहीं बाहर से आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इसलिए वैदिक साहित्य में आर्य जाति के लोग भारत के ही मूल निवासी थे। जिन नदियों एवं स्थानों के नाम का विवरण ऋग्वेद में मिलता है उनकी पहचान का विवरण ऋग्वेद में मिलता है, उनकी पहचान भारतीय नदियों और स्थानों से की जाती है।

### 1.3.12.2 आर्यों का मूल निवास स्थान सप्त सैन्धव का मैदान था

इस मत के समर्थक डॉ० सम्पूर्णानन्द थे। उनके अनुसार आर्यों का आदि देश सप्त सैन्धव का मैदान था। इस मत का समर्थन विद्वान डॉ० ए० सी० दास भट्ट करते हैं। इन विद्वानों ने अपने मत का आधार ऋग्वेद में वर्णित नदियों और स्थानों को बनाया। ऋग्वेद में सरस्वती, घाघरा, सिन्धु, झेलम, रावी, व्यास, सतलज, काबुल, कुर्रम, सप्त सिन्धु नदियों का विवरण मिलता है। ऋग्वेद में सप्त सिन्धु को आर्यों का स्वर्ग कहा गया है। भाषा के आधार पर वैदिक शब्द का प्रचलन भारतीय भाषा में सबसे अधिक सिन्धु और गंगा के मैदान में देखा गया है।

#### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. भरत जन के नाम पर ही हमारे देश का नाम “भारत” पड़ा
2. सिन्धु द्वारा सिंचित प्रदेश को “इण्डिया” नाम सबसे पहले अखमनी ईरानियों द्वारा दिया गया
3. वेद शब्द ‘विद्’ धातु से बना है जिसका अर्थ है “जानना”
4. बोगजकोई अभिलेख में हिट्टाइट और मिटानी शासकों के बीच विवाह सन्धि का उल्लेख मिलता है
5. ऋग्वैदिक कालीन धार्मिक जीवन जटिल कर्मकाण्डों से भरा था

6. स्मृतियों में मनुस्मृति सबसे नवीन तथा प्रामाणिक मानी जाती है

## 1.4 सारांश

उपरोक्त विविध शीर्षको के अन्तर्गत आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रचलित अनेक विचार, संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप सप्त सैन्धव, दशराज युद्ध, भारतवर्ष, पंचजन, हरयूपिया, दिलबन तथा मकन, बोगजकोई, मातृदेवी, सभा- समिति, यज्ञ, श्रुति, स्मृति आदि के बारे में पर्याप्त जानकारी रखते और प्राचीन भारतीय इतिहास को भंगी प्रकार समझ सकते हैं।

## 1.5 तकनीकी शब्दावली

जन - यह ईरानी जन्तु शब्द से निकला है, जिसका तात्पर्य कबीले से है  
 श्रुति - श्रुति का शाब्दिक अर्थ है- ' जो सुना गया है'  
 स्मृति - स्मृति से तात्पर्य है वह जो स्मरण रखा गया है।  
 सप्तसैन्धव- सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों का क्षेत्र

## 1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 4 का उत्तर- असत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 5 का उत्तर- असत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 6 का उत्तर- असत्य

## 1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।  
 के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।  
 रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2010  
 वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस०चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005  
 ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984  
 ए.एलबाशम: अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972  
[www.mohenjodaro.net/](http://www.mohenjodaro.net/)

---

## 1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005

ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीनभारतीयसंस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984

ए.एलबाशम: अब्दुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972

[www.mohenjodaro.net/](http://www.mohenjodaro.net/)

Allchin, Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation, Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi, 1993

Bisht, R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90, pp. 71-82

Chakraborti, D.K, The External Trade of the Harappans, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1990

Rao, S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House, New Delhi, 1973

Gupta, S.P(ed), The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation, Kusumanjali Publishers, Jodhpur, 1995

Vats, M.S, Excavations at Harappa, vol.1, Archaeological Survey of India, New Delhi, 1999

Wheeler, R.E.M, The Indus Civilisation, 3<sup>rd</sup> edn. Cambridge University Press, Bentley House, London, 1968

---

## 1.9 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. उपरोक्त इकाई के आधार पर वैदिक कालीन जीवन पर प्रकाश डालिए।

## इकाई दो - कर्म का सिद्धान्त ,वेदांग ,वेदांत ,सप्तांग, दण्डनीति ,नियोग ,तपस्या ,सन्देहवाद ,भौतिकवाद, आजीविक ,आस्तिकवाद , प्रमाणवाद

- 
- 2.1 प्रस्तावना
  - 2.2 उद्देश्य
  - 2.3.0 संकल्पनाएँ, विचार तथा शब्दावली
    - 2.3.1 वेदान्त
    - 2.3.2 कर्म का सिद्धान्त
    - 2.3.3 नियोग
    - 2.3.4 आजीविक
    - 2.3.5 प्रमाणवाद
    - 2.3.6 वेदांग
      - 2.3.6.1 शिक्षा
      - 2.3.6.2 कल्प
        - 2.3.6.2.1 श्रौत सूत्र
        - 2.3.6.2.2 गृह्य सूत्र
        - 2.3.6.2.3 धर्म सूत्र
      - 2.3.6.3 व्याकरण
      - 2.3.6.4 निरुक्त
      - 2.3.6.5 छन्द
      - 2.3.6.6 ज्योतिष
    - 2.3.7 सप्तांग सिद्धान्त
    - 2.3.8 तपस्या
    - 2.3.9 संदेहवाद एवं भौतिकवाद
    - 2.3.10 आस्तिकवाद
    - 2.3.11 दण्ड नीति
  - 2.4 सारांश
  - 2.5 तकनीकी शब्दावली
  - 2.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
  - 2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
  - 2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
  - 2.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के स्रोत के रूप में हमें विभिन्न साहित्यिक, पुरातात्विक एवं धार्मिक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। इस साक्ष्यों से माध्यम से ही हम प्राचीन भारत की कला, समाज, अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक जीवन आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इन साक्ष्यों के माध्यम से हमें यह भी ज्ञात होता है कि किस प्रकार भारतीय समाज में कला, संस्कृति, व्यापार-वाणिज्य, कृषि आदि का क्रमिक विकास सम्भव हो सका।

प्राचीन भारतीय समाज में अनेक परम्पराएं विचार एवं रीतियाँ प्रचलित थीं जो उस समय के समाज के विविध पक्षों के उत्थान के विषय में जानकारी प्रस्तुत करती हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए उस समय के समाज में व्याप्त विभिन्न संकल्पनाओं विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। इनके अभाव में आप प्राचीन भारतीय शासको, समाज, कला धर्म, संस्कृति की पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इस पाठ में इसी बात को ध्यान में रखकर आप प्राचीन भारतीय इतिहास का भलीभाँति अध्ययन कर पायेंगे।

## 2.2 उद्देश्य

इस पाठ/इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राचीन में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाओं, विचार एवं शब्दावली के ज्ञान से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रकृत के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाएँ।
2. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न विचार
3. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न शब्दावली

### 2.3.0 संकल्पनाएँ, विचार तथा शब्दावली

आगे आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में बारबार ब्रयुक्त होने वाली कुछ संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय दिया गया है, आप इनका अध्ययन, मनन कर आत्मसात करने का प्रयत्न करें।

### 2.3.1 वेदान्त

वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषद् को वेदान्त कहा जाता है। उपनिषद् मुख्यतः ज्ञानमार्गी रचनायें हैं, जिनमें हम वैदिक चिन्तन की चरम परिणति पाते हैं। इनका मुख्य विषय ब्रह्मविधा का प्रतिपदन है। इस प्रकार उपनिषद् वह साहित्य है, जिनमें रहस्यात्मक ज्ञान एवं सिद्धान्त का संकलन है। डाउसन ने इसे रहस्यात्मक उपदेश बताया है।

मुक्तिकोपनिषद् में 108 उपनिषदों का उल्लेख मिलता है। शंकराचार्य ने केवल 10 उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है। वे ही प्राचीनतम एवं प्रामाणिक माने जाते हैं। उपनिषद् पूर्णतया दार्शनिक ग्रन्थ हैं, जिनका मुख्य ध्येय ज्ञान की खोज है। ये बहुत देववाद के स्थान पर “परब्रह्मण” की प्रतिष्ठा करते हैं। यज्ञीय कर्मकाण्डों तथा पशुबलि की इनमें मिलती है तथा उनके स्थान पर ज्ञान यज्ञ का प्रतिपादन हुआ है। छान्दोग्योपनिषद् में “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” अर्थात् ब्रह्म ही सब कुछ है, कहकर अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की गयी है।

सृष्टि का सारभूत तत्व “ब्रह्मण” तथा व्यक्ति के शरीर का सारभूत “तत्त्व” आत्मन है। उपनिषदों में इन दोनों का तादात्म्य स्थापित किया गया है। आत्मा ही ब्रह्म है, वह (ब्रह्म) तुम्हीं हो (तत् त्वम् असि) प्रसिद्ध औपनिषदिक उक्तियाँ मिलती हैं। जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य आत्मा या ब्रह्म का साक्षात्कार है। उपनिषदों में सर्वत्र सत्य को खोजने की सच्ची उत्कण्ठा दिखाई देती है।

### 2.3.2 कर्म का सिद्धान्त

कर्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त का सबसे प्रथम और स्पष्ट कथन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि मृत्यु होने पर आत्मा शरीर के बाहर निकल जाती है और व्यक्ति के जीवन भर के संचित कर्म उसके साथ जाते हैं और इसी से निर्णीत होता है कि अगले जन्म में आत्मा कौन सी योनि धारण करेगी। इसी ग्रन्थ में प्रश्नों का उत्तर देते हुये याज्ञवल्क्य ने बताया है कि मनुष्य का भावी जीवन उसी के अपने कर्मों से निर्धारित होता है। सत्कर्मों के फल अच्छे होते हैं और दुष्कर्मों के बुरे। कौशीतकी उपनिषद् के अनुसार आत्मा अपने कर्म और ज्ञान के अनुरूप अगली योनि पाती है वहीं कठोपनिषद् में बताया गया है कि आचरण और ज्ञान के अनुसार आत्मा (यथ कर्म यथा श्रुतम्) नई योनि धारण कर सकती है। महाभारत में कहा गया है कि प्राणी सदैव कर्म बंधन में बंधा रहता है। आत्मा बार बार अपने संचित कर्मभार सहित जन्म पाती है और यह कर्मग्रस्त जीवन का ही फल होता है कि किसी को सुख-दुःख तथा भाव-अभाव का सामना करना पड़ता है। ज्ञान के सोपान का अवलम्ब लेकर ही कोई इस स्थिति को प्राप्त कर पाता है। जहाँ न दुःख है, न जन्म मरण और न पुनर्जन्म। कर्म के विषय का विवेचन स्मृतियों में भी मिलता है। मनु के अनुसार हमारे सम्पूर्ण कर्म मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न होता है और अच्छे तथा बुरे परिणामों को जन्म देता है। मनुष्य के जीवन की विभिन्न गतियों के लिए ये कर्म ही कारण होते हैं। शुक्रनीति कहती

हैं कि मनुष्य के कर्म केवल उसके भावी जन्म के भाव का ही नहीं अपितु उसके जीवन की मनःस्थिति तक का निर्धारण करते हैं। पूर्व जन्मों में किये गये कर्मों के प्रभाव के अनुरूप मनुष्य की सद्गुणों या दुर्गुणों की ओर होने वाली प्रवृत्ति का निर्माण होता है। पंतजलि के मतानुसार ज्ञान ही वह साधन है जिसके द्वारा कर्मों का तथा उनसे उद्भूत होने वाले जन्म मरण के उस अनन्त चक्र का अन्त किया जा सकता है जिसके अन्तर्गत कर्म और जन्म बार बार एक दूसरे को उत्पन्न करते रहते हैं। गीता में कहा गया है कि जीवन को वर्तमान अवस्था अतीत के जन्मों और कर्मों तथा भावी जीवनो के बीच सन्धि अवस्था है। स्वयं आत्मा न तो कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। जब शरीर मरण को प्राप्त होता है, आत्मा का मरण नहीं होता वरन् नया शरीर धारण कर लेती है। जिसने जन्म लिया है, उसका मरण भी एक दिन अवश्य होगा और यदि वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता है तो उसका फिर से जन्म भी अवश्यम्भावी है। मुक्त हुए बिना कोई मनुष्य एक क्षण भी कोई न कोई कर्म किये बिना नहीं रह सकता। गीता का केन्द्रीय विषय है “ अपने कर्तव्य का पालन करो, सब फल का अवलम्बन करो, अकर्मण्य मत बनो।” हिन्दू चिन्तन धारा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य इसलिए जन्मा है, ताकि वह पुनर्जन्म के कर्मों का प्रक्षालन कर सके तथा अपने जीवन में क्रिया कलापों के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कर सके।

### 2.3.3 नियोग

भारतीय इतिहास में नियोग प्रथा वैदिककालीन है। जब पति विहीन स्त्री किसी विशेष पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर विवाह करती थी तब ऐसा विवाह नियोग के नाम से अभिहित किया गया था। वैदिक काल में विवाह पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। ऋग्वेद की एक दाह संस्कार सम्बन्धी ऋचा में अपने मृत पति की चिता से निकल कर बैठी विधवा के लिए यह निर्देश किया गया है कि जिसके पास तुम बैठी हो, वह निजीव है जिसने तुम्हारा हाथ पकड़ा और प्रेम किया, उस पति के प्रति तुम्हारा “पत्नीत्व” पूरा हो चुका है। देवर को पति के रूप में वरण करने के लिए विधवा को परामर्श किया गया है।

उत्तर वैदिककालीन अनेक ग्रन्थों में ऐसी पुत्रहीन विधवाओं का उल्लेख है जो पुत्र प्राप्ति के लिए अपने देवर को पति बनाती हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि उसके निकट जाओ जो तुम्हारा हाथ पकड़ता है और तुम्हें प्रेम करता है। तुम अब उससे पति पत्नी के सम्बन्ध में प्रविष्ट हो चुकी है। इस सम्बन्ध में गौतम का कथन है कि पतिहीन स्त्री यदि पुत्र की कामना करती है तो उसे देवर से प्राप्त करें। मनु ने लिखा है कि सन्तान की इच्छा रखने वाली विधवा मृत पति के भाई अथवा सपिण्ड से गमन कर सकती है। उसके अनुसार नियोग से सन्तान उत्पन्न करने वाली नारी क्षेत्र थी। उसमें नियोग से पैदा होने वाला पुत्र “क्षेत्रक” विधवा के मृत पति को क्षेत्रीय या क्षेत्रिक तथा पुत्र उत्पन्न करने के लिए नियुक्त देवर आदि सपिण्ड पुरुष नियोगी है। महाभारत में नारी को पति के अभाव में अपने देवर

को पति बनाने का निदेश दिया है। इसी तरह का मत याज्ञवल्क्य, नारद, बौधयन आदि धर्मशास्त्रकारों ने व्यक्त किया है। कभी-कभी रूग्ण अथवा नपुंसक पति के कारण पुत्र की लालसा के लिए स्त्री द्वारा नियोग किया जाता था। सम्भोग की दृष्टि से किया गया नियोग निन्दनीय था तथा इससे उत्पन्न पुत्र “जारज” कहा जाता था, जिसे सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता था। कौटिल्य के अनुसार पुत्रहीन विधवा ब्राह्मणी अन्य सगोत्र का मातृ बन्धु पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कर सकती थी, जो उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता था।

महाभारत में नियोग प्रथा को पुत्र प्राप्ति के लिए धर्म सम्मत माना गया है। महर्षि व्यास ने सत्यवती की विधवा पुत्र बन्धुओं के साथ नियोग किया था। परशुराम ने जब अनेकानेक क्षत्रियों का बध कर डाला तब बहुत सी क्षत्रिय नारियाँ ब्राह्मणों के यहाँ पुत्र उत्पन्न करने गई थीं। बौद्ध साहित्य से भी नियोग प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। एक जातक के अनुसार एक राजा के मरने पर उसकी पत्नी ने राया पुरोहित से विवाह कर लिया। उस युग में स्त्रियों की अवस्था नैतिक दृष्टि से अत्यन्त निम्न हो गयी थी। एक स्त्री ने राजा को उत्तर दिया था, पुत्र तो गोद में है, पति रास्ते रास्ते सुलभ है। इस प्रकार उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में उनका नैतिक पतन हो चुका था तथा उन पर कोई नियन्त्रण और बन्धन हीं रह गया था।

हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने समाज की व्यवस्था को सुदृढता और स्वच्छता प्रदान की तथा उसे पतन की ओर अग्रसर होने से रोका। स्मृतिकारों ने इस प्रथा को सामाजिक, नैतिक और धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त निम्न माना तथा समाज में इसके व्यवहार को निषिद्ध कर दिया। हिन्दू समाज में पतिहीन स्त्री के लिए अनुचरण का जीवन ही श्रेयस्कर और आदर्श माना गया है। व्यावहारिक रूप से भी स्त्री स्वयं नियोग को अस्वीकार करती रही तथा अपना जीवन पूर्णतः धार्मिक और नैतिक मार्ग पर अग्रसर करती रहीं।

### 2.3.4 आजीविक

भारत में छठी सदी ई० पू० के समय जैन और बौद्ध धर्म के समसामयिक आजीविक धर्म का उत्कर्ष हुआ, जिसमें उत्तर भारत के तत्कालीन समाज की अपने सिद्धान्तों और मतों से आजीविक धर्म भी था। इस धर्म के उदय में नन्दवच्छ नामक भिक्षु का प्रधान हाथ था। वैसे मक्खलि गोशाल आजीविक सम्प्रदाय के प्रवर्तक और उन्नायक थे। वे बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। सुमंगल विलासिनी नामक ग्रन्थ से विदित होता है कि वे दास पुत्र थे। उनका नाम मक्खल गोशाल इसलिए पड़ा क्योंकि उनके पिता गोशाला में नियुक्त किये गये थे और वहीं गोशाल का जन्म हुआ था। पाणिनि के अनुसार गोशाल परिवारजक थे और उनके अनुयायी दैष्टिका वे महावीर के मित्र भी थे और छह वर्षों तक उनके साथ थे। महावीर और बुद्ध की तरह उन्होंने भी पूर्ववर्ती भिक्षुओं, आचार्यों और उनके सम्प्रदायों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया था। बौद्ध और जैन अनुश्रुतियों से विदित

होता है कि गोशाल की मृत्यु बुद्ध की मृत्यु के एक वर्ष पहले 484 ई०पू० के लगभग हुई थी। आजीवक का अर्थ था जीविका के लिए भिक्षु बनना। इस धर्म का प्रचार प्रसार जैन और बौद्ध धर्म के साथ समाज में होने लगा। साथ ही इस धर्म के सिद्धान्त भी समाज के अन्य वर्ग के लोग मानने लगे जिनका प्रसार पश्चिम में सौराष्ट्र से लेकर पूरब में अंग तक था। कालान्तर में सम्राट अशोक और दशरथ दोनों ने इसके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की, इस धर्म को अपना संरक्षण प्रदान किया तथा आजीविकों को गुहायें प्रदान कीं। अशोक ने बराबर की पहाड़ी में इनके लिए गुहाओं का निर्माण करवाया है तथा अपने 7 वें स्तम्भ लेख में अन्य सम्प्रदायों के साथ आजीवक सम्प्रदाय का भी उल्लेख किया है। मौर्य शासक दशरथ की भी आजीविकों के प्रति सद्भावना और उदारता थी। उसने नागार्जुनी पहाड़ी में आजीविकों के लिए तीन गुहाएं निर्मित कराई थीं। छठी सदी के लेखक वराहमिहिर ने भी आजीवक सम्प्रदाय का वर्णन किया है।

गोशाल की अपने अनुयायियों के लिए शिक्षा थी कि अच्छे या बुरे किसी प्रकार के कर्म का कोई परिणाम नहीं होता। बुराई से मुक्ति मनुष्य को अपने कर्मों से नहीं बल्कि जीवन और मृत्यु से निरन्तर गतिशील चक्र से मिलती है। उनका सिद्धान्त कर्म और कर्मफल दोनों का निराकरण था। वे भाग्यवाद में विश्वास करते थे। उनके अनुसार जीवन नियति के वश में है न उसमें शक्ति है और न ऐश्वर्य। वे अपने बल पर कुछ नहीं कर सकते। वे अकर्मण्य हैं। भाग्य और संयोग से ही उनका जन्म होता है।

आजीवक मतानुयायी नग्न रहा करते थे और एकान्तवास करते थे उनके रहन सहन, आचार विचार जैनियों से मिलते थे, लेकिन बाद में दोनों धर्मों में मतभेद बढ़ता गया। गोशाल ने अपने प्रचार का प्रमुख केन्द्र श्रावस्ती बनाया और विभिन्न स्थानों पर जाकर अपने मत का प्रचार किया। जातकों से विदित होता है कि आजीवक मत का प्रचार सर्वप्रथम मागधी एवं प्राकृत भाषा में हुआ था। परवर्तीकाल में आजीवक सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त हो गया, एक उपासक और दूसरा तापसा।

महानारद जातक में नियतिवाद की विस्तृत चर्चा मिलती है। आजीवक भिक्षुओं का जीवन कठोर नियम और आचार में बंधा हुआ था। ये बौद्धों और निग्रन्थों की तरह सामुदायिक आधार पर रहा करते थे। विनयपिटक के अनुसार उनके आवास का नाम “सेम्य” था। आजीवक शुद्ध और पावन आचार तथा नियम पर आधारित था अघोर और घृणित कार्य के लिए इसमें कोई स्थान नहीं था।

### 2.3.5 प्रमाणवाद

प्रभाकर के अनुसार प्रमा अनुभूति है। अनुभूति स्वतः प्रकाश होती है। अर्थ की अनुभूति सदा यथार्थ होती है और स्वतः प्रमाण होती है। कुमारिल के अनुसार प्रमा दोषरहित कारण सामग्री से उत्पन्न अवाधित अर्थज्ञान है। प्रमा अज्ञात तथ सत्य पदार्थ का ज्ञान है। प्रमा के कारण को प्रमाण

करते हैं। पार्थसारथि मिश्र के अनुसार प्रमा को कारण दोषरहित, बाधक ज्ञानरहित, अग्रहीतग्राहि और यथार्थ होना चाहिए। जिस ज्ञान की उत्पन्न करने वाली सामग्री में कोई दोष न हो, जो ज्ञान अन्य ज्ञान द्वारा बाधित न हो, जिस ज्ञान में पूर्व में अज्ञात वस्तु की अनुभूति न हो, जो ज्ञान सत्य वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो, वह ज्ञान प्रमा है और उसका कारण प्रमाण है।

मीमांसक स्वतः प्रामाण्यवाद को मानते हैं। ज्ञान स्वतः प्रमाण होता है। प्रभाकर और कुमारिल दोनों स्वतः प्रामाण्यवादी हैं। ज्ञान का प्रामाण्य बाहर से नहीं आता। ज्ञान की प्रामाणिकता अन्य ज्ञान से सिद्ध नहीं होती। कुमारिल के अनुसार ज्ञान कारण दोषरहित एवं बाधक ज्ञानरहित सत्य वस्तु का ज्ञान होता है और जो सामग्री इस ज्ञान को उत्पन्न करती है वहीं सामग्री साथ ही इस ज्ञान के प्रामाण्य को भी उत्पन्न करती है। मीमांसकों के अनुसार प्रामाण्य की उत्पत्ति और प्रामाण्य का ज्ञान दोनों स्वतः होते हैं। ज्ञान का प्रामाण्य और इस प्रामाण्य का ज्ञान दोनों ज्ञान के साथ ही उदित होते हैं और उसी सामग्री से उत्पन्न होते हैं जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान का अप्रामाण्य “परतः” होता है, बाहर से आता है। लोक व्यवहार ज्ञान को स्वतः प्रमाण और यथार्थ मान कर ही चलता है। सत्य सामान्य व्यवहार है, भ्रम असामान्य है, प्रामाण्य स्वाभाविक है, अप्रामाण्य अपवाद है।

प्रामाण्यवाद के विषय में वैचारिक संघर्ष दिखाई देता है। मीमांसक स्वतः प्रामाण्यवादी हैं और नैयाचिक परतः प्रामाण्यवादी। नैयाचिकों के अनुसार उत्पत्ति के समय ही ज्ञान उत्पन्न होता है। उस समय यह प्रामाण्य और अप्रामाण्य से विरहित तटस्थ रूप में होता है।

न्याय के अनुसार “यथार्थता” ज्ञान का स्वरूप है। ज्ञान की यथार्थता के विषय कैसे पता चले? यदि ज्ञान में सफल प्रवृत्ति सामर्थ्य है तो उसमें प्रामाण्य और यदि यह सामर्थ्य नहीं है तो उसमें अप्रामाण्य है। घट ज्ञान के परीक्षण के लिए यदि उसमें पानी भर जाये तो वह घट है अन्यथा घट नहीं है। सफल प्रवृत्ति सामर्थ्य से ज्ञान में प्रामाण्य का अनुदान और असामर्थ्य से अप्रामाण्य का अनुमान किया जाता है। ज्ञान को उत्पन्न करने वाली कारण सामग्री के गुण के कारण ज्ञान में प्रामाण्य और कारण सामग्री के दोष के कारण ज्ञान में अप्रामाण्य उत्पन्न होता है।

मीमांसकों के अनुसार यदि ज्ञान में स्वतः प्रामाण्य न हो तो ज्ञान कभी भी प्रामाणिक नहीं हो सकता। ज्ञान में स्वतः प्रामाण्य स्वीकार करना अनिवार्य है। कारण गुण, यथार्थता एवं सफल प्रवृत्ति जिनमें न्याय ने प्रामाण्य की उत्पत्ति का कारण माना है, वस्तुतः ज्ञान की कारण सामग्री में अन्तर्मुक्त है। कारण गुण वास्तव में कारण दोष रहितता है। यथार्थता ज्ञान का स्वरूप है। यह कारण सामग्री ज्ञान को उत्पन्न करती है और उसके साथ ही उसके प्रामाण्य को तथा उस प्रामाण्य के ज्ञान को भी उत्पन्न करती है। ज्ञान को स्वतः प्रमाण माना है एवं ज्ञान को अपरोक्ष अनुभूति स्वीकार किया है।

### 2.3.6 वेदांग

वैदिक साहित्य अत्यन्त विशाल तथा कठिन था इसे समझना सामान्य बुद्धि से परे था। वेद के अर्थ को सरलता से समझने तथा वैदिक कर्मकाण्डों के प्रतिपादन में सहायता देने के निमित्त एक नवीन साहित्य की रचना हुई जिसे ‘‘वेदांग’’ कहा जाता है। इसकी संख्या छः हैं।

#### 2.3.6.1 शिक्षा

सायण के अनुसार ‘‘जो स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण के प्रकार का उपदेश देते हैं वह विद्या शिक्षा है इसे वेदरूपी पुरुष की नाक कहा गया है।’’ प्राचीन युग में वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण तथा स्वरों के ज्ञान का बड़ा महत्व था। पाणिनीय शिक्षा में वर्णित है कि ‘स्वर’ अथवा वर्ण से हीन मन्त्र मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण सही अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता। अपितु वह वाकवज्र बनकर यजमान का ही नाश कर डालता है।

#### 2.3.6.2 कल्प

वैदिक यज्ञों की व्याख्या तथा गृहस्थाश्रम के लिए उपयोगी कर्मों के प्रतिपादन करने के निमित्त ‘कल्प’ नाक वेदांग का प्रणायन हुआ। छोटे छोटे वाक्यों में सूत्र बनाकर सभी महत्वपूर्ण विधि विधानों को प्रस्तुत किया गया। सूत्र ग्रन्थों को ही कल्प कहा जाता है। इनकी रचना वैदिक साहित्य के अत्यन्त विस्तृत होने के कारण यज्ञीय नियमों को व्यावहारिक उपयोग के लिए संक्षिप्त बनाने के उद्देश्य से की गयी थी। कल्प सूत्र मुख्यतः चार प्रकार के हैं-

##### 2.3.6.2.1 श्रौत सूत्र

इस सूत्र से यज्ञ के बारे में जानकारी मिलती है। श्रौत सूत्र का एक भाग शुल्ब सूत्र हैं, जिसमें यज्ञ वेदियों के नापने आदि का उल्लेख है। इसी से रेखागणित का प्रारम्भ माना जाता है।

##### 2.3.6.2.2 गृह्य सूत्र

इनमें गृहस्थाश्रम से सम्बन्धित धार्मिक अनुष्ठानों तथा कर्तव्यों का वर्णन मिलता है। गृहस्थाश्रम के संस्कारों, यज्ञों आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन इसमें मिलता है। कौशिक गृह्य सूत्र में चिकित्सा तथा देवी आपदाओं के निवारण के लिए मंत्र दिये गये हैं।

##### 2.3.6.2.3 धर्म सूत्र

इसमें सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक कर्तव्यों का विवरण संग्रहीत है। धर्म सूत्र से सामाजिक व्यवस्था जैसे वर्णश्रम, पुरुषार्थ आदिकी जानकारी मिलती है। धर्मसूत्र के प्रणेता

आपस्तम्ब माने जाते हैं। प्रमुख धर्मसूत्रों वशिष्ठ, मानव, आपस्तम्ब, बोधायन, गौतम धर्मसूत्र इन्हीं से आगे चलकर स्मृति ग्रन्थों का विकास हुआ।

### 2.3.6.3 व्याकरण

व्याकरण का कार्य भाषा को वैज्ञानिक शैली प्रदान करना है। व्याकरण का प्राचीनतम ग्रन्थ पाणिनि कृत अष्टाध्यायी है। पंतजलि ने महाभाष्य और कात्यायन ने कार्तिक लिखा है। शब्दों की मीमांसा करने वाले शास्त्र को व्याकरण कहा गया है। इसके बाद 7 वीं शताब्दी में गयादित्य और वामन द्वारा अष्टाध्यायी पर ‘‘काशिका’’ नामक टीका लिखी गयी।

### 2.3.6.4 निरुक्त

वेद के कठिन शब्दों का संकलन ‘निघण्टु’ नामक ग्रन्थ में हुआ है। इन्हीं की व्याख्या करने के लिए चरक ने ‘निरुक्त की रचना की थी। निरुक्त के प्रथम आचार्य कश्यप ऋषि हैं। वेद के अर्थ को जानने के लिए निरुक्त का ज्ञान आवश्यक है।

### 2.3.6.5 छन्द

पद्यों को चरणों में सूत्रबद्ध करने के लिए छन्द की रचना की गई है। इसे चतुष्पदीवृत्त भी कहा जाता है। पाणिनीय शिक्षा में छन्दों को ‘‘वेदों का पैर’’ बताया गया है। पिंगल द्वारा रचित ग्रन्थ छन्द शास्त्र इसका प्राचीनतम ग्रन्थ है।

### 2.3.6.6 ज्योतिष

ब्रह्माण्ड एवं नक्षत्रों के विषय में भविष्यवाणी ज्योतिष का विषय है। ज्योतिष की सर्वप्राचीन रचना लगधमुनि कृत ‘‘वेदांग ज्योतिष’’ है। वेदांग ज्योतिष ही भारतीय ज्योतिष शास्त्र का मूलाधार है।

### 2.3.7 सप्तांग सिद्धान्त

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य को सात अंगों से युक्त संस्था बताया गया है। ये सात अंग हैं, ‘स्वामी’, ‘अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र। राज्य व्यवस्था सम्बन्धी अधिकांश ग्रन्थों में इन सात अंगों का उल्लेख मिलता है। स्वामी का अर्थ है प्रधान या अधिपति। सम्भवतः राजतंत्र और गणतंत्र दोनों के प्रधान को राजा की संज्ञा दी गयी है क्योंकि कौटिल्य ने राजा पर आने वाली विपत्तियों को बताते समय राजा रहित राज्य की कमजोरियों का भी उल्लेख किया है। अभिलेखों में स्वामी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम शक अभिलेखों में हुआ है। अर्थशास्त्र के अनुसार स्वामी को अभिजात्य प्रज्ञा, उत्साह तथा वैयक्तिक गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। दूसरा अंग है

अमात्य इसका उल्लेख भी सभा ग्रन्थों में इसी रूप में मिलता है अर्थशास्त्र में अमात्य एक स्थायी सेवा संवर्ग के सदस्य है। इसी संवर्ग से प्रधान पुरोहित, मंत्री, समाहर्ता, कोषपाल, दीवानी और फौजदारी मामलों की देख रेख के लिए उत्तरदायी अधिकारी अंतःपुर का प्रबन्ध करने वाले अधिकारी, दूत, विभिन्न विभागों के अधीक्षक आदि उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी थी। अमात्य परिषद् पर प्रकाश डालते हुए कौटिल्य मंत्रियों और अमात्यों के अन्तर का ध्यान रखता है वह संप्रियों की संख्या तीन या चार तक सीमित रखता है लेकिन अमात्यों के सम्बन्ध में कहता है कि इनकी संख्या इनके नियोक्ता की क्षमता पर निर्भर करती है। देश काल और कार्य की आवश्यकता के अनुरूप किसी को भी अमात्य नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन यह बात मंत्रियों पर लागू नहीं की जा सकती। तीसरा अंग जनपद है। इसका शाब्दिक अर्थ जनजातीय बस्ती है। अर्थशास्त्र में परिभाषित जनपद शब्द का तात्पर्य भू भाग और जनसंख्या दोनों से है। उसमें कहा गया है कि भू भाग में अच्छी जलवायु, पशुओं के लिए चरागाह और कम मेहनत से अधिक उपज देने वाली भूमि होनी चाहिए। इसमें परिश्रमी कृषक, बुद्धिमान मालिक, निम्न वर्गों की बहुलता प्रजा स्वामिभक्त तथा निष्ठावान होनी चाहिए। कौटिल्य द्वारा उल्लिखित चौथा अंग 'दुर्ग' है। 'दुर्ग' से किले का बोध होता है। कौटिल्य ने दुर्ग विधान में किले के निर्माण पर तथ दुर्ग निवेश में राजधानी की योजना और विन्यास पर प्रकाश डाला है। कौटिल्य के अनुसार राजधानी केन्द्रीय स्थान पर बनाई जानी चाहिए। इसकी योजना बनाने के समय विभिन्न वर्णों के लोगों, कारीगरों और देवताओं के लिए अलग-अलग क्षेत्र छोड़े जाने चाहिए। 'कोष' कौटिल्य के ग्रन्थ और अन्य स्रोतों में भी पाँचवें अंग के रूप में आया है। कौटिल्य के अनुसार राजा को वैध कोश के अभाव में सेना रखना और उसकी निष्ठा का पात्र बने रहना सम्भव नहीं।

### 2.3.8 तपस्या

ऋग्वेद के एक उत्तरार्द्धीय मंत्र ब्राह्मण से भिन्न पूज्य व्यक्तियों के एक वर्ण का उल्लेख मिलता है। वे व्यक्ति मुनि मौन थे जो वायु को मेखला रूप धारण करते थे और अपने मौन में मग्न पवन परी आरूढ़ हुआ करते थे। एक मुनि, मनुष्य के सभी विचारों से अवगत होता था क्योंकि उसने रूद्र के ऐन्द्रिजालिक पात्र का पान किया है जो सामान्य मानव के लिए गरल है।

अथर्ववेद में एक वर्ग 'वृत्य' का प्रायः उल्लेख है 'वृत्य' अवैदिक उर्वरण शक्ति धर्मास्था का पुजारी था जिसमें धार्मिक संस्कार, नृत्य तथा कशाघात सम्मिलित था। उपनिषद काल तक तपस्या का प्रचलन दूर दूर तक हो गया और यज्ञ के रूढिवादी पुरोहित की अपेक्षा तपस्वियों के प्रभाव से नवीन शिक्षाओं का विकास एवं प्रसार हुआ।

कुछ तपस्वी मनोविकृतियों से पीड़ित एकान्तवासी थे जो गहन अरण्यों के गर्भ में निवास करते थे और क्षुधा, आतप, तृषा, शीत तथा वर्षा की स्वयं प्रदत्त यन्त्रणाओं का उपयोग करते थे।

अन्य तपस्वी उपनगरीय तपोभूमियों में निवास करते थे और कालान्तर में कुछ अल्प विख्यात मुनियों की तरह वहाँ वह स्वेच्छा वैचित्रपूर्ण आत्मोत्पीड़न में संलग्न रहते थे। ग्रीष्म कालीन सूर्य के नीचे धधकती हुई अग्नि ज्वालाओं के मध्य बैठते कंटकों तथा कीलों की शैयाओं पर लेटते, वृक्ष की शाखाओं से अधाशिर घंटों यहाँ तक कि वे निराहार क्षीण हो जाते थे।

जो भी हो विचारों के नये विकास अधिकांश ऐसे तपस्वियों से आये जिनका आत्मानुशासन अपेक्षाकृत कम कठोर था तथा जिनकी प्रधान क्रियायें ध्यान में मानसिक तथा आध्यात्मिक अभ्यास से सम्बन्धित थीं इनमें से कुछ ग्राम तथा नगरों के उपवर्ति क्षेत्रों में एकाकी रहते और कुछ कुटियों के समूह में किसी वयस्क के नेतृत्व में निवास करते थे।

तपस्वी के रहस्यात्मक ज्ञान की आध्यात्मिक व्याख्या भिन्न भिन्न सम्प्रदाय भिन्न भिन्न प्रकार से किया करते थे, किन्तु आधारभूत अनुभव एक ही होता था। वह व्याख्या पश्चिमी साधुओं एवं रहस्यवादियों से अधिक भिन्न नहीं चाहे वे यूनानी, यहूदी, ईसाई अथवा यवन हो, किन्तु भारतीय रहस्यवाद आनन्दानुभूति के निमित्त अपनी विस्तृत पद्धतियों की दृष्टि से अद्वितीय था और जटिल आध्यात्मिक विधान में उस अनुभव की व्याख्याओं पर आश्रित था। जबकि अन्य धर्मों में रहस्यवाद की महत्ता स्थिर नहीं है, भारत वर्ष के धर्मों में वह सर्वथा मौलिक है। वस्तुतः तप संन्यास दुःखमय एवं असनतोषपूर्ण से पलायन का साधनमात्र नहीं था। इसका सकारात्मक प्रभाव था अंशरूप में इसकी प्रेरणा ज्ञान की पिपासा उस पाण्डित्य की पिपासा थी जो चारों वेद मात्र का नहीं वरन् ज्ञान की पिपासा का भी माप था, जिसका अनुभव उस समय किया जा रहा था। भारतवर्ष के लिए यह सम्पूर्णता न्यायोचित नहीं है कि वह अपने पुरातन पाण्डित्य को केवल जीवन का निषेध कहकर उसकी निन्दा करें।

### 2.3.9 संदेहवाद एवं भौतिकवाद

संभवतः नाचिकेता सर्वप्रथम संदेहवादी था जिसका उल्लेख हमें कठोपनिषद के आख्यान में मिलता है। नाचिकेता यहां मृत्यु के देवता यम से संदेहात्मक प्रश्न करता है कि - मृत मनुष्य की अवस्था के विषय में संदेह मिलता है- कुछ के अनुसार वह है, जबकि कुछ के अनुसार वह नहीं है। इस प्रश्न पर यमराज कहते हैं कि पहले देवताओं को भी संदेह था, यह ज्ञान सरल नहीं है। स्पष्टतः नाचिकेता अपने युग में प्रचलित संदेहवाद का प्रतिनिधित्व कर रहे था। इसी काल के आसपास हमें अजित केशकंबलिन का उल्लेख मिलता है जो महात्मा बुद्ध का समकालीन था और भौतिकवाद का प्रवर्तक था। उसका मानना था कि, दान देने की शिक्षा देनेवाले मूर्ख होते हैं क्योंकि अभौतिक श्रेणियों का अस्तित्व नहीं होता है, शरीर की मृत्यु होती है, और मूर्ख तथा बुद्धिमान दोनों समान रूप से नष्ट हो जाते हैं, मृत्यु के बाद इसका कोई अस्तित्व नहीं रहता है। हमें ऐतिहासिक काल में अनेक भौतिकवादी संप्रदाय मिलते हैं। इनमें चार्वाक एवं लोकायतिक महत्वपूर्ण थे। भौतिकवादियों का

मानना था कि सभी धार्मिक साधनाएं तथा सदाचार शास्त्र व्यर्थ हैं मनुष्य को जीवन में यथासंभव आनंद की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। उनका मानना था कि-

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋण कृत्वा घृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः॥

अर्थात् जब तक जीवित रहे मनुष्य को सुख से रहना चाहिए। ऋण लेकर भी घी पीना चाहिए, क्योंकि शरीर के भस्म हो जाने पर पुनः आगमन कैसे हो सकता है।

### 2.3.10 आस्तिकवाद

आस्तिकवाद का तात्पर्य ईश्वर के अस्तित्व पर पूर्ण विश्वास से है। यद्यपि हमें अति प्राचीन काल से ही मानव की अलौकिक शक्तियों पर विश्वास के उदाहरण मृण्मूर्तियों एवं गुहाचित्रों के रूप में मिलते हैं। सिंधु सभ्यता में हमें मातृदेवी एवं पशुपति के अलावा अनेक पशु-पक्षियों एवं वनस्पतियों पर श्रद्धा के उदाहरण मिलते हैं। वैदिककालीन लोग भी प्रकृति की शक्तियों पर आस्था रखते थे, उन्होंने प्रकृति की शक्तियों का मानवीयकरण किया था, लेकिन संगठित रूप से संप्रदाय के रूप में ईश्वर पर पूर्ण विश्वास के उदाहरण हमें सर्वप्रथम भागवत-वासुदेव संप्रदाय और फिर पाशुपत संप्रदाय के रूप में मिलते हैं। आज भी आस्तिक लोग किसी न किसी शक्ति पर विश्वास करते देखे जा सकते हैं।

### 2.3.11 दण्ड नीति

राजव्यवस्था एवं समाज व्यवस्था को बनाये रखने के लिए दण्ड विधान या दण्ड नीति आवश्यक है। प्राचीन भारत में हमें इसके दर्शन सर्वप्रथम स्मृतिशास्त्रों में मिलते हैं। विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर रचित स्मृतियां वस्तुतः कानून की किताबें हैं जिनमें हमें विभिन्न काल-खण्डों में प्रचलित दण्डविधियों एवं दण्डों के स्वरूप की जानकारी मिलती है। स्मृतियों में हमें वर्ण के आधार पर दण्ड निर्धारण का प्रावधान मिलता है। राज्य-न्यायालयों के अलावा पंचायतों का उल्लेख भी मिलता है जो झगड़ों का निर्णय करने के साथ-साथ छोटे-छोटे अपराधों का निबटारा भी करती थीं।

#### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. मनु के अनुसार हमारे सम्पूर्ण कर्म मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न होता है(सत्य/असत्य)
2. मौर्य शासक दशरथ ने नागार्जुनी पहाड़ी में आजीवकों के लिए तीन गुहाएं निर्मित कराई थी(सत्य/असत्य)
3. न्याय के अनुसार “यथार्थता” ज्ञान का स्वरूप है(सत्य/असत्य)
4. गृह्य सूत्र का एक भाग शुल्व सूत्र है(सत्य/असत्य)

5. ब्रह्माण्ड एवं नक्षत्रों के विषय में भविष्यवाणी निरूक्त का विषय है(सत्य/असत्य)  
 6. अर्थशास्त्र में राज्य को आठ अंगों से युक्त संस्था बताया गया है(सत्य/असत्य)

## 2.4 सारांश

उपरोक्त विविध शीर्षको के अन्तर्गत आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रचलित अनेक विचार, संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप सप्त सैन्धव, दशराज युद्ध, भारतवर्ष, पंचजन, हरयूपिया, दिलबन तथा मकन, बोगजकोई, मातृदेवी, सभा- समिति, यज्ञ, श्रुति, स्मृति आदि के बारे में प्रयाप्त जानकारी रखते और प्राचीन भारतीय इतिहास को भंगी प्रकार समझ सकते हैं।

## 2.5 तकनीकी शब्दावली

जातक- महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबंधित कहानियां  
 नियति- भाग्य  
 चतुष्पदी - चार पैरों वाला  
 सप्तांग - सात अंग वाला

## 2.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 4 का उत्तर- असत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 5 का उत्तर- असत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 6 का उत्तर- असत्य

## 2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।  
 के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।  
 रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2010  
 वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस०चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005  
 ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984

---

ए.एलबाशम: अब्दुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972  
[www.mohenjodaro.net/](http://www.mohenjodaro.net/)

---

## 2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अब्दुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972  
[www.mohenjodaro.net/](http://www.mohenjodaro.net/)

Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90,pp. 71-82

Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram Manoharlal,New Delhi,1990

Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995

Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3<sup>rd</sup> edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968

---

## 2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. उपरोक्त इकाई के आधार पर भारतीय दर्शन पर प्रकाश डालिए।

---

**इकाई-तीन : धर्म विजय, स्तूप ,चैत्य,नीतिशास्त्र,धर्मसूत्र  
,तमिल संगम पाली ,प्राकृत,लौकिक संस्कृत,यवन,  
बोधिसत्व ,तीर्थकर, तमिलाहम ,हलदण्ड**

---

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 संकल्पनाए विचार तथा शब्दावली
  - 3.3.1 धर्मविजय
  - 3.3.2 स्तूप
  - 3.3.3 चैत्य
  - 3.3.4 नीति शास्त्र
  - 3.3.5 धर्मसूत्र
  - 3.3.6 तमिल संगम
  - 3.3.7 पाली
  - 3.3.8 प्राकृत
  - 3.3.9 लौकिक साहित्य
  - 3.3.10 यवन
  - 3.3.11 बोधिसत्व
  - 3.3.12 तीर्थकर
- 3.4 सारांश
- 3.5 तकनीकी शब्दावली
- 3.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
- 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के स्रोत के रूप में हमें विभिन्न साहित्यिक, पुरातात्विक एवं धार्मिक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। इस साक्ष्यो से माध्यम से ही हम प्राचीन भारत की कला, समाज, अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक जीवन आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इन साक्ष्यो के माध्यम से हमें यह भी ज्ञात होता है कि किस प्रकार भारतीय समाज में कला, संस्कृति, व्यापार-वाणिज्य, कृषि आदि का क्रमिक विकास सम्भव हो सका।

प्राचीन भारतीय समाज में अनेक परम्पराएं विचार एवं रीतियाँ प्रचलित थीं जो उस समय के समाज के विविध पक्षों के उत्थान के विषय में जानकारी प्रस्तुत करती हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए उस समय के समाज में व्याप्त विभिन्न संकल्पनाओं विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। इनके अभाव में आप प्राचीन भारतीय शासको, समाज, कला धर्म, संस्कृति की पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इस पाठ में इसी बात को ध्यान में रखकर आप प्राचीन भारतीय इतिहास का भलीभाँति अध्ययन कर पायेंगे।

### 3.2 उद्देश्य

इस पाठ/इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राचीन में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाओं, विचार एवं शब्दावली के ज्ञान से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाएँ।
2. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न विचार
3. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न शब्दावली

### 3.3 संकल्पनाएँ विचार तथा शब्दावली

इस इकाई में आपको विभिन्न संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत दिया जा रहा है-

### 3.3.1 धर्मविजय

तेरहवें शिलालेख में धर्म-विजय की चर्चा करते हुए अशोक कहता है कि देवताओं का प्रिय 'धम्म विजय' को सबसे मुख्य विजय समझता है। यह विजय उसे अपने राज्य में तथा सब सीमान्त प्रदेशों में छह सौ योजन तक जिसमें अन्तियोक नामक यवन राजा तथा अन्य चार राजा तुर्मय, अन्तिकिन, मग और अलिक सुन्दर है तथा दक्षिण की ओर चोल, पाण्ड्य और ताम्रपर्णि तक में प्राप्त हुई है। उसी तरह यहाँ राजा के राज्य में यवनों और कम्बोजों में, नभ पत्तियों और नाभक में, वंशानुगत मानते हैं। जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं जाते, वहाँ भी लोग धर्मा देशों और धर्म विधान को सुनकर धर्मा चरण करते हैं और करते रहेंगे। इस प्रकार प्राप्त विजय सर्वत्र प्रेम से सुरभित होती है। वह प्रेम धर्म विजय से प्राप्त होता है। पर वह तुक्ष वस्तु है। देवताओं का प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ा समझता है। यह धर्म लेख इसलिए लिखवाया गया ताकि मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र नये देश विजय करने की इच्छा त्याग दे और जो विजय सिर्फ तीर से प्राप्त हो सकती है उसमें भी वे सहिष्णुता तथा मृत्युदण्ड का ध्यान रखे और वे धर्म विजय को ही वास्तविक विजय समझे। यह इहलोक तथा परलोक दोनों के लिए मंगलकारी है। निःसन्देह अशोक की धम्मविजय सम्बन्धी उपर्युक्त अवधारणा ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रन्थों की एतदविषयक अवधारणाओं से भिन्न है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, महाभारत, कालिदास के रघु वंश आदि में धर्म-विजय का जो विवरण प्राप्त होता है उससे यह स्पष्ट है कि यह एक निश्चित साम्राज्यवादी नीति थी। ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रन्थों की धम्म विजय का तात्पर्य राजनैतिक है। इसमें धर्म विजयी शासक का राजनैतिक प्रभुत्व उसके प्रतिद्वन्दी स्वीकार करते हैं। वह अधीन राजाओं से उपहारदि लेकर ही संतुष्ट हो जाता है तथा उसके राज्य अथवा कोष के ऊपर अधिकार नहीं करता। समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ विजय तथा हर्ष की सिन्ध विजय को इसी अर्थ में धर्म विजय कहा गया है।

कालिदास ने रघु वंश में रघु की धर्म विजय के प्रसंग में बताया है कि उसने महेन्द्र नाथ की लक्ष्मी का अधिग्रहण किया, उसके राज्य का नहीं। बौद्ध साहित्य में भी हम धर्म विजय का स्वरूप राजनैतिक ही पाते हैं। अन्तर मात्र यह है कि बौद्ध धर्म-विजयी युद्ध अथवा दबाव के स्थान पर अपनी उत्कृष्ट नैतिक शक्ति द्वारा सार्वभौम साम्राज्य का स्वामी बन जाता है। विजित शासक उसकी प्रभुसत्ता को स्वीकार करते हुए उसके सामन्त बन जाते हैं। उसकी विजय तथा साम्राज्य वास्तविक होते हैं। यद्यपि उसका स्वरूप मृदु तथा लोकोपकारी होता है। किन्तु अशोक की 'धम्म विजय' इस अर्थ में कदापि नहीं की गयी। तेरहवें अभिलेख में अशोक यह दावा करता है कि उसने अपने तथा अपने पड़ोसी राज्यों में 'धम्म विजय' प्राप्त किया है। अर्थ मात्र यही है कि उसने स्वदेशी तथा विदेशी राज्यों में धम्म विजय का प्रचार किया तथा धम्म प्रचार को उन राज्यों में सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार 'धम्म विजय' शुद्ध रूप से धम्म प्रचार का अभियान थी। यह भी उल्लेखनीय है कि अशोक स्वयं अपने राज्य में भी धर्म-विजय करने का दावा करता है। यदि इसका स्वरूप राजनैतिक होता तो उसके

द्वारा इस प्रकार के दावे का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि उसके साम्राज्य पर उसका पूर्ण अधिकार था। अतः स्पष्ट है कि अशोक की 'धम्म विजय' में युद्ध अथवा हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं था।

### 3.3.2 स्तूप

महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी अस्थियों को आठ भागों में बाँटा गया तथा ऊपर समाधियों का निर्माण किया गया। सामान्यतः इन्हीं को 'स्तूप' कहा जाता है। स्तूप के निर्माण की प्रथा बुद्ध काल के पूर्व की है। 'स्तूप' का शब्दिक अर्थ होता है 'ठेर' या 'चूहा'। चूँकि यह चिता के स्थान पर बनाया जाता था, अतः इसका एक नाम 'चैत्य' भी हो गया। 'स्तूप' का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है, जहाँ अग्नि की उठती हुई ज्वालाओं को स्तूप कहा गया है। बुद्ध के पहले ही स्तूप का सम्बन्ध महापुरुष के साथ जुड़ गया था। ऐसा लगता है कि अपने मौलिक रूप में स्तूप का सम्बन्ध मृतक संस्कार था। शव-दाह के बाद बची हुई अस्थियों को किसी पात्र में रख कर मिट्टी से ढक देने की प्रथा से 'स्तूप' का जन्म हुआ, कालान्तर में बौद्धों ने इसे अपनी संघ पद्धति में अपना लिया।

सात वाहन सम्राटों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति से दक्षिण भारत में बौद्ध कला को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। इस समय नये स्तूपों का जीर्णोद्धार किया गया। उस समय के स्तूपों में अमरावती का स्तूप सर्वाधिक प्रसिद्ध था। दुर्भाग्यवश अब यह स्तूप अपने मूल स्थान से नष्ट हो गया है, तथा इसके अवशेष कलकत्ता, मद्रास एवं लन्दन के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। सर्वप्रथम 1879 ई० में कर्नल मैकेजी को इस स्तूप का पता चला था। उन्होंने यहाँ से प्राप्त शिलापट्टों तथा मूर्तियों के सुन्दर रेखा चित्र तैयार किये थे। 1840 ई० में इलियट द्वारा स्तूप के एक भाग की खुदाई की गई जिसमें कई मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। अमरावती स्तूप की न केवल वेदिका ही संगमरमर की थी, अपितु गुम्बद भी संगमरमर की ही पटियाओं से जड़ा गया था। गुम्बद के शीर्ष पर एक मंजूषा थी जिसके ऊपर लौह-छत्र लगा था। अनुमान किया जाता है कि स्तूप काफी बड़े आकार का रहा होगा। वेदिका स्तम्भों को ईंट की चौकियों पर स्थापित किया गया था।

इन स्तूपों में बुद्ध अथवा उनके प्रमुख शिष्यों की धातु रखी जाती थी। अतः वे बौद्धों की श्रद्धा और उपासना के प्रमुख केन्द्र बन गये।

स्तूप चार प्रकार के बताये गये हैं-

1. शारीरिक - इसमें बुद्ध तथा उनके शिष्यों की अस्थियां तथा उनके शरीर के विविध अंग (दन्त, नख, केश, आदि) रखे जाते थे।
2. पारभौगिक - इनमें बुद्ध द्वारा उपयोग में लाई गयी वस्तुएँ (भिक्षा पात्र, चरण-पादुका, आसन आदि) रखी जाती थी।

3. उद्देशिक - इनमें वे स्तूप आते थे जिन्हें महात्मा बुद्ध के जीवन का घटनाओं से सम्बन्धित अथवा उनकी मात्रा से पविल हुए स्थानों पर स्मृति रूप में निर्मित किया जाता था। ऐसे स्थान बोधगया, लुम्बिनी, सारनाथ, कुशीनगर आदि हैं।

4. संकल्पित - ये छोटें आकार के होते थे और इन्हें बौद्ध तीर्थ स्थलों पर श्रद्धालुओं द्वारा स्थापित किया जाता था। बौद्ध धर्म में इसे पुण्य का काम बताया गया है।

‘स्तूप’ का प्रारम्भिक रूप अर्द्ध गोलाकार मिलता है। इसमें एक चबूतरे (मेधि) के रूप उल्टे कटोरे की आकृति का एक थूहा बनाया जाता है जिसे ‘अंड’ कहते हैं। स्तूप की चोटी सिरे पर चपटी होती थी जिसके ऊपर धातु-पात्र रखा जाता था। इसे ‘हर्मिका’ कहते हैं। यह स्तूप का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग होता था। हर्मिका का अर्थ देवसदन अथवा देवताओं का निवास स्थान होता है। हर्मिका के बीच में एक ‘यष्टि’ लगाई जाती थी। यष्टि के ऊपरी सिरे पर तीन ‘छत्र’ लगाये जाते थे। स्तूप को चारों ओर से बाड़ अथवा दीवाल से घेर दिया जाता था। इसे ‘वेदिका’ कहते हैं। स्तूप तथा वेदिका के बीच परिक्रमा करने के लिए जो खाली स्थान होता था उसे ‘प्रदक्षिणापथ’ कहा जाता था। कालान्तर में वेदिका के चारों दिशाओं में प्रवेशद्वार बनाये गये। प्रवेशद्वार पर मेहरावदार ‘तोरण’ बनाये जाते थे। इस प्रकार मेधि, वेदिका, अण्ड, प्रदक्षिणापथ, हर्मिका, यष्टि, छत्र, तोरण आदि स्तूप वास्तु के प्रमुख अंग होते थे। बी०एस० अग्रवाल ने स्तूप को त्रिलोक का प्रतीक बताया है अशोक के समय में स्तूपों का विस्तार पूरे देश में किया गया।

बौद्ध परम्परा में अशोक को 84 हजार स्तूपों के निर्माण का श्रेय प्रदान करती है। सातवीं शताब्दी ई० के चीनी यात्री हुआनसांग ने तक्षशिला, श्रीनगर, थानेश्वर, मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, कौशम्बी, श्रावस्ती, वाराणसी, सारनाथ, बैशाली, गया, कपिलवस्तु आदि स्थानों में इन स्तूपों को देखा था। परन्तु दुर्भाग्यवश आज ये सभी नष्ट हो चुके हैं। प्रारम्भिक स्तूपों में साँची का स्तूप समूह प्रसिद्ध है। साँची की पहाड़ी, मध्य प्रदेश के रायसेन जिला मुख्यालय से 25 किमी० की दूरी पर ऐतिहासिक नगरी ‘विदिशा के समीप स्थित हैं।

### 3.3.3 चैत्य

बौद्ध मन्दिरों को ‘चैत्य’ की संज्ञा दी गयी। यह मूलतः बौद्धों का पूजा का स्थान होता था। चैत्यों के पास में ही विद्वारों को निर्मित किया जाता था जिसमें बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। और चैत्यों में पूजा उपासना करते थे। इसकी आकृति वृत्तापत होती थी, अर्थात् आरम्भ का भाग आयताकार और अन्तिम अर्द्धवृत्ताकार होता था। अर्द्धवृत्त भाग में ऊपरी छत के गर्भ सूत्र के ठीक मध्य बिन्दू के नीचे चट्टान में कटाव करके ठोस अण्डाकृति स्तूप की रचना की जाती थी। अन्य स्थानों की तरह स्तूप में चतुरावलि हर्मिका और सुविधानुसार एक या दो वेदिकाओं का अलंकरण बनाया जाता था। स्तूप को ‘चैत्य’ भी कहते थे, बीच के लम्बे मण्डप में पूजा-पाठ और संगति के

लिए भिक्षु एकत्र होते थे और दोनों ओर के प्रदक्षिणा पथ में चलकर चैत्य की परिक्रमा करते थे। यह प्रदक्षिणा पथ मण्डप के खम्बों और चैत्य ग्रह की पाषाण भित्ति के बीच का मार्ग था जो स्तूप के पीछे से घूमता था। स्तूप वाला भाग मन्दिरो के गर्भग्रह के समान था और स्वयं देवमूर्ति के तुल्या। इस प्रकार मण्डप और प्रदक्षिणापथ को मिलकार इन बौद्ध चैत्य ग्रहों में और कालान्तर में ब्राह्मण देवालपों में वास्तु-विन्यास की अदभुत समानता थी। बीच का मण्डप देखने में विशाल और भव्य जान पड़ता था। उसके दोनों ओर के ऊँचे खम्बों पर ढोलाकार छत टिकी रहती थी। यद्यपि चट्टानी कटाव में इस प्रकार के पांवों का विशेष प्रयोजन न था, क्योंकि पहाड़ी छत स्वयं अपने बल पर टिकी रहती थी। पर कहीं-कहीं तो इससे भी आगे बढ़कर गोल छत के नीचे लकड़ी की बड़ी-बड़ी गोल धन्निया लगाई जाती थी। उन्हें देखकर उन कर्मान्तिकों के अमित धैर्य और तक्षण का कुछ अनुमान होता है। इन गुफाओं में रहने वालों के समाने पानी की समस्या थी। इसके लिए पहाड़ के ऊपरी ढलानों से मोटी-मोटी सलिलान्तर नालियाँ का एक जाल सा बिछाकर जगह-जगह पानी की छोटी धार या मूल ले जाते थे और उस जल को गुफा के पास चट्टान में द्रोणि काट कर एकत्र करते थे। इन नालियों को पानीय पणाडी और संग्रह की गहरी द्रोणियाँ को लेखों में परनीयपोढि कहा गया।

### 3.3.4 नीति शास्त्र

नीतिशास्त्र के विषय के सम्बन्ध में प्रश्न उठता है कि उसकी विषय वस्तु क्या है? वस्तुतः विषय वस्तु उस निश्चित सीमा से सम्बन्धित है जिसके अन्दर रहकर हम वास्तव में कोई अध्ययन करते हैं। इस प्रकार विषयवस्तु हमारे अध्ययन की वास्तविक सीमा है। नीतिशास्त्र की वास्तविक सीमा के अर्न्तगत वैसी समस्याओं या विषयों का विचार होता है जिसमें मानव आचरण के आदर्श की मीमांसा होती है। मानव आचरण का आदर्श नैतिक चेतना है। अतः मनुष्य की नैतिक चेतना सम्बन्धी जितनी बातें हैं सभी नीतिशास्त्र का विषय है। इसके अर्न्तगत मनुष्य के कर्तव्य, उसके कर्मों के औचित्य-अनौचित्य अर्थात् उचित-अनुचित का निर्णय सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त शुभ-अशुभ, धर्म-अधर्म इत्यादि का विचार भी नैतिक चेतना के अर्न्तगत किया जाता है।

प्राचीन वैदिक काल के दर्शन से समकालीन भारतीय दर्शन तक नैतिक चिन्तन की जो धारा निरन्तर चली आ रही है उसमें एक ओर भारतीय दार्शनिक, वेद, उपनिषद, और गीता के दर्शन को सनातन मानकर अपने विचारों को उसकी व्याख्या मात्र ठहराते हैं तो दूसरी ओर उन्होंने प्राचीन दर्शन को देश और काल के अनुरूप नवीन रूप में उपस्थित किया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वेदों से लेकर आज तक नैतिक चिन्तन पर विहंगम दृष्टि डालने से ऐसा मालूम पड़ता है कि नैतिक चिन्तनधारा में यद्यपि क्रान्तिकारी परिवर्तन होते आये, फिर भी अधिकांश विचार सनातन ही रहे हैं। भारतीय नैतिक चिन्तन की पृष्ठभूमि विभिन्न परिवर्तनों के बावजूद एक सी ही रही है। इस विकास की तुलना मानव जीवन के शारीरिक तथा मानसिक विकास से की जा सकती है जिस पर मानव में

कालक्रम से बहुमुखी विकास होने पर भी उसमें कुछ मौलिक समानता रह जाती है। पाश्चात्य से भिन्न भारतीय नीति शास्त्र की यह विशेषता रही है नये विचारों में उद्भव होने पर भी प्राचीन विचार पूर्णतः नष्ट नहीं हुए हैं। यहाँ तक कि पुराने विचारों ने नये विचारों के आने तक उनका विरोध नहीं किया और न ही उनमें विकास कार्य को ही अवरूद्ध किया। इस तरह के त्याग एवं सहिष्णुता की भावना भारतीय नीति एवं धर्म को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। अस्तु यह कहना उचित नहीं होगा भारतीय नीतिशास्त्र पूर्णतया परम्परावादी है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य की तुलना में वह आधुनिकता वादी कम और परम्परावादी अधिक है। भारतीय नीति में ऐतिहासिक विकास में क्रमशः, वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, धर्मसूत्र और स्मृतियाँ, रमायण, महाभारत, गीता, योग वशिष्ट, पुराण, आस्तित्व एवं नास्तिक दर्शनों, नीति ग्रन्थों जैसे शुक्रनीति, चाणक्य नीति, कामन्दकीय नीति और नीतिशतक आदि मध्यकालीन संतों की वाणिया उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारकों और बीसवीं शताब्दी के आधुनिक चिन्तकों को सम्मिलित किया जा सकता है।

### 3.3.5 धर्मसूत्र

इस सूत्र साहित्य में राजनीति, विधि एवं व्यवहार से सम्बन्धित विषयों का प्रतिपादन किया है। सामान्यतः सातवीं या छठीं शताब्दी ई०पू० से लेकर तीसरी शताब्दी ई०पू० तक का समय 'सूत्रकाल' कहा जा सकता है। सूत्रों में गौतम धर्मसूत्र सबसे प्राचीन माना गया है। धर्मसूत्र में केवल राजतंत्र का ही उल्लेख पाया जाता है। क्योंकि वे इसी व्यवस्था के पक्षपाती थे। वे राज्य को एक धार्मिक संस्था के रूप में देखते हैं। जिनमें राजा एवं प्रजा दोनों दैवी इच्छानुसार अपना-अपना कार्य करते हैं। धर्म सूत्रों में राजा की निरंकुशता पर रोक लगायी गयी है। उनका कथन है कि अत्याचारी राजा इहलोक एवं परलोक दोनों में दण्ड पाता है। अतः राजा का कर्तव्य है कि वह जातियों तथा वर्गों की न्यायपूर्वक रक्षा करे। सूत्रकाल में धर्म ही राजा की सत्ता का नियामक था, सभा या समिति जैसी कोई संस्था नहीं थी। सम्राट कानूनों का निर्माता नहीं, बल्कि उसका पालक था। वह प्रजा से अपनी सेवाओं के बहले में 'कर' लेता था। जो उसकी वृत्ति थी। बौद्धायन के अनुसार 'कर' राज्य की आय का छठा भाग होना चाहिए। वशिष्ठ के अनुसार राजा अपनी प्रजा से वैधानिक करों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का धन ग्रहण करने का अधिकारी नहीं है। 'कर' को राजा की वृत्ति कहा गया है।

सम्राट ब्राह्मण पुरोहित की सलाह पर कार्य करता था। प्रशासन में ब्राह्मणों का सर्वोच्च सम्मान था। गौतम के अनुसार राजा तथा वेदज्ञ ब्राह्मण ये दोनों संसार की नीति व्यवस्था के नियामक हैं। यह भी कहा गया है कि राजा सभी का स्वामी होता है कि ब्राह्मण का नहीं। पुरोहितों के अतिरिक्त प्रसिद्ध ब्राह्मणों की एक परिषद भी होती थी जो धार्मिक, राजनैतिक एवं न्याय सम्बन्धी मामलों में राजा को सलाह देती थी। राजपद आनुवंशिक होते थे। राजा शुद्ध एवं पवित्र चरित्र वाले प्रथम तीन

जाति के व्यक्तियों में से अधिकारियों के एक संघ की नियुक्ति करता था। ये अधिकारी अपने अधीन अधिकारियों के एक संघ की नियुक्ति करते थे, जिनका मुख्य काम नगरों तथा ग्राम की चोरों से रक्षा करना था। गौतम तथा आपस्तम्ब ने यह व्यवस्था दी, कि यदि किसी व्यक्ति के चोरी गये माल का पता नहीं लगा पाये, तो राज्य का यक कर्तव्य है कि वह उसकी क्षतिपूर्ति करें। शासन का एक प्रमुख विभाग का संग्रह करने के लिए होता था। गौतमसूत्र में करो की एक लम्बी सूची मिलती है। कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओं, व्यापार-वाणिज्य की वस्तुओं, आयात निर्यात की वस्तुओं, पशुओं, फलों, दवाओं आदि सभी पर कर लगते थे। शिल्पियों तथा श्रमिकों को जो कर नहीं दे सकते थे माह में एक दिन राज्य के लिये 'विष्टि' (बेगार) करना पड़ता था। गौतम के अनुसार विलिट के बदले वे राज्य से भोजन पाने के अधिकारी थे। विद्वान, ब्राह्मण, अनाथ स्त्रियाँ, विद्यार्थी, सन्यासी, वृद्ध आदि राजकीय करों से मुक्त थे। युद्धों में सम्राट स्वयं सेना का नेतृत्व करता था। ग्राम शासन की प्रारम्भिक इकाई थी। ग्रामणी गाँव का मुखिया होता था जो युद्ध के समय सैनिक एवं शान्ति के समय नागरिक कर्तव्यों का निर्वाह करता था। यह स्पष्ट नहीं है कि वह राजा द्वारा नियुक्त पदाधिकारी था अथवा ग्रामीण जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता था। उसकी सहायता के लिये अन्य पदाधिकारी का उल्लेख मिलता है। 'स्थपित' नामक अन्य अधिकारी का उल्लेख मिलता है। यह कार्यपालिका एवं न्याय सम्बन्धी मामलों का अध्यक्ष होता था।

सूत्रकाल में ही विकसित न्याय प्रणाली का चित्र देखने को मिलता है। वेद, स्मृति, विद्वानों के आचरण ही विधि के स्रोत माने गये हैं। न्याय करते समय विविध जातियों एवं कुलों की प्रथाओं, परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि का पूरा ध्यान रखा जाता था। राजा ही मुख्य न्यायधीश होता था अपराधियों को उचित दण्ड देना उनका पवित्र कर्तव्य था। राजा न्याय के लिये अन्य पदाधिकारियों को भी नियुक्त करता था। गूढ़ मामले परिषद को सौंपे जाते थे। सूत्रकार कठोर दण्डों के समर्थक हैं। किन्तु सूत्र कालीन न्याय व्यवस्था वर्ग भेद पर आधारित थी। एक ही अपराध में 'शूद्र' के लिए कठोर दण्ड तथा 'द्विज' के लिए साधारण दण्ड की व्यवस्था का।

### 3.3.6 तमिल संगम

तमिल संगम साहित्य के अध्ययन से हम ईसा की अरम्भिक शताब्दियों के सुदूर दक्षिण की सभ्यता का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। जैसा कि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस युग के राज्य परस्पर संघर्ष में उलझे हुए थे। उनकी शासन व्यवस्था का जो कुछ भी विवरण प्राप्त होता है इससे स्पष्ट है कि इस युग के राज्य परस्पर संघर्ष में उलझे हुए थे। इस युग में वशानुगत राजतंत्र का ही प्रचलन था। इसमें राजा की शक्ति सर्वोच्च होती थी। उसके अधिकार तथा शक्तियाँ असीमित थीं। इस प्रकार सिद्धान्त रूप से वह निरंकुश था। किन्तु व्यवहारिक तौर पर उसकी निरंकुशता पर कुछ रोक लगायी गयी। उसे परम्परागत नियमों का पालन करना पड़ता था उसके बुद्धिमान मंत्री तथा

दरबारी कविगढ़ उसे निरंकुश होने से बचाते थे। संगम कालीन कवियों ने राजा के सदाचरण एवं नैतिकता पर बल दिया है। उसके नैतिक चरित्र का प्रजा अनुकरण करती थी। राजा प्रजाहित को सर्वोच्च प्राथमिकता देता था। राजा से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपनी प्रजा के साथ पुत्रवत व्यवहार करे तथा उनके सुख-दुःख का सदा ध्यान रखे। तमिल संगम में उसे धर्म, साहित्य, कला आदि को संरक्षण प्रदान करने की सलाह दी गयी है।

तमिल संगम युग में उत्तराधिकार का नियम स्पष्ट नहीं था। इसके लिए युद्ध हुआ करते थे। कभी-कभी एक साथ कई शासक शासन करते थे। शासन कार्यों में राजा ब्राह्मणों की सहायता प्राप्त करता था।

तमिल संगम युग में कृषि तथा व्यापार-वाणिज्य दोनों ही विकसित अवस्था में थे, अतः राज्य की आय का मुख्य साधन इन्हीं पर लगाये जाने कर थे। भूमिकर नकद तथा अनाज दोनों रूपों में अदा किया जाता था। संभवतः यह उपज का छठवाँ भाग होता था।

तमिल संगम में न्याय व्यवस्था के विषय में भी कुछ ज्ञात होता है। राजा देश का प्रधान न्याय धीश तथा सभी प्रकार के मामलों की सुनवाई की अन्तिम अदालत होता था।

### 3.3.7 पाली

पाली एक बौद्ध कालीन भाषा है, जो बुद्ध धर्म से सम्बन्धित है। बौद्ध ग्रन्थों में ‘त्रिपिटक’ सबसे महत्वपूर्ण है। बुद्ध की मृत्यु के बाद उनकी शिक्षाओं को संकलित कर तीन भागों में बाँटा गया। इन्हीं को त्रिपिटक कहते हैं। जो पाली भाषा में लिखे गये। ये हैं- विनय पिटक (संघ सम्बन्धी नियम तथा अचार की शिक्षाये), सुत्त पिटक (धार्मिक सिद्धान्त अथवा धर्मोपदेश) तथा अभिधम्मपिटक (धार्मिक सिद्धान्त)। इसके अतिरिक्त निकाय तथा जातक आदि से भी हमे पाली भाषा की साग्रगी उपलब्ध होती है। पाली भाषा में लिखे गये बौद्ध-ग्रन्थों को प्रथम शताब्दी ई०पू० का माना जाता है। त्रिपिटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह बौद्ध संघों के संगठन का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हैं। निकायों में बौद्ध धर्म के सिद्धान्त तथा कहानियों का संग्रह है। जातको में बुद्ध के पूर्वजन्मों की कहानी है। कुछ पाली जातक ग्रन्थों से बुद्ध के समय की राजनीतिक अवस्था का परिचय भी मिलता है। इसके साथ ही साथ ये समाज और सभ्यता के विभिन्न पहलुओं के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं। दीपवंश तथा महावंश नामक दो पाली ग्रन्थों से मौर्य कालीन इतिहास के विषय में सूचना मिलती है। ‘पाली’ भाषा का एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ नागसेन द्वारा रचित ‘मिलिन्दपण्हों’ (मिलिन्द प्रश्न) है जिससे हिन्दू यवन शासक मेनाण्डर के विषय में सूचना में मिलती है। इनके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में लिखे गये अन्य कई बौद्ध ग्रन्थ भी हैं जो बौद्ध धर्म के दोनों सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं। हीनयान का प्रमुख ग्रन्थ ‘कथावस्तु’ है जिसमें महात्मा बुद्ध का जीवनचरित अनेक कथानकों के साथ वर्णित है। महायान सम्प्रदाय के ग्रन्थ ‘ललित विस्तार’ दिव्यवदान आदि हैं।

ललित विस्तार में बुद्ध को देवता मानकर उनके जीवन तथा कार्यों का चमत्कारिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जो यह सभी पाली भाषा में लिखा गया था।

### 3.3.8 प्राकृत

प्राकृत भाषा सातवाहन काल में दक्षिण भारत में बोली जाती थी यह सातवाहनों की राष्ट्रभाषा थी। सातवाहनों के अभिलेख इसी भाषा में लिखे गये हैं। यह भाषा जन सामान्य में लोकप्रिय थी। अतः शासकों द्वारा अपने अभिलेख को इसी भाषा में अंकित करवाना सर्वोपरि समझा गया।

सातवाहन नरेश स्वयं विद्वान, विद्या-प्रेमी तथा विद्वानों के आश्रयदाता थे। 'हाल' नामक राजा एक महान कवि था जिसने 'गाथासप्तशती' नामक प्राकृत भाषा के श्रंगार रस प्रधान गीतिकाव्य की रचना की थी। इससे कुल 700 आर्या छन्दों का संग्रह है। जिसका प्रत्येक पद्य मुक्तककाव्य का प्राचीनतम उदाहरण है। हाल के दरबार में गुणादय तथा शर्ववर्मन जैसे उच्चकोटि के विद्वान निवास करते थे। गुणादय ने वृहत्कथा नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह मूलतः पैशाची प्राकृत में लिखा गया था, तथा इसमें करीब एक लाख पद्यों का संग्रह था। परन्तु दुर्भाग्य-वस यह ग्रन्थ आज हमें अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं है। इस ग्रन्थ में गुणादय ने अपने समय की प्रचलित अनेक लोक-कथाओं का संग्रह किया। अनेक अद्भुत यात्रा विवरणों तथा प्रणय प्रसंगों का विस्तृत विवरण मिलता है। शर्ववर्मन ने 'कातन्त्र' नामक संस्कृत ग्रन्थ की रचना की थी। वृहत्कथा के अनुसार 'कातन्त्र' की रचना का उद्देश्य हाल को सुगमता से संस्कृत सिखाना था। इसकी रचना अत्यन्त सरल शैली में हुई। इसमें अति संक्षेप में पाणिनीय व्याकरण के सूत्र का संग्रह हुआ है। 'प्राकृत' भाषा के चिन्ह छठी शताब्दी ई0पू0 से प्राप्त होने लगते हैं। चन्द्र गुप्त मौर्य का शासन काल में भी दक्षिण भारत में यह भाषा लोकप्रिय मानी गयी थी। अशोक अभिलेखों से प्राकृत भाषा के दक्षिण भारत में लोकप्रिय होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

### 3.3.9 लौकिक साहित्य

लौकिक साहित्य के अन्तर्गत ऐतिहासिक एवं अर्द्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा जीवनियों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। जिसमें भारतीय इतिहास जानने में काफी मदद मिलती है।

ऐतिहासिक रचनाओं में सर्वप्रथम उल्लेख 'अर्थशास्त्र' का किया जा सकता है जिसकी रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ कौटिल्य (चाणक्य) ने की थी। मौर्यकालीन, इतिहास एवं राजनीति के ज्ञान के लिए यह ग्रन्थ एक प्रमुख स्रोत है। इससे चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-व्यवस्था पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। कौटिल्यीय अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों को सातवीं आठवीं शताब्दी ई0 में कामन्दक ने अपने 'नीतिसार' में संकलित किया, इस संग्रह में दसवीं शताब्दी ई0

के राजत्व सिद्धान्त तथा राजा के कर्तव्यों पर प्रकाश पड़ता है। ऐतिहासिक रचनाओं में सर्वाधिक महत्व कश्मीरी कवि कल्हण द्वारा विरचित “राजतरंगिणी” का है। यह संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमबद्ध इतिहास लिखने का प्रथम प्रयास है। इसमें आदिकाल से लेकर 1151 ई० के आरम्भ तक के कश्मीर के प्रत्येक शासक के काल की घटनाओं का क्रमानुसार विवरण दिया गया है। कश्मीर की ही भाँति गुजरात से भी अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। जिनमें सोमेश्वर कृत रसमाला तथा कीर्ति कौमदी मेरूतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणी, राजशेखर कृत प्रबन्धकोष आदि उल्लेखनीय हैं। इनसे हमें गुजरात के चालुक्य वंश का इतिहास तथा उसके समय की संस्कृति का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार सिन्ध तथा नेपाल से भी कई इतिवृत्तियाँ मिलती हैं जिनसे वहाँ का इतिहास ज्ञात होता है। सिन्ध की इति वृत्तियों के आधार पर ही “चचनामा” नामक ग्रन्थ की रचना की गयी जिसमें अरबों की सिन्ध विजय का वृत्तान्त सुरक्षित है। मूलतः यह अरबी भाषा में लिखा गया तथा कालान्तर में इसका अनुवाद खुफी के द्वारा फारसी भाषा में किया गया। अरब आक्रमण के समय सिन्ध की दशा का अध्ययन करने के लिए यह सर्वप्रमुख ग्रन्थ है। नेपाल की वंशावलियों में वहाँ के शासकों का नामोल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु उनमें से अधिकांश अनैतिहासिक हैं। अर्द्ध-ऐतिहासिक रचनाओं में पाणिनि को अष्टाध्यायी, कात्यायन का वार्तिक, गार्गी संहिता, पतंजलि का महाभाष्य, विशाखदत्त का मुद्रा राक्षस तथा कालिदास कृत मालविकाग्निमित्र आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पाणिनि तथा कात्यायन के व्याकरण-ग्रन्थों से मौर्यों के पहले के इतिहास तथा मौर्य युगीन राजनीतिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। गार्गी संहिता, यद्यपि एक ज्योतिष ग्रन्थ है तथापि इससे कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना मिलती है। इसमें भारत पर होने वाले यवन आक्रमण का उल्लेख मिलता है जिससे हमें पता चलता है कि यवनों ने साकेत, पंचाल, मथुरा तथा कुसुमध्वज (पाटलिपुत्र) पर आक्रमण किया था। पतंजलि पुष्यमित्र शुंग के पुरोहित थे, उनके महाभाष्य के शुंगों के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। मुद्राराक्षस से चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में सूचना मिलती है। कालिदास कृत मालविकाग्निमित्र नाटक शुंग कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण प्रस्तुत करता है।

ऐतिहासिक जीवनीयों में अश्वघोष कृत बुद्धचरित, वाणभट्ट का हर्षचरित, वाक्पति का गौड़बहो विल्हण का विक्रमांकदेवचरित, पद्यगुप्त का नवसाहसांकचरित, सन्ध्याकर नन्दी कृत “रामचरित”, हेमचन्द्र कृत “कुमारपालचरित” जयानक कृत “पृथ्वीराज विजय आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। “बुद्ध चरित” में गौतम बुद्ध के चरित का विस्तृत वर्णन हुआ है। “हर्षचरित” से सम्राट हर्षवर्धन के जीवन तथा तत्कालीन समाज एवं धर्म विषयक अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। गौड़बहो में कन्नौज नरेश यशोवर्मन के गौड़ नरेश के ऊपर किये गये आक्रमण एवं उसके वध का वर्णन है। कुमारपालचरित से चालुक्य शासकों-जय सिंह, सिद्धराज तथा

कुमार पाल का जीवन चरित्र तथा उनके समय की घटनाओं का वर्णन है। पृथ्वीराज विजय से चाहमान राजवंश के इतिहास का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त और भी जीवनियाँ हैं जिनसे हमें प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिल जाती है।

### 3.3.10 यवन

पुण्य मित्र के शासन-काल की सर्वप्रथम घटना यवनो के भारतीय आक्रमण की है। विभिन्न साक्ष्यों से पता चलता है कि यवन आक्रमणकारी बिना किसी अवरोध के पाटलिपुत्र के निकट आ पहुँचे। इस आक्रमण की चर्चा पतंजलि के महाभाष्य, गर्गी संहिता तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नाटक में हुई है। पतंजलि, पुण्यमित्र के पुरोहित थे। अपने महाभाष्य में उन्होंने अनघतन 'लग' का प्रयोग समझाते हुए लिखा है- 'यवनों ने साकेत पर आक्रमण किया, यवनों ने माध्यमिका (चित्तौड़) पर आक्रमण किया। गर्गी संहिता में स्पष्टतः इस आक्रमण का उल्लेख हुआ है। जहाँ बताया गया है कि 'दुष्ट विक्रान्त यवनों ने साकेत, पांचाल तथा मथुरा को जीता और पाटलिपुत्र तक पहुँच गये। प्रशासन में घोर अव्यवस्था फैल गयी तथा प्रजा व्याकुल हो गयी। परन्तु उनमें आपस में ही संघर्ष छिड़ गया और वे मध्य देश में नहीं रूक सके।

यह निश्चित नहीं कि इस यवन आक्रमण का नेता कौन था ? कुछ विद्वान उसका नेता डेमेट्रियस को तथा कुछ मेनाण्डर को मानते हैं। नगेन्द्रनाथ घोष के विचार में भारत पर दो यवन आक्रमण हुये थे - प्रथम पुण्यमित्र के शासन के प्रारम्भिक दिनों में हुआ, जिसका नेता डेमेट्रियस था तथा तथा द्वितीय उसके शासन के अन्तिम दिनों में अथवा उसकी मृत्यु के तत्काल बाद हुआ था, इसका नेता मेनाण्डर था। इसके विपरीत टार्न ने एक ही यवन आक्रमण का समर्थन किया है। उनके अनुसार इस आक्रमण का नेता डेमेट्रियस ही था, परन्तु वह अपने साथ अपने भाई एपोलोडोटस तथा सेनापति मेनाण्डर को भी लाया था। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित कर दिया। प्रथम भाग नेतृत्व उसने स्वयं ग्रहण किया। यह भाग सिन्धु को पार कर चित्तौड़ होता हुआ पाटलिपुत्र पहुँच गया। दूसरा सैन्य दल मेनाण्डर के नेतृत्व में मथुरा, पांचाल एवं साकेत के रास्ते पाटलिपुत्र पहुँचा। कैलाश चन्द्र ओझा के अनुसार मगध पर डेमेट्रियस अथवा मेनाण्डर के समय में कोई यवन आक्रमण नहीं हुआ। मध्य गंगाघाटी में यवन इन दोनों में बहुत बाद शकों तथा पल्लवों के दबाव से प्रथम शताब्दी ईसापूर्व में आये थे। यदि इस मत को स्वीकार किया जायें तो यह मानना पड़ेगा कि पुण्य मित्र शूंग के समय भारत पर कोई आक्रमण नहीं हुआ था एक अन्य मत के अनुसार प्रथम यवन आक्रमण मौर्य नरेश ब्रह्मद्रथ के काल में ही हुआ था तथा सेनापति के रूप में ही पुण्यमित्र ने यवनों को परास्त किया था।

वास्तविकता जो भी, इतना तो निर्विवाद है कि आक्रमणकारी वस्त्री यवन थे और पुण्यमित्र के हाथों उन्हें परास्त होना पड़ा था। इस प्रकार उनका भारतीय अभियान असफल रहा था

मालविकाग्निमित्रम् से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र के यज्ञ का घोड़ा उसके पौत्र वसुमित्र के नेतृत्व में घूमते हुए सिन्धु नदी के दक्षिणी किनारों पर यवनों द्वारा पकड़ लिया गया। इस पर दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। वसुमित्र ने यवनों पराजित किया तथा घोड़े को पाटलिपुत्र ले आया। जे0एस0 नेगी ने मालविकाग्निमित्रम् के अन्तः साक्ष्य से उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि सिन्धु नदी से तात्पर्य वस्तुतः पश्चिमोत्तर भारत का सिन्धु नदी ही मानते हैं। पुनश्च यह भी विदित होता है कि वसुमित्र की यवन विजय का वृत्तान्त अग्निमित्र को पुष्य मित्र द्वारा यज्ञशाला से लिखे गये पत्र के माध्यम से ज्ञात हुआ। नाटक में यह भी बताया गया है कि वसुमित्र की माता धारिणी अपने पुत्र के कुशल-क्षेम के लिए अत्यन्त चिन्तित थी। यदि वसुमित्र विदिशा के समीप ही अभियान पर होता तो उसका सम्पर्क अपने माता-पिता से अवश्य ही बना रहता यह सभी बातें सिद्ध करती हैं कि वसुमित्र तथा यवनों के बीच युद्ध विदिशा से बहुत दूर हुआ था। सिन्धु नदी के दक्षिणी तट से तात्पर्य उसके दाहिने किनारों से है। यवनों को परास्त करना निश्चित रूप से पुष्यमित्र शृंग की एक महान सफलता थी।

### 3.3.11 वोधिसत्व

हीनयान में महात्मा बुद्ध को एक महापुरुष माना जाता था। परन्तु महायान में उन्हें देवता माना गया है तथा उनकी पूजा की जाने लगी। इसी के साथ अनेक वोधिसत्वों की भी पूजा की जाने लगी। मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करने वाले वे व्यक्ति, जो मुक्ति के बाद भी मानव जाति को उसमें दुःखों से छुटकारा दिलाने के लिये प्रयत्नशील रहते थे, वोधिसत्व कहे गये। प्रत्येक व्यक्ति 'वोधिसत्व' हो सकता है। निर्वाण में सभी मनुष्यों की सहायता करना वोधिसत्व का परम कर्तव्य है। उसमें करुणा एवं प्रज्ञा होती है। करुणा द्वारा वह जन सेवा करता है तथा प्रज्ञा से संसार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है। वोधिसत्वों को दस आदर्शों को प्राप्त करने का आदेश दिया गया है। इन्हें पारमिता कहा जाता है। पारमिताएँ वस्तुतः चारित्रिक पूर्णताएँ हैं। ये दान, शील, सहनशीलता, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, उपाय, प्रणिधान, बल, ज्ञान। इन्हें दस शील कहा जाता है। बुद्ध के बाद बुद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार कर जनता के लौकिक पारलौकिक सुख की कामना करना या उनमें जीवनको सुखद बनाना वोधिसत्वों का परम कर्तव्य माना गया है। संसार में दुःख ही दुःख है, बुद्ध की इस सत्यवादी कल्पना को वोधिसत्वों द्वारा संसार या सृष्टि के कष्टों को कम करने का कार्य बुद्ध को वाद वोधिसत्व प्राप्त करने वाले व्यक्तियों ने किया।

### 3.3.12 तीर्थकर

यह शब्द जैन ग्रन्थों में जैन सम्प्रदाय को चलाने वाले सन्तों के लिये प्रयुक्त किया गया है। जैन सम्प्रदाय के पहले तीर्थकर ऋषभ देव या आदिनाथ को माना गया है। उन्होंने जैन धर्म के सिद्धान्तों की नींव रखी थी। जैन साहित्य में 24 तीर्थकरों के नाम मिलते हैं। महावीर स्वामी 24वें

तीर्थकर थे। महावीर स्वामी के द्वारा जैन धर्म को नवचेतना एवं नयी दिशा प्राप्त हुई और यह धर्म पूरे भारत में लोकप्रिय हो गया। इनसे पहले तेईस तीर्थकर हो चुके थे। जैन साहित्य से तीर्थकर पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता सिद्ध हो चुकी है। जैन धर्म के 24 तीर्थकरों के नाम निम्नलिखित हैं- (1) ऋषभ देव या आदिनाथ (2) अजित नाथ (3) सम्भव (4) अभिनन्दन (5) सुमित (6) पद्मप्रथ (7) सुपार्श्व (8) चन्द्रप्रभ (9) पुष्पदत्त (10) शीतल (11) श्रेयांस (12) वासुपूज्य (13) विमल (14) अनन्त (15) धर्म (16) शान्ति (17) कुन्थु (18) अरह (19) मल्लि (20) मुनि सुव्रत (21) नमि (22) नेमि (23) पार्श्वनाथ (24) महावीर

हमें सभी तीर्थकरों के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं मिलती है लेकिन तेइसवें एवं चौबिसवें तीर्थकरों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है चौबिसवें तीर्थकर महावीर स्वामी द्वारा जैनधर्म का प्रवर्तन तो नहीं कहा जा सकता किन्तु हम उन्हें छठी शताब्दी ईसापूर्व के जैन आन्दोलन का प्रवर्तक कह सकते हैं। वे बुद्ध के बाद भारतीय नास्तिक आचार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। उनका जन्म 599 ई0पू0 के लगभग वैशाली के निकट कुण्डग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था एवं माता त्रिशला। महावीर के बचपन का नाम वर्धमान था। युवावस्था में 'कुण्डिन्य गोत्र' की कन्या यशोदा के साथ उनका विवाह हो गया। कल्प सूत्र से पता चलता है कि बुद्ध के समान वर्द्धमान के विषय में भी ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि वे या तो चक्रवर्ती राजा बनेंगे या महान सन्यासी।

### स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए-

- (क) धर्मविजय
- (ख) स्तूप
- (ग) धर्म सूत्र
- (घ) बोधिसत्व

### 3.4 सारांश

उपरोक्त विविध शीर्षको के अन्तर्गत आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रचलित अनेक विचार, संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप धर्मविजय, स्तूप, चैत्य लौकिक साहित्य, धर्मसूत्र, पाली, प्राकृत, यवन, बोधिसत्व आदि के बारे में प्रयाप्त जानकारी रखते और प्राचीन भारतीय इतिहास को भली प्रकार समझ सकते हैं।

---

### 3.5. तकनीकी शब्दावली

---

इहलोक - पृथ्वीलोक

चक्रवर्ती - चारों दिशाओं का स्वामी

लौकिक - इस लोक से संबंधित

---

### 3.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

---

इकाई 1.3 के उत्तरों के लिए देखिए

(क) देखिए - 1.3.1 धर्मविजय

(ख) देखिए - 1.3.2 स्तूप

(ग) देखिए - 1.3.5 धर्मसूत्र

(घ) देखिए - 1.3.12 बोधिसत्व

---

### 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।

के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस०चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005

ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनू पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972

[www.mohenjodaro.net/](http://www.mohenjodaro.net/)

---

### 3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस०चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005

---

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनू  
पब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984  
[www.mohenjodaro.net/](http://www.mohenjodaro.net/)

Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India  
Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20,  
1989-90,pp. 71-82

Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram Manoharlal,New  
Delhi,1990

Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali  
Publishers,Jodhpur,1995

Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3<sup>rd</sup> edn.Cambridge University Press,Bentley  
House,London,1968

---

### 3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

---

(क) स्तूपवास्तु पर एक लेख लिखिए।

## इकाई-चार: विष्टि, प्रणय, सीता, स्त्री-धन, प्रतिलोम विवाह , अनुलोम विवाह, वर्ण संकर, गोत्र तथा प्रवर, राजतंत्र, गणराज्य, मत्स्य-न्याय, अग्रहार, ब्रह्मदेय, दशमांश

- 
- 4.1 प्रस्तावना
  - 4.2 उद्देश्य
  - 4.3 संकल्पनाएँ, विचार तथा शब्दावली
    - 4.3.1 विष्टि
    - 4.3.2 सीता
    - 4.3.3 स्त्री-धन
    - 4.3.4 अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह
    - 4.3.5 प्रणय
    - 4.3.6 वर्ण संकरता
    - 4.3.7 गोत्र/प्रवर
    - 4.3.8 राजतन्त्र
    - 4.3.9 गणराज्य
      - 4.3.9.1 कपिलवस्तु के शाक्य
      - 4.3.9.2 सुमसुमार पर्वत के भग्न
      - 4.3.9.3 अलकप्प के बुलि
      - 4.3.9.4 केशपुत्त के कालाम
      - 4.3.9.5 रामगाम के कोलिय
      - 4.3.9.6 कुशीनारा के मल्ल
      - 4.3.9.7 पावा के मल्ल
      - 4.3.9.8 पिप्पलिवन के मोरिय
      - 4.3.9.9 वैशाली के लिच्छवि
      - 4.3.9.10 मिथिला के विदेह
    - 4.3.10 मत्स्य न्याय
    - 4.3.11 ब्रह्मदेय
    - 4.3.12 दशमांश
  - 4.4 सारांश
  - 4.5 तकनीकी शब्दावली
  - 4.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
  - 4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
  - 4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
  - 4.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

भारत में ऐतिहासिक काल के प्रारंभ होने के उपरांत भारत और विशेषकर उत्तर भारत में शासन व्यवस्था, एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। भारत में आज जो संस्कृति मिलती है उसकी शुरुआत इसी काल में हुई। प्राचीन भारत में संस्कृति की अनेक श्रेष्ठ परंपराओं की स्थापना हुयी, धर्म प्रचारक संतों और उनके अनुयायियों ने लोगों को निकट लाने और साथ-साथ रहने के लिए तैयार करने में अहम् भूमिका निभायी थीं।

प्राचीन काल में शासक वर्ग ने अनेक शासन प्रणालियों को भारत में प्रचलित करने हेतु समय-समय पर विभिन्न प्रयोग किये ,यहां तक कि गणतंत्रीय शासन प्रणाली का प्रथम बीजारोपण भी इसी धरा पर हुआ। समाज व्यवस्था एवं संस्कृति के साथ-साथ कृषि-वाणिज्य-व्यापार तथा व्यवसाय एवं उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की गयीं। इसके परिणामस्वरूप भारत में अनेक नवीन बातों का प्रचलन प्रारंभ हुआ ।

प्राचीन इतिहास के अध्ययन के लिए इस काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितांत आवश्यक है, इसके अभाव में इस काल के इतिहास को भली प्रकार से समझ पाना कठिन है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आपको प्राचीन काल में प्रयोग की गयी अनेक संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली का विवरण दिया जा रहा है। इन तथ्यों का अध्ययन कर आप प्राचीन भारतीय इतिहास का भली प्रकार अध्ययन कर पायेंगे और इस काल की जानकारी को ठीक तरह से समझ पायेंगे।

## 4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य प्राचीन भारतीय इतिहास में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली के ज्ञान का परिचय देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- 1- प्राचीन भारतीय इतिहास में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं
- 2- प्राचीन भारतीय इतिहास में व्यवहृत विभिन्न विचार
- 3- प्राचीन भारतीय इतिहास में व्यवहृत विभिन्न शब्दावली

### 4.3. संकल्पनाएँ, विचार तथा शब्दावली

इस इकाई में आपको विभिन्न संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत दिया जा रहा है-

#### 4.3.1 विष्टि

गुप्त कालीन लेखों में विष्टि (बेगार) का भी उल्लेख मिलता है। सम्भवतः इस काल में यह एक प्रकार का कर था। किन्तु गुप्त राजाओं के किसी भी लेख में इस शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। वात्सायन के कामसूत्र से पता चलता है कि गाँवों में किसान स्त्रियों को मुखियों के घर के विविध प्रकार काम जैसे- अनाज रखना, घर की सफाई, खेतों पर काम करना, आदि करने के लिए बाध्य किया जाता था और इसके बदले में उन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती थी। कुछ विद्वान इस विवरण के आधार पर गुप्तकाल में विष्टि के व्यापक रूप में प्रचलित होने का निष्कर्ष निकालते हैं। सामन्तवादी व्यवस्था में भी इमें 'विष्टि' नामक कर का प्रचलन देखने को मिलता है। इसमें सामन्तों द्वारा दासों से विष्टि (बेगार) करायी जाती थी। विष्टि नामक कर में श्रम का मूल्यांकन नहीं होता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी 'विष्टि' नामक कर के बारे में पता चलता है। साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि राजा अपनपी प्रजा से रम दान करवाता था जिसके अन्तर्गत सभी प्रजा राज्य के कार्य में श्रमदान कर राजा की सहायता करते थे और बाद में यह कार्य उसके अधिकारी वर्ग भी करवाने लगे। धीरे- धीरे श्रमदान ने विष्टि (बेगार) का रूप धारण कर लिया जिसके बदले में श्रमिक को कुछ भी नहीं दिया जाता था। गौतम सूत्र में करो की एक लम्बी सूची मिलती है। कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओं, व्यापार, वाणिज्य, आयात, निर्यात की वस्तुओं, पशुओं, फलों, दवाओं आदि सभी पर कर लगते थे। शिल्पियों तथा श्रमिकों को जो 'कर' नहीं दे सकते थे, उन्हें माह हमें एक दिन राज्य के लिए विष्टि (बेगार) करनी पड़ती थी। गौतम के अनुसार विष्टि के बदले वे राज्य से भोजन पाने के अधिकारी थे।

#### 4.3.2 सीता

चन्द्रगुप्त की संसुगठित प्रशासनिक व्यवस्था वित्तीय आधार पर अवलम्बित थी। साम्राज्य के समस्त आर्थिक कार्य कलापों पर सरकार का कठोर नियंत्रण होता था। कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा अधिकारिधक भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। भूमि पर राज्य तथा कृषक दोनों का अधिकार होता था। राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी 'सीताध्यक्ष' था जो दासों, कर्मकारों तथा वन्दियों की सहायता से खेती करवाता था। कुछ राजकीय भूमि खेती करने के लिए कृषकों को भी दे दी जाती थी। राज्य की आय का प्रमुख स्रोत भूमि कर था। यह सिद्धान्ततः उपज का 1/6 होता था परन्तु व्यवहार में आर्थिक स्थिति के अनुसार कुछ बढ़ा दिया जाता था। अर्थशास्त्र तथा यूनानी प्रमाणों से पता चलाता है कि मौर्य शासन में कृषि

की आय पर लोगों को 25 प्रतिशत तक कर देना पड़ता था। ऐसी भूमि से तात्पर्य राजकीय भूमि से है। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि यदि कोई किसान अपने हल बैल, उपकरण, बीज आदि लगाकर राजकीय भूमि पर खेती करता था तो उसे उपज का आधा भाग प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त किसानों के पास व्यक्तिगत भूमि भी होती थी। ऐसे लोग अपनी उपज का एक भाग राजा को कर के रूप में देते थे। भूमिकर को 'भाग' कहा जाता था। राजकीय भूमि से प्राप्त आय को 'सीता' कहा गया है। कृषकों को सिंचाई कर भी देना पड़ता था। नगरों में जल एवं भवन कर लगाये जाते थे। इस प्रकार प्रमुख रूप से सम्राट की अपनी व्यक्तिगत भूमि जो हुआ करती थी उस भूमि से राजा या सम्राट को जो आमदनी अथवा आय प्राप्त होती थी उसे सीता कहा जाता था।

### 4.3.3 स्त्री-धन

हिन्दू व्यवस्थाकारों ने स्त्री को चल सम्पत्ति में पूर्ण अधिकार प्रदान किया। इसमें बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण, जवाहरात आदि वस्तुएं आती थी। चल सम्पत्ति के अन्तर्गत आने वाली वस्तुओं के लिए 'स्त्रीधन' की सामान्य संज्ञा प्रयुक्त की गयी। यह वह सम्पत्ति थी जिसके ऊपर सामान्य परिस्थिति में स्त्री का पूर्ण स्वामित्व होता था। अल्टेकर का विचार है कि स्त्रीधन का विकास कन्या मूल (शुल्क) से हुआ जो आसुर विवाह के अनन्तर्गत वर कन्या के पिता को प्रदान करता था। पुत्री के प्रति स्नेह के कारण माता पिता उसे शुल्क का अंश अथवा कभी कभी सम्पूर्ण भाग दे देते थे ताकि वह स्वतंत्र रूप से उसका उपयोग कर सके। यदि कन्या की मृत्यु हो जाती और उसकी सन्तान नहीं होती तो उस दशा में सम्पूर्ण धन उसके पिता अथवा भाई को वापस किये जाने का विधान था। जहाँ कन्या 'मूल' नहीं दिया जाता था वहाँ विवाह के समय कन्या कुछ उपहार प्राप्त करती थी जिसकी वह स्वामिनी होती थी। वैदिक साहित्य में इसके लिए "धरिणाह" शब्द मिलता है। इस प्रकार के उपहारों में बहुतमूल्य वस्त्रा भूषण हुआ करते थे जिन्हें कन्या ही धारण करती थी। कालान्तर में कन्या द्वारा विवाह के उपरानत प्राप्त उपहारों को भी स्त्रीधन के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया, प्रायः सभी व्यवस्थाकार स्त्रीधन पर स्त्री का पूर्ण स्वामित्व स्वीकार करते हैं।

स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से हमें स्त्रीधन के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। मनु ने स्त्री धन के छ प्रकारों का निर्देश किया है:-

- 1, पिता द्वारा किसी भी समय दिये गये उपहार।
- 2, माता द्वारा दिये गये उपहार।
- 3, भाई द्वारा दिये गये उपहार।
- 4, पति द्वारा विवाहांपरानत दिये गये उपहार।
- 5, किसी अन्य द्वारा विवाह के समय दिये गये उपहार।

6, विवाह के पश्चात किसी के द्वारा भी प्रदत्त उपहार स्त्री के पति की मृत्यु के बाद जो व्यक्ति उससे छीनते है, मनु उनकी कड़ी निन्दा करते है। विष्णु ने उसके अन्तर्गत पुत्र द्वारा दिया गया उपहार तथा तलाक के समय पति द्वारा प्राप्त निर्वाह की राशि को भी शामिल किया गया है।

सातवीं शताब्दी से हम स्त्रीधन के क्षेत्र में विस्तार पाते है। देवल ने इसमें वृत्ति, आभरण, शुल्क तथा लाभ की गणना की है (वृत्रिभरणं शुल्क लाभश्च स्त्रीधनं भवेत्) विज्ञानेश्वर ने इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत कर दिया तथा इसके अनर्तगत उत्तराधिकार, क्रय विभाजन, प्रतिगृह तथा अधिग्रहण द्वारा प्राप्त की गयी सम्पत्ति को भी समाहित कर लिया। इस प्रकार स्त्रीधन के अन्तर्गत स्त्री के अधीन प्रायः ‘ हर प्रकार की सम्पत्ति को भी समाहित कर दिया गया।

प्रारम्भिक स्मृति लेखकों ने स्त्रीधन के ऊपर स्त्री का अधिकार मानते हुए भी उसमें सम्मिलित सम्पत्ति को बेचने का अधिकार उसे नहीं दिया। मनु के अनुसार पति की अनुमति बिना पत्नी निजी सम्पत्ति को भी बेच नहीं सकती। कालान्तर में स्त्रीधन के दो भाग कर दिये गये- (1) सौदायिक तथा (2) असौदायिक।

प्रथम भाग में पिता, माता अथवा पति द्वारा स्त्री को दिये गये उपहार रखे गये तथा इसे उसके पूर्ण अधिकार में कर दिया गया। शेष धन को असौदायिक की कोटि में रखा गया, जिसका स्त्री केवल उपयोग कर सकती थी, उसे बेच नहीं सकती थी। स्त्री द्वारा अचल सम्पत्ति को बेचे जाने के अधिकार के विषय में शास्त्रकार एक मत नहीं है। कात्यायन के अनुसार स्त्री अपनी सम्पत्ति को बेच सकती है अथवा उसे बन्धक रख सकती है। नारद को विचार है कि स्त्री को स्त्रीधन में निहित केवल चल सम्पत्ति को ही बेच सकने का अधिकार होता है। पूर्व मध्यकाल के लेखकों में नारद के मत का समर्थन किया है।

हिन्दू शास्त्रकार प्रायः इस मत के है कि स्त्रीधन का उपयोग स्त्री के अतिरिक्त कोई भी अन्य व्यक्त नहीं कर सकता। साधारणतः उसके पति का भी इस पर अधिकार नहीं होता है। परिवार के संकट में होने की स्थिति में ही पति इस धन का उपयोग कर सकता था। यहाँ कात्यायन ने यह व्यवस्था दी कि परिवार की स्थिति सुधरने पर पति को स्त्री धन लौटा देना चाहिए। यदि उसकी मृत्यु हो जाये तो उसके उत्तराधिकारियों का कर्तव्य है कि वे इसे वापस कर दें। स्त्रीधन को उत्तराधिकार में प्राप्त करने का अधिकार पुत्री को दिया गया था। यदि स्त्री की कोई सन्तान नहीं थी तो धन उसके पिता तथा भाई के पास चला जाता था।

#### 4.3.4 अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह

प्राचीन हिन्दू समाज में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों का भी प्रचलन था। अनुलोम में उच्च वर्ण का व्यक्ति अपने ठीक नीचे के वर्ण की कन्या के साथ विवाह करता था। वैदिक समाज में

इस तरह के विवाह प्रायः हुआ करते थे क्योंकि वर्ण व्यवस्था के बन्धन कठोर नहीं थे। अनेक ब्राह्मण ऋषियों के विवाह क्षत्रिय कन्याओं के साथ हुए थे। यवन ने सुकन्या, श्यावस्य ने रमवीति, अगस्त्य ने लोपा मुद्रा आदि क्षत्रिय कन्याओं के साथ विवाह किये थे। ब्राह्मणों को सभी वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह करने का अधिकार था। याज्ञवल्क्य के अनुसार अनुलोम से ब्राह्मण तीन, क्षत्रिय दो तथा वैश्य मात्र एक वर्ण की कन्या के साथ विवाह कर सकता था। ऐतिहासिक काल में भी इस प्रकार के विवाहों के दृष्टान्त मिलते हैं शृंग शासक अग्निमित्र की पत्नी मालविका क्षत्रिय कन्या थी। राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी क्षत्रिय थी। राजतरंगिणी तथा कथासरित्सागर जैसे ग्रन्थों में इस प्रकार के कई विवाहों के उदाहरण मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पूर्व मध्ययुग तक इस प्रकार के मिताक्षरा तथा दायभाग भी इसी वैधता स्वीकार करते हैं। किन्तु बाद की स्मृतियों में इस प्रकार के विवाह की निन्दा की गयी है। असवर्णा पत्नी को धार्मिक कार्यों से वंचित रखा गया तथा उत्पन्न पुत्र को सवर्ण विवाह से उत्पन्न पुत्र की तुलना बहुत कम अधिकार प्रदान किये गये। मनु ने सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि इस प्रकार के विवाह से समाज में वर्ण संकरता उत्पन्न होती है।

प्रतिलोम विवाह के अन्तर्गत उच्चवर्ण की कन्या का विवाह निम्नवर्ण के व्यक्ति के साथ होता था। इस प्रकार के विवाह को निन्दनीय माना गया है तथा समाज में इसका बहुत कम प्रचलन था। प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न सन्तान को निकृष्ट एवं अस्पृश्य बताया गया है। मनु ने ब्राह्मणों से उत्पन्न क्षत्रिय पुत्र को सूत, क्षत्रिया से उत्पन्न वैश्य पुत्र में मागध, ब्राह्मणी से उत्पन्न वैश्य पुत्र धृणित बताया है। हिन्दू शास्त्रकारों ने निम्न वर्ण के व्यक्ति को अपने ऊँचे वर्ण की कन्या के साथ विवाह करने की अनुमति प्रदान नहीं की है।

#### 4.3.5 प्रणय

प्रणय का शाब्दिक अर्थ प्रेम प्रसंग होता है। अर्थात् जहाँ नायक एवं नायिका के मध्य श्रंगार रस के संयोग एवं वियोग श्रंगार का योग होता है। वहाँ प्रणय की उत्पत्ति होती है। प्राचीन इतिहास में बहुत स लेखक एवं कवियों द्वारा प्रणय का वर्णन कहा गया है। इसके अनतर्गत नायक एवं नायिका अपनी इच्छा से विवाह के सूत्र में बधकर ग्रहस्थ आश्रम के अनुष्ठानों को पूर्ण करते हैं। स्मृतियों में वर्णित गान्धर्व विवाह प्रणय विवाह तथा जिसमें माता पिता की इच्छा के बिना ही वर कन्या एक दूसरे के गुणों पर अनुरक्त होकर अपना विवाह कर लेते थे। मनु ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है। जहाँ। वर तथा कन्या स्वेच्छया से परस्पर मिलते हैं तथा काम वश उनमें मैथुन सम्बन्ध स्थापित हो जाता है वहाँ। गान्धर्व विवाह होता है। इस विवाह का प्रचलन प्रत्येक युग में था। भारत भी राजपूत जातियों में यह सर्वाधिक प्रचलित प्रकार था। वात्सायन ने इसे सबसे अधिक पूजित बताया है। महाभारत में भी इसे सर्वोत्तम विवाह बताया गया है।

### 4.3.6 वर्ण संकरता

वर्ण संकरता का शाब्दिक अर्थ है सभी वर्णों का आपस में मिश्रित होना। प्राचीन हिन्दू समाज में अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों का प्रचलन था। अनुलोम में उच्चवर्ण का व्यक्ति अपने ठीक नीचे के वर्ण की कन्या के साथ विवाह करता था। वैदिक समाज में इस तरह के विवाह प्रायः हुआ करते थे, च्यवन ने सुकन्या, श्यावस्य ने रथवीति, आगस्त्य ने लोपामुद्रा आदि क्षत्रिय कन्याओं के साथ अपने विवाह किये। ब्राह्मणों को सभी वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह करने का अधिकार था। याज्ञवल्क्य के अनुसार अनुलोम से ब्राह्मण तीन, क्षत्रिय दो तथा वैश्य मात्र एक वर्ण की कन्याओं के साथ विवाह कर सकता था। ऐतिहासिक काल में इस प्रकार के विवाहों के प्रमाण मिलते हैं। शंग शासक अग्निमित्र की पत्नी मालविका क्षत्रिय कन्या थी। राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी क्षत्रिय थी। राजतरंगिणी तिथा कथासरितसागर जैसे ग्रन्थों में इस प्रकार के कई विवाहों के उदाहरण मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पूर्व मध्य युग तक इस प्रकार के विवाह समाज में प्रचलित एवं वैद्य थे। स्मृति ग्रन्थ इसकी मान्यता प्रदान करते हैं। मिताक्षरा तथा दायभाग भी इसी वैधता स्वीकार करते हैं। हिकन्तु बाद की स्मृतियों में इस प्रकार के विवाह की निन्दा की गयी है। असवर्णा पत्नी को धार्मिक कार्यों से वंचित रखा गया तथा उससे उत्पन्न पुत्र को सवर्ण विवाह से उत्पन्न पुत्र की तुलना बहुत कम अधिकार प्रदान किये गये। मनु ने सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि इस प्रकार में विवाहों से वर्ण संकरता उत्पन्न होती है।

### 4.3.7 गोत्र/प्रवर

‘‘गोत्र’’ का मूल अर्थ ‘‘गौशाला’’ था जो बाद में वंश अथवा कुल का बोधक बन गया। किसी परिवार में गोत्र का नामकरण उसके आदि संस्थापक ऋषि के नाम पर होता था। ‘प्रवर’ का शाब्दिक अर्थ आवाहन या प्रार्थना है। यज्ञ कराने समय पुरोहित अपने श्रेष्ठ ऋषि-पूर्वजों के नाम का उच्चारण करता था। कालान्तर में यह शब्द व्यक्ति के ऋषि-पूर्वजों के नाम से सम्बन्ध हो गया। ये ऋषि गोत्र संस्थापक ऋषियों के भी पूर्वज होते थे। यज्ञादि धार्मिक कार्यों के अवसर पर उनके नाम का उच्चारण आवश्यक था। आपस्तम्ब के अनुसार प्रत्येक गोत्र में प्रायः तीन प्रवर ऋषि होते थे। ‘पिण्ड’ का शाब्दिक अर्थ शरीर है अतः सपिण्ड विवाह से तात्पर्य उन दो व्यक्तियों के विवाह से है जिनमें समाज शरीर का रक्त विद्यमान है। शास्त्रकारों ने पिता पक्ष में सात तथा माता पक्ष में पाँच पीढ़ियों तक के सपिण्ड को निषिद्ध माना है। हिन्दू समाज में सवर्ण तथा अन्तर्वर्ण विवाहों का भी प्रचलन था। धर्मशास्त्रों की मान्यता है कि व्यक्ति को अपने ही वर्ण जाति में विवाह करना चाहिए। इससे लौकिक यश की प्राप्ति होती है तथा अच्छी सन्तान की उत्पन्न होती है। समाज गोत्र, प्रवर तथा पिण्ड से विवाह करना वर्जित था।

### 4.3.8 राजतन्त्र

राजतन्त्र के अर्न्तगत राजा ही प्रशासन का मुख्य अधिकारी होता था। राजा के अधिकार असीमित होते थे। उसका आदेश ही कानून होता था। राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में राजा का योग्य होना अत्यन्त आवश्यक होता था। चाणक्य ने भी इस बात पर महत्व दिया है। उसने अर्थशास्त्र में लिखा है कि “राजा का जो शील होता है वही प्रजा का भी होता है। यदि राजा परिश्रमी एवं उन्नतिशील हो तो प्रजा भी उन्नतिशील हो जाती है और यदि राजा दुर्व्यसनी हो तो प्रजा भी वैसी ही हो जाती है। अतः चाणक्य ने राजा में निम्नलिखित गुणों का होना परमावश्यक बताया है- वह राजा ऊँचे कुल का हो, उसमें दैवीय बुद्धि व शक्ति हो, वह वृद्धजनों की बात सुनने वाला हो, धार्मिक व सत्यवादी हो, परस्पर विरोधी बातें न करने वाला है, उसका लक्ष्य ऊँचा हो, उसकी परिषद छोटी न हो तथा विनयानुगामी हो।

ऋग्वैदिक काल से ही भारत में राजतंत्र/ राजनीतिक संगठन का विकास क्रमिक रूप में हुआ। परिवारों से कुल, कुलों से ग्राम, गाँवों के समूहों से विश बने और उसके बाद जनों का निर्माण हुआ। अन्त में राष्ट्र की उत्पत्ति हुई, परिवार का मुखिया प्रधान पुरुष, कुल का कुलपति, ग्राम का ग्रामीण, विश का विशपति होता था। विश से बड़ा जन का शासक जनपति/राजा कहा जाता था, और उसके अधीनस्ता में निम्न वर्ग में अधिकारी कार्य करते थे।

राजा अपनी शासन व्यवस्था को लोक हितकारी बनाने के लिए मंत्रिपरिषद का निर्माण करता था। समय-समय पर मंत्री परिषद राजा को परामर्श आदि देती थी, लेकिन राजा मंत्रिपरिषद की परामर्श मानने को बाध्य नहीं होता था। राजा का पद दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त से उत्प्रेरित था। मनुस्मृति में माना गया है कि परमेश्वर ने राजा की सृष्टि की। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि प्रजा ने राजा को स्वयं चुना। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार पहला आर्य राजा वैवस्तुमनु को चुना गया था।

प्राचीन भारत में राजतंत्र का इतना प्रभाव था कि राजपद की उत्पत्ति को नागरिक समाज की उत्पत्ति मान लिया गया और राजा को राज्य की आत्मा कहा गया। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार राजा प्रजा के लिए ब्रह्म की देन है जिससे वह प्रजा को कष्टों से छुटकारा दिला सके। राजा विहीन समाज का जीवन कष्टपूर्ण होता है। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने राजा या राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में समय-समय पर अनेक विचार प्रस्तुत किये।

कौटिल्य ने राज्य (राजा) को मानव जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यक एवं कल्याणकारी संस्था माना है। उन्होंने राजतंत्र की विधिवत और क्रमबद्ध विवेचना नहीं की, लेकिन अर्थशास्त्र में यत्र-तत्र विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य राजा की उत्पत्ति सामाजिक समझौते के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं।

### 4.3.9 गणराज्य

प्रारम्भ में अधिकांश इतिहासकारों की धारणा थी कि प्राचीन भारत में केवल राजतंत्र ही थे परन्तु बाद की खोजों से यह तथ्य प्रकाश में आया कि भारत में राजतंत्रों के साथ-साथ गणराज्य अथवा संघ राज्यों का भी अस्तित्व था। सर्वप्रथम 1903 में रिज डेविड्स ने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को चुनौती देने के लिए गणराज्यों की खोज की थी। अवदान शतक से पता चलता है कि मध्य प्रदेश के कुछ व्यापारी दक्षिण गये, जो के लोगों ने उनसे उत्तर भारत की शासन व्यवस्था के विषय में पूछा, उत्तर में उन्होंने बताया कि कुछ देश गणों के अधीन है तथा कुछ राजाओं के (केचिददेशाः गणाधीना के चिद्राजा धीनाः) आचारांग सूत्र जैन भिक्षु को चेतावनी देता है कि उसे उस स्थान में नहीं जाना चाहिए जहाँ गणतंत्र का शासन हो पाणिनी ने राजतंत्र को संघ से भिन्न बताया है (क्षत्रियोदक राजात संघ प्रतिषेधाश्रकम्) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दो प्रकार के संघ राज्यों का उल्लेख मिलता है- वार्ताशास्त्रोपजीवी तथा राज शब्दोपजीवी। प्रथम के अर्न्तगत कम्बोज, सुराष्ट्र आदि तथा दूसरे के अर्न्तगत लिच्छवी, वाज्जे, मल्ल, मद्र, कुकुर, पांचाल आदि की गणना की गयी है। स्पष्टतः यहाँ 'राज शब्दोपजीवी' संघ से तात्पर्य उन गणराज्यों से है जो राजा की उपाधि का प्रयोग करते थे। महाभारत में भी गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। साहित्य के अतिरिक्त यूनानी-रोमन लेखकों के विवरण से भी प्राचीन भारत में गणराज्यों का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है। मुद्रा सम्बन्धी प्रमाणों से भी गणराज्यों का अस्तित्व सिद्ध होता है। मालव, यौधेय, अर्जुनायन आदि अनेक गणराज्यों के सिक्के 'राजा' का उल्लेख न कर 'गण' का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया है कि प्राचीन भारत में गणराज्य थे और वे राजतंत्रों से इस अर्थ में भिन्न थे कि उनका शासन किसी वंशानुगत राजा के हाथ में न होकर 'गण' अथवा 'संघ' के हाथ में था।

बुद्धकाल में गंगाघाटी में कई गणराज्यों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं जो इस प्रकार हैं:-

#### 4.3.9.1 कपिलवस्तु के शाक्य

यह गणराज्य नेपाल की तराई में स्थित था जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। शाक्य गणराज्य के उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में रोहिणी नदी तथा दक्षिण एवं पश्चिम राप्ती नदी स्थित थी। कपिलवस्तु की पहिचान नेपाल में स्थित आधुनिक तिलौराकोट से की जाती है। कुछ विद्वान इसकी पहिचान बस्ती जिले के पिपरहवा नामक स्थान से करते हैं।

#### 4.3.9.2 सुंसुमार पर्वत के भग्ग

सुंसुमार पर्वत का समीकरण मिर्जापुर जिले में स्थित वर्तमान 'चुनार' से किया गया है। ऐसा लगता है कि भग्ग ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लिखित भर्ग वंश से सम्बन्धित थे। भग्ग गणराज्य के अधिकार क्षेत्र में विन्ध्य क्षेत्र की यमुना तथा सोन नदियों के बीच का प्रदेश सम्मिलित था। भग्ग लोग

वत्सों की अधीनता स्वीकार करते थे ज्ञात होता है कि सुंसुमार पर्वत पर वत्सराज उदयन का पुत्र बोध निवास करता था।

#### 4.3.9.3 अलकप्प के बुलि

यह गणराज्य आधुनिक बिहार प्रान्त के शाहाबद, आरा और मुजफ्फरपुर जिलों के बीच में स्थित था। बुलिया का वेठद्वीप (वेतिया) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। सम्भवतः यह उनकी राजधानी थी।

#### 4.3.9.4 केशपुत्त के कालाम

केशपुत्त का निश्चित रूप में समीकरण स्थापित कर सकना कठिन है। यह गणराज्य कौशल के पश्चिम में स्थित था। सम्भवतः यह राज्य सुल्तान पुर जिले के कुडंवार से लेकर पालिया नामक स्थान तक फैला हुआ था। इसी गणराज्य के आलारकालाम नामक आचार्य से जो उरूवेला के समीप रहते थे, महात्मा बुद्ध ने गृह त्याग करने के बाद सर्वप्रथम उपदेश ग्रहण किया था।

#### 4.3.9.5 रामगाम के कोलिय

यह शाक्य गणराज्य के पूर्व में स्थित था। दक्षिण में यह गणराज्य सरयू नदी तक विस्तृत था। शाक्य और कोलिय राज्यों के बीच राहिणी नदी बहती थी। दोनों राज्यों के बीच सिंचाई के लिये इसी नदी के जल पर निर्भर करते थे।

#### 4.3.9.6 कुशीनारा के मल्ल

कुशीनारा की पहिचान देवरिया जिले में स्थित वर्तमान “कसया” नामक स्थान से की जाती है। बालमीकि रामायण में मल्लों को लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु मल्ल का वंशज कहा गया है।

#### 4.3.9.7 पावा के मल्ल

पावा आधुनिक देवरिया जिले में स्थित पडरौना नामक स्थान था। मल्ल लोग सैनिक प्रवृत्ति के लोग थे। जैन साहित्य से पता चलता है कि मगध नरेश अजातशत्रु के रूप से मल्लों ने लिच्छवियों के साथ मिलकर एक संघ बनाया था। अजात शत्रु ने लिच्छवियों को पराजित कर मल्लों को भी जीत लिया था।

#### 4.3.9.8 पिप्पलिवन के मोरिय

मोरिय गणराज्य के लोग शाक्यों की एक शाखा थे। मंहावंश ठीका से पता चलता है कि कौशल नरेश विडूडभ के अत्याचारों से बचने के लिये वे हिमालय प्रदेश में भाग गये जहाँ उन्होंने

मोरों की कूक से गुंजायमान स्थान में पिप्पलिवन नामक नगर बसा लिया। मोरों के प्रदेश के निवासी होने के कारण ही वे मोरिय कहे गये।

#### 4.3.9.9 वैशाली के लिच्छवि

यह बुद्ध काल का सबसे बड़ा तथा शक्तिशाली गणराज्य था। लिच्छवि बज्जि संघ में सर्वप्रमुख थे। उनकी राजधानी वैशाली मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ नामक स्थान में स्थित थी। महावाग जातक में वैशाली को एक धनी, समृद्धशाली तथा घनी आबादी वाला नगर कहा गया है। एक पण्य जातक से पता चलता है कि वैशाली नगर चारों ओर से तीन दीवारों से घिरा हुआ था।

#### 4.3.9.10 मिथिला के विदेह

बिहार के भागलपुर तथा दरभंगा जिलों के भू-भाग में विदेह गणराज्य स्थित था। प्रारम्भ में यह राजतंत्र था। यहाँ के राजा जनक अपनी शक्ति एवं दार्शनिक ज्ञान के लिए विख्यात थे। परन्तु बुद्ध के समय में यह बज्जि संघ का राज्य बन गया। विदेह के लोग भी वज्जि संघ के सदस्य थे। उनकी राजधानी “मिथिला” की पहिचान “जनकपुर” से की जाती है। बुद्ध के समय मिथिला एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था, जहाँ श्रावस्ती के व्यापारी अपना माल लेकर आते थे।

#### 4.3.10 मत्स्य न्याय

मत्स्य न्याय का शाब्दिक अर्थ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में स्पष्ट किया गया है जिसका अर्थ है कि जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है ठीक उसी प्रकार समाज के कुलीन वर्ग के लोगों ने निम्न वर्गीय लोगों का शोषण, अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया था। इससे समाज बुरी तरह से प्रभावित होता था। मत्स्य न्याय को समाप्त करने के लिये कौटिल्य ने राज्य एवं राजा की कल्पना को अनिवार्य माना है। जिसे द्वारा समाज को व्यवस्थित किया जाये।

आचार्य कौटिल्य ने अराज्य की दशा में अन्याय पर आधारित “मत्स्य न्याय” फैलने के प्रति चिन्ता प्रकट करते हुए राज्य को अनिवार्य माना है। इसी प्रकार आचार्य “शुक्र” ने स्वीकार किया है कि धर्म और राज्य के अभाव में शक्तिशालियों द्वारा निर्बलों पर अत्याचार किये जाते हैं। सेना अपने ही राज्य की प्रजा को लूटने लगती है। दोनों आचार्यों द्वारा व्यक्त उक्त मत चिरंतन सत्य प्रतीत होते हैं। आधुनिक समय में भी जब भी जहाँ कहीं भी राज्य व्यवस्था कमजोर होती है या अराज्य की स्थिति उत्पन्न होती है, अराजकता फैलने लगती है जिसकी लाठी उसकी भैस कहावत चरितार्थ होती है। कमजोर अस्थिर सरकार के होने पर देश में कानून और व्यवस्था की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अपराध बढ़ जाते हैं। समाज व्यवस्था और अर्थव्यवस्था चरमराने लगती है। अतः आचार्यों के निर्देश के अनुसार राज्य को शक्तिशाली बनाये रखना चाहिए जिसके लिए स्थायी

सरकार जरूरी है। प्रजातन्त्र में सरकार बनाना प्रजा के हाथ में होता है प्रजा को विवके के आधार पर मताधिकार का प्रयोग करके स्थायी सरकार बनानी चाहिए।

#### 4.3.11 ब्रह्मदेय

ब्राह्मणों को दान में दी जाने वाली भूमि को “ब्रह्मदेय” कहा जाता था। भूमि दान ब्राह्मणों के लिये सर्वोत्तम दान समझा जाता था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोत्तम था। ब्राह्मणों के छः प्रधान कर्मों का उल्लेख मिलता है:- (1) अध्ययन (2) अध्यापन (3) यज्ञ करना (4) यज्ञ कराना (5) दान देना तथा (6) दान लेना। महाभारत में अध्यापन, आत्म नियन्त्रण तथा तप को ब्राह्मण का विशिष्ट धर्म बताया गया है। गीता में शम (अंतःकरण का निग्रह) दम (इन्द्रियों का दमन) शुद्धि, तप, क्षमाभाव, सरलता, ज्ञान विज्ञान, आस्तिकता को ब्राह्मण का स्वाभाविक कर्म कहा गया है। मनु स्मृति में ब्राह्मण का विशिष्ट कर्म अध्ययन एवं अध्यापन हो गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण अपने ज्ञान के बल पर ही सामाजिक श्रेष्ठता का अधिकारी था। समस्त धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन इसी के द्वारा किया जाता था।

गौतम धर्म सूत्र में राजा को सलाह दी गयी है कि वह ब्राह्मण को छः प्रकार के दण्डों से मुक्त रखें- शारीरिक यातना, कारावास, जुर्माना, देश निष्कासन, अपमान तथा मृत्युदण्ड। कौटिल्य ने भी व्यवस्था दी है कि किसी भी प्रकार का अपराध करने वाले ब्राह्मण को मृत्यु अथवा प्रताडना का दण्ड न दिया जाये। दण्ड के स्थान पर सम्बन्ध अपराध को सूचित करने वाला चिन्ह ब्राह्मण के मस्तक पर अंकित किये जाने का विधान करता है।

ब्राह्मण के आ पद्धधर्म का भी उल्लेख प्राचीन साहित्य से प्राप्त होता है। संकट काल में वह क्षत्रिय एवं वैश्य के कर्तव्यों को अपना समका था उसे शस्त्र ग्रहण करने तथा शासन करने का अधिकार था। यदि इससे भी उसकी जीविका का निर्वाहन हो तो वह वैश्यवृत्ति अर्थात् कृषि पशुपालन एवं व्यापारादि के द्वारा अपना जीवन निर्वाह कर सकता था। पूर्व मध्ययुग में परम्परागत वर्षों के कर्तव्यों का नये सिरं से निर्धारण हुआ तथा प्रथम बार पाराशर स्मृति में कृषि को ब्राह्मण वर्ण की वृत्ति निरूपित किया गया। इससे पता चलता है कि अधिकांश ब्राह्मणों ने कृषि करना या कराना प्रारम्भ कर दिया था। और यज्ञादि के बदले में राजाओं द्वारा बड़े-बड़े भूखण्ड ब्राह्मणों को दान दिये जाने लगे। अतः राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को दान की गयी भूमि को “ब्रह्मदेय” नाम से पुकारा गया था।

#### 4.3.12 दशमांश

इस का शाब्दिक अर्थ है दसवां अंश अर्थात् यह प्राचीन समय में प्रचलित कर था जो कि उत्पादन का दसवां भाग के रूप में लिया जाता था। यह कर सम्राटों द्वारा अपने अधीन राजाओं की

आय का दसवां भाग होता था। राजा जिस राज्य को जीत लेता था और फिर वह राज्य वहाँ के राजा को ही वापस कर देता था अर्थात् उसे अपने अधीन कर लेता था। तब वह इस राज्य से उसकी आय का दशमांश प्राप्त करता था। इस कर को प्राप्त करने वाले प्राचीन शासक चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, गुप्त शासक हर्ष आदि थे। अधीन शासक को उन्हें उनका राज्य वापस कर देने की नीति को प्राचीन इतिहास में “धर्म विजय के नाम से जाना जात था। प्राचीन काल की धर्म विजय अर्थात् अधीन शासकों से लिये जाने वाले कर दशमांश के आधार आधुनिक काल में शिवाजी ने अपने अधीन शासकों से “सरदेशमुखी“ नामक कर को प्राप्त किया, यह “कर“ शिवाजी की आय का प्रमुख साधन था।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए (सत्य/असत्य)

1. विष्टि नामक कर में श्रम का मूल्यांकन नहीं होता था(सत्य/असत्य)
2. राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी “सीताध्यक्ष“ था(सत्य/असत्य)
3. प्रतिलोम विवाह के अन्तर्गत उच्चवर्ण की कन्या का विवाह निम्नवर्ण के व्यक्ति के साथ होता(सत्य/असत्य)
4. वर्ण संकरता का शाब्दिक अर्थ है सभी वर्णों का आपस में दूर-दूर होना(सत्य/असत्य)
5. राजतन्त्र के अन्तर्गत जनता ही प्रशासन का मुख्य होती थी(सत्य/असत्य)
6. क्षत्रियों को दान में दी जाने वाली भूमि को “ब्रह्मदेय“ कहा जाता था(सत्य/असत्य)

## 4.4 सारांश

उपरोक्त विविध शीर्षकों के अन्तर्गत आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रचलित अनेक विचार, संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप विष्टि, प्रणय, सीता, स्त्री-धन, प्रतिलोम विवाह, अनुलोम विवाह, वर्ण संकर, गोत्र तथा प्रवर, राजतंत्र, गणराज्य, मत्स्य-न्याय, अग्रहार, ब्रह्मदेय, दशमांश आदि के बारे में पर्याप्त जानकारी रखते और प्राचीन भारतीय इतिहास को भंगी प्रकार समझ सकते हैं।

## 4.5 तकनीकी शब्दावली

वर्ण संकरता - दो वर्णों के मेल से उत्पन्न सन्तान

गणराज्य - जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासित राज्य

विष्टि - प्राचीन भारत का वह कर जिसके अंतर्गत बेगार करनी पड़ती थी।

गोत्र - गोत्र“ का मूल अर्थ “गौशाला“ था जो बाद में वंश अथवा कुल का बोधक बन गया।

#### 4.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

- भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 4 का उत्तर- असत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 5 का उत्तर- असत्य  
 भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 6 का उत्तर- असत्य

#### 4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।  
 के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।  
 रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2010  
 वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस०चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005  
 ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984  
 ए.एलबाशम: अब्दुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972  
[www.mohenjodaro.net/](http://www.mohenjodaro.net/)

#### 4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट बलैकस्वान प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2010  
 वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास, एस०चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005  
 ईश्वरीप्रसाद, शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1984  
 ए.एलबाशम: अब्दुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972  
 सिंह, उपिन्दर, ए हिस्टरी ऑव एंशियण्ट एण्ड अर्ली मेडीएवल इण्डिया, दिल्ली, 2009.

#### 4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. उपरोक्त इकाई के आधार पर प्राचीन गणराज्यों पर निबंध लिखिए।